

पुरोवाक् : प्रो. रामकुमार त्रिपाठी
अनुवादक : स्वामी द्वारिकादास शास्त्री
सम्पादक : डॉ. परमानन्द सिंह

दीपवंस

बौद्ध आकर ग्रंथमाला, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ



पुरोवाक् : प्रो. रामकुमार त्रिपाठी

अनुवादक : स्वामी द्वारिकादास शास्त्री

सम्पादक : डॉ. परमानन्द सिंह

दीपवंस

बौद्ध आकर ग्रंथमाला, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ

बौद्ध आकर ग्रन्थमाला पुष्प-६

बौद्ध धर्म के इतिहास का प्रामाणिक ग्रन्थ

दी प वं स

(मूल पालि एवं हिन्दी रूपान्तर)

पुरोवाक्

प्रो. रामकुमार त्रिपाठी

कुलपति

महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ

वाराणसी

अनुवादक

स्वामी द्वारिकादासशास्त्री

सम्पादक

डॉ. परमानन्द सिंह

बौद्ध आकर ग्रन्थमाला

महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ

वाराणसी

१९९६

© प्रकाशक :
डॉ. परमानन्द सिंह
सदस्य-सचिव,
बौद्ध आकर ग्रन्थमाला
महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ
वाराणसी-२

वितरक :
रत्ना पब्लिकेशन्स
बी. २१/४२ ए, कमच्छा,
वाराणसी-१०

मूल्य : रू. २५०

वर्ष : १९९६ ई.

प्रथम संस्करण : १००० प्रति

मुद्रक :
रत्ना प्रिंटिंग वर्क्स
बी. २१/४२ ए, कमच्छा,
वाराणसी-१०

Bauddha Ākara Granthamālā-7

DIPA VAṀSA

[An Ancient Historical Record]

Along with

Hindi Translation

Forewored by

Prof. Rām Kumār Tripāthī

Vice Chancellor,

M.G. Kashi Vidyāpith, Varanasi

Translated by

Swāmī Dwārikā Dās Śāstrī

Edited by

Dr. Paramānand Singh

BAUDDHA ĀKARA GRANTHAMĀLĀ

M.G. Kāshī Vidyāpīth, Vārānasī

Dr. Paramānand Singh
Member Secretary,
Bauddha Ākara Granthamālā,
M.G. Kāshi Vidyāpīth, Varanasī-2

Sole Distributor :
Ratna Publications
B. 21/42 A, Kamachha,
Varanasi-10

Price : Rs. 250.00

First Edition : 1996

Copies : 1000

Printed by
Ratna Printing Works,
B. 21/42 A, Kamachha,
Varanasi-10



पुरोवाक्

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपवृंहयेत् ।
बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति ॥

विवेकी पुरुष को स्वकीय लौकिक एवं आध्यात्मिक ज्ञान में, इतिहास एवं पुराण ग्रन्थों के स्वाध्याय से, सतत् वृद्धि, विपुलता एवं विस्तार करते रहना चाहिये । ऐसी विद्वानों की मान्यता है ।

पालिवाङ्मय में वंश-साहित्य के ग्रन्थ ही इतिहास-ग्रन्थों के रूप में प्रसिद्ध है ।

त्रिपिटक एवं उसकी अट्ठकथाओं में भगवान् बुद्ध के विषय में तो यथाप्रसङ्ग सामग्री मिलती है, परन्तु आज की भाषा में जिसे 'इतिहास' कहा जाता है, वह तो वंश-साहित्य की ही परिधि में आता है ।

इस वंश-साहित्य में दीपवंस, महावंस, चूळवंस, बुद्धघोसुप्पत्ति, सद्धम्मसंगह, महाबोधिवंस, थूपवंस, दाठावंस, गन्धवंस एवं शासनवंस आदि बहुत से ग्रन्थों की गणना होती है, परन्तु पालि वाङ्मय से सम्बद्ध इतिहास का जितना प्रामाणिक विस्तार **दीपवंस** एवं **महावंस** में मिलता है उतना अन्य ग्रन्थों में नहीं ।

स्वातन्त्र्योत्तर पचास वर्षों में भारतीय विद्वानों ने भी त्रिपिटक एवं उसकी अट्ठकथाओं के प्रचार-प्रसार में कुछ सन्तोषप्रद कार्य किया है । आज भारत में समग्र त्रिपिटक उसके हिन्दी अनुवाद, साथ ही अनुपिटक साहित्य भी देवनागरी लिपि में पुनः उपलब्ध है । पालि-साहित्य पर अच्छे अनुसन्धान भी हुए हैं और हो रहे हैं जिन पर विद्वान् गर्व कर सकते हैं । परन्तु आज भी यह खेद का ही विषय है कि विद्वानों का ध्यान अभी तक त्रिपिटक एवं उसकी अट्ठकथाओं तक ही केन्द्रित रहा और उन्होंने पालिवाङ्मय में इतिहास पक्ष की उपेक्षा ही की । इसीलिये इस पक्ष पर अभी तक अपेक्षाकृत अल्प ही कार्य हो पाया है ।

महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी के इतिहासविदों का ध्यान जब इस ओर गया तो उन्होंने बौद्ध आकर ग्रन्थमाला के अन्तर्गत पालिवाङ्मय का समग्र वंश-साहित्य, हिन्दी अनुवाद के साथ प्रकाशित करने का सङ्कल्प किया ।

इसी सङ्कल्प के अनुसार, उक्त वंश-साहित्य के दो मूर्धन्य ग्रन्थ **दीपवंस** एवं **महावंस** हिन्दी अनुवाद के साथ प्रस्तुत किये जा रहे हैं । इन दोनों ही ग्रन्थों में भगवान् बुद्ध, उनके द्वारा प्रतिपादित धर्म, उनके द्वारा सञ्चालित सङ्घ एवं बौद्धमतानुयायी राजाओं और उनके अधिकारियों के शुभ कृत्यों का जितना विस्तृत क्रमिक एवं साङ्गोपाङ्ग विवरण है उतना अन्य किसी ग्रन्थ में नहीं है ।

इन दोनों ग्रन्थों के प्रकाशित हो जाने पर इतिहासविदों को बुद्धपूर्व, बुद्धकाल एवं बुद्धपश्चात्काल की प्रचुर इतिहास सामग्री प्रामाणिक रूप में उपलब्ध हो सकेगी–ऐसा विश्वास है ।

भारत के सांस्कृतिक इतिहास के मानक ग्रन्थों में दीपवंस का महत्व सर्वमान्य है, फिर भी हिन्दीभाषी जिज्ञासुओं के लिये इसका हिन्दी रूपान्तर आज तक अनुपलब्ध रहा, यह आश्चर्य की बात है । ऐसे कार्यों का गुरुतर दायित्व निर्वहन करनेवाली संस्थाओं ने भी इधर उदासीनता ही दिखलायी है ।

हमें प्रसन्नता है कि इस अभाव की पूर्ति इस सम्पादन से हो रही है, जिसके लिए बौद्ध साहित्य के मर्मज्ञ एवं इस ग्रन्थ के अनुवादक **स्वामी द्वारिकादासशास्त्री** एवं प्राचीन भारतीय इतिहास के विशेषज्ञ एवं इसके सम्पादक **डॉ. परमानन्द सिंह** निश्चित रूप से बधाई के पात्र हैं ।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह प्रयास लोकोपयोगी एवं सार्थक सिद्ध होगा और यह ग्रन्थ सहृदय पाठकों में लोकप्रिय होगा ।

रामकुमार त्रिपाठी

६ सितम्बर, १९९६
महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ
वाराणसी-२.

(प्रो. रामकुमार त्रिपाठी)
कुलपति एवं अध्यक्ष
बौद्ध आकर ग्रन्थमाला

* नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स *

सम्पादकीय वक्तव्य

महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ द्वारा सञ्चालित "बौद्ध आकर ग्रन्थमाला" के षष्ठ पुष्प के रूप में इस **दीपवंस** ग्रन्थ का (मूल पाठ एवं उसके हिन्दी अनुवाद सहित) यह अनुपम संस्करण प्रबुद्ध पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए हमें अपार हर्ष हो रहा है । प्रस्तुत ग्रन्थ श्रीलङ्का के प्राचीन इतिहास के साथ-साथ भारत के समकालिक इतिहास की भी महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ उपलब्ध कराता है । यों तो त्रिपिटक भी प्राचीन इतिहास की बहुत-सी महत्त्वपूर्ण घटनाएँ स्वयं अपने में समाविष्ट किये हुए है, परन्तु बौद्ध धर्म के क्रमिक इतिहास-लेखन की परम्परा दीपवंस से ही प्रारम्भ होती है । दीपवंस के अनुसार, प्रारम्भिक काल में (जब समाज में राजतन्त्रप्रणाली आरम्भ हुई) जनता द्वारा निर्वाचित, परन्तु सर्वाधिकार-सम्पन्न, प्रथम राजा का नाम 'महासम्मत' (सर्वसम्मति से निर्वाचित) रखा गया । इस से ज्ञात होता है कि गौतम बुद्ध एवं उनके अनुयायी सार्वभौम इतिहास के किसी ऐसे स्वरूप से अवश्य परिचित थे[1] जो कालान्तर में दीपवंस-समकालीन युग या कल्प के वंशों की एक लम्बी शृङ्खला प्रस्तुत करता है । इन का अभिप्राय ऐतिहासक विकास के उस चक्र से है जो महासम्मत राजा से प्रारम्भ होता है । इतिहास का यह स्वरूप पौराणिक पाठान्तर की अपेक्षा इतिहासविदों द्वारा अधिक स्वीकृत एवं समर्थित है ।

बौद्ध साहित्य में अवदान, जातक एवं वंश-साहित्य का अधिक महत्व है । अवदान साहित्य में बुद्ध तथा उनके पूर्ववर्ती बुद्धों की या उनके अनुयायियों की कथाएँ हैं; उधर, बुद्ध की साक्षात् कथा 'जातक' में वर्णित है उनके पूर्वजन्म का वर्णन ही इनका विषय है; और वंशसाहित्य में एक प्रकार की आनुपूर्वी एवं परम्परागत सम्प्रदाय या कुल की कथाएँ यथानुरूप वर्णित हैं ।

तिथिक्रम : बौद्ध सङ्घ की स्थापना तथा उस के बाद की घटनाओं को तिथिक्रम से उल्लिखित करने के उपक्रम में विनयपिटक ने प्रारम्भिक योगदान किया । कालान्तर में बौद्धसङ्घ में मतभेद हो गया तो भी पृथक्-पृथक् शाखाओं ने अपने अपने ऐतिहासिक अभिलेख पृथक् रूप से लिखना प्रचलित रखा । स्थविरवाद का मुख्य केन्द्र, आगे चल कर, श्रीलङ्का में पहुँच गया । इस शाखा ने त्रिपिटक की अट्ठकथा (व्याख्या) की जिसे अपनी परम्परा में (भाष्य) कहा जाता

---

1. द्र.– दीघनिकाय, अग्गञ्ञसुत्त, तृ. भा., पृ. ६५१-६६७ (बौद्धभारती-संस्करण)

है, इसी में 'वंश' नाम के इतिहास-भाग को भी मिला लिया । प्रारम्भ में इस का अर्थ यहाँ 'वंशवृक्ष' नहीं था । त्रिपिटक में एक ग्रन्थ है-बुद्धवंस, जिसमें केवल बुद्धों की एक परम्परा वर्णित है तथा इसी क्रम में सुदीर्घ अन्तराल के बाद भगवान् (गौतम) बुद्ध अवतरित हुए । यह दीपवंस ग्रन्थ भी (द्वीप का इतिहास=श्रीलङ्का एवं भारतवर्ष का प्राचीन इतिहास) इसी प्राचीन स्थविरवादियों के भाष्य की एक परम्परागत अभिव्यक्ति है ।

दीपवंस की रचना : इस प्रकार के धार्मिक इतिहास-ग्रन्थों में दीपवंस सब से प्राचीन सङ्कलित ग्रन्थ है, जिसमें कि उन भिन्न भिन्न स्रोतों से वह पारम्परिक इतिहास संगृहीत किया है, जो इससे पूर्व सब का सब आख्यान-परम्परा के अन्तर्गत ही समाविष्ट था । यह इतिहास-वर्णन ग्रन्थ को चतुर्थ शताब्दी के मध्य तक ले जाता है, जिसके अन्त में इस को लिखित रूप दिया गया ।

रचनाकार : दीपवंस के रचनाकार का नाम अभी तक इतिहासविदों द्वारा प्रमाणित नहीं हो सका है । वे इसे अज्ञात लेखक की रचना मानते हैं । सामान्यतः यह श्रीलङ्का के उस काल की रचना है जब कोई भी रचना किसी व्यक्तिविशेष के नाम से नहीं की जाती थी, अपितु किसी मत या सम्प्रदाय के नाम से की जाती थी । यह तो स्पष्ट ही है कि 'दीपवंस' इस मत या सम्प्रदाय (स्थविरवाद) का इतिहास रूप में वर्णन करने वाली प्राचीनतम रचना है ।

दीपवंस का अनुशीलन : दीपवंस पालि भाषा में लिखित बौद्धकालीन इतिहास-विषयक एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है । इसके रचनाकार ने इसके प्रारम्भ में ही ग्रन्थरचना का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए लिखा है-"मैं परम्परा से प्राप्त (बौद्ध धर्म के) इतिहास का वर्णन करूँगा ।" इस दीपवंस ग्रन्थ का 22 परिच्छेदों में विस्तार है । प्रारम्भ के राजा (विजय) से लेकर महाराज महासेन तक के शासनकाल तक का श्रीलङ्का का इतिहास संक्षेप या विस्तार से वर्णित है ।

आचार्य **बुद्धघोष** इस ग्रन्थ से परिचित थे । अत एव उन्होंने अपनी अट्ठकथाओं में, विशेषतः **कथावत्थुप्पकरण** की अट्ठकथा में यथाप्रसङ्ग प्रमाणरूप से दीपवंस को उद्धृत किया है । इसी तरह उन्होंने **विनयपिटक** की अट्ठकथा-**समन्तपासादिका** में यथाप्रसङ्ग दीपवंस को स्थान-स्थान पर प्रमाणरूप में प्रस्तुत किया है ।

दीपवंस में रचनाकार ने विविध प्रकार के ऐतिहासिक इतिवृत्तों, कथाओं आदि को एक सुन्दर माला के रूप में गूँथने का अतीव स्तुत्य प्रयास किया है जो अपने आप में अत्यधिक महत्त्वशाली बन गया है । यह कार्य रचनाकार का एक

सराहना करने योग्य प्रयास है । इसे यदि 'वंशसाहित्य की गंगोत्री' कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति न होगी । इस में साहित्यक कला, भाषा और छन्द आदि की गौण दृष्टियों से कुछ दोषों का आ जाना स्वाभाविक प्रक्रिया ही मानी जानी चाहिये ।

परन्तु साहित्यिक दृष्टि से कुछ दोषमय होते हुए भी ऐतिहासिक दृष्टि से दीपवंस एक अनुपम ग्रन्थ है । साहित्य के अपूर्णताओं के अस्तित्वमात्र से उसके ऐतिहासिक महत्त्व को कम नहीं किया जा सकता । डॉ. गायगर इस बात से पूर्ण सहमत हैं । उन्होंने दीपवंस की रचना को सिंहली भाषा में लिखित धार्मिक पद्यों की पृष्ठभूमि में माना है । उन्होंने अपना यह मत व्यक्त किया है कि दीपवंस महाकाव्य के रूप में ही एक प्रारम्भिक ग्रन्थ है । महावंस आदि अर्वाचीन ग्रन्थों को इसी ग्रन्थ का विकसित रूप माना है ।

दीपवंस के साक्ष्य : दीपवंस में वर्णित राजतन्त्रप्रणाली में प्रथम (आदि) राजा का नाम 'महासम्मत' बताया गया है । इसी क्रम में विजय श्रीलङ्का का प्रथम अभिषिक्त राजा हुआ । उसके बाद अनेक राजा हुए । भारत में देवानाम्प्रिय सम्राट् अशोक प्रियदर्शी जब राज्य कर रहे थे, उसी समय श्रीलङ्का में विजय-राजवंश का देवानाम्प्रिय तिष्य नामक राजा था । इस प्रकरण के सूक्ष्म अध्ययन से स्पष्ट प्रतीत होता है राज्य का विकास किस प्रकार हुआ । राज्य का यह विकासक्रम अत्यधिक वैज्ञानिक प्रतीत होता है ।

साथ ही, भारतीय और श्रीलङ्का के इतिहास की अनेक समकालीन घटनाएँ एवं विशेषतः बिम्बिसार के समय से सम्राट् अशोक के समय तक के कालक्रमिक वृत्त दीपवंस में अपनी पद्धति से वर्णित हैं ।

दीपवंस द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यधिक विचारणीय हैं । यह ग्रन्थ भारत और श्रीलङ्का के शताब्दियों तक पारस्परिक आदान-प्रदान का आकर्षक चित्रण प्रस्तुत करता है ।

इसी प्रकार इस ग्रन्थ में सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं भौगोलिक तथा व्यापारिक साक्ष्य भी उपलब्ध हैं । वे इतिहास की अमूल्य धरोहर हैं ।

यह ग्रन्थ लङ्का एवं भारत के बहुत दूर तक दीर्घ काल के तिमिराच्छन्न इतिहास को आलोकित करता हुआ दोनों के पारस्परिक सौहार्दमय सम्बन्धों को परिपुष्ट करता है ।

संक्षेप में हम यह स्पष्टतः कह सकते हैं कि दीपवंस साहित्यिक दृष्टि से काव्यत्व के मानकों पर भले ही खरा न उतरता हो, परन्तु इतिहास की दृष्टि से इतिहास के किसी भी विद्यार्थी को इतिहासचिन्तन के लिये, अनायास ही बहुत सी अमूल्य सामग्री देते हुए उस पर विचार हेतु, प्रवृत्त करने में समर्थ है ।

दीपवंस के हस्तलेख का सम्पादन् : (१) इस ग्रन्थ की मूल रचना पालि भाषा में हुई है । यह प्रधानतः श्रीलङ्का में प्रसारप्राप्त बौद्ध धर्म से सम्बद्ध ग्रन्थ है । इस ग्रन्थ का सर्वप्रथम सन् 1879 ई. में श्री ओल्डनवर्गने रोमन लिपि में सम्पादन तथा आंग्ल भाषा में अनुवाद किया था ।

(2) यह ग्रन्थ डॉ. विमलाचरण लाहा द्वारा भी रोमन लिपि में सम्पादित एव इंग्लिश भाषा में अनूदित हो कर "दी सिलोन हिस्टोरिकल जनरल" (भाग-4) में प्रकाशित हुआ था । पुस्तकरूप में इस का प्रथम संस्करण 1879 में उपलब्ध हुआ ।

वर्तमान हिन्दी-अनुवाद का सङ्कल्प : महामनीषी डॉ. भरतसिंह उपाध्याय ने अपने 'पालि साहित्य का इतिहास' नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ में दीपवंस के विषय में अपना हार्दिक आक्रोश व्यक्त करते हुए एक लघु टिप्पणी यथाप्रसङ्ग लिखी है– "हिन्दी में अभी तक इस ग्रन्थ का मूल संस्करण या हिन्दी अनुवाद नहीं निकला; जब कि इस ग्रन्थ के वर्मी एवं सिंहली संस्करण उपलब्ध हैं ।" इस छोटी सी टिप्पणी को ही अन्तिमेत्थम् (अल्टीमेटम) मानकर **बौद्ध आकर ग्रन्थमाला** की **प्रशासन समिति** ने दीपवंस के हिन्दी अनुवाद के प्रकाशन का दायित्व, अपने उद्देश्यों के अनुरूप मान कर, सहर्ष स्वीकार किया ।

बौद्ध आकर ग्रन्थमाला, (महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी) इस महत्त्व पूर्ण ग्रन्थ के मूल पाठ का हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशन कर स्वयं को कृतार्थ मानती है ।

धन्यवाद ज्ञापन : बौद्ध आकर ग्रन्थों का अनुवाद राष्ट्रभाषा हिन्दी में महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ के माध्यम से सम्पन्न हो, इसके लिए सर्वप्रथम उत्तर प्रदेश सरकार ने विद्यापीठ में बौद्ध आकर ग्रन्थ माला निधि की स्थापना करके अपनी सहृदयता का जो परिचय दिया है, उसके लिए हम सरकार के प्रति अपनी कृतज्ञता निवेदित करते हैं ।

इस असम्भव कार्य को सम्भव बनाने का अथक प्रयास साहित्य जगत के मर्मज्ञ प्रो. राम कुमार त्रिपाठी कुलपति महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ ने किया, वे इस निधि के अध्यक्ष भी है । उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना मैं अपने कर्तव्य की सार्थकता समझता हूँ । इस प्रसंग में तिब्बती उच्च शिक्षा संस्थान के निदेशक प्रो. एस. रिम्पोछे के प्रति भी आभारी हूँ इसके साथ ही प्रो. रामशंकर त्रिपाठी, पूर्व विभागाध्यक्ष, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी एवं डॉ. बाँके लाल मिश्र, संस्कृत विभाग, म. गाँ. काशी विद्यापीठ के प्रति आभार व्यक्त करना भी मैं अपना दायित्व समझता हूँ । इन महानुभावों ने समय-समय पर अपने सुझाव देकर इस कार्य को पूर्ण कराने में योगदान किया है ।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन में महाबोधि सोसाइटी के महासचिव भिक्षु डा. डोडम गोड रेवत का प्रोत्साहन एवं विद्वत्तापूर्ण सुझाव ने हमारे लिए मार्ग दर्शन का कार्य किया। उनके प्रति हम कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं।

इस ग्रन्थ के संशोधक एवं हिन्दी अनुवादक हैं श्री स्वामी द्वारिकादासशास्त्री, जो वर्तमान में बौद्ध विद्या के जाने माने भारतीय विद्वान् हैं। ये अभी तक बौद्ध दर्शन एवं पालि साहित्य के शताधिक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का सम्पादन, संशोधन, व्याख्यान तथा अनुवाद सम्पन्न कर चुके हैं। श्रद्धेय स्वामी जी, इस ग्रन्थ का भी ऐसा हृदयग्राही अनुवाद कर, पालिजगत् द्वारा प्रशंसा के पात्र बन गये हैं। हमें आशा ही नहीं, पूर्ण विश्वास है कि आगे भी श्रीस्वामी जी अपनी लेखनी से पालि भाषा का अभिवर्धन-संवर्धन करते रहेंगे।

प्रस्तुत ग्रन्थ की पाण्डुलिपि को सजाने-संवारने एवं टंकित करने का कार्य मेरे सहयोगी श्रीश कुमार सिन्हा ने किया है, उनके प्रति आभार व्यक्त करते हुए मैं हर्षित हो रहा हूँ। इस कार्य की पूर्णता के लिये म. गाँधी काशी विद्यापीठ परिवार का मैं विशेष ऋणी हूँ। जिसकी सत्प्रेरणा से मैं लाभान्वित हुआ हूँ।

अन्त में, मैं उन समस्त बौद्ध विद्वानों एवं लेखकों के प्रति नतमस्तक हूँ जिनके प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष सहयोग से यह कार्य पूर्ण किया गया।

मैं अपने मित्र श्री विपुल शंकर पण्ड्या के प्रति भी आभार व्यक्त करता हूँ, जिनके अथक प्रयास से यह कार्य पूर्ण हो सका। पुस्तक को सुन्दर, स्पष्ट एवं शुद्ध छापने में उनके रत्ना प्रिंटिंग वर्क्स के कर्मचारियों का सहयोग सराहनीय रहा, उनके सहयोग से ही यह ग्रन्थ पाठकों के सम्मुख पहुँच पाया है।

(डॉ. परमानन्द सिंह)
उपाचार्य इतिहास विभाग
एवं सदस्य-सचिव
बौद्ध आकर ग्रन्थमाला

म. गाँ. काशी विद्यापीठ,
वाराणसी

पूर्वपीठिका

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।
वंशानुचरितं चेति पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥

भारतीय शास्त्रकारों ने 'पुराणेतिहास'– ग्रन्थों के ये पाँच लक्षण बताये हैं– १. सर्ग (सृष्टिक्रम वर्णन), २. प्रतिसर्ग (प्रलय के बाद पुनः सृष्टिक्रम का वर्णन), ३, वंश (राजाओंकी वंशावलियाँ), ४ मन्वन्तर (सृष्टि के दूसरे कल्पों के विषय में सूचना, एवं ५ वंशानुचरित (कुछ विशिष्ट राजाओं की जीवनचर्यायों का विशिष्ट वर्णन) । इन पाँचों में वंश एवं वंशानुचरित हमारे इस प्रस्तत **दीपवंस** ग्रन्थ की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं ।

राजाओं की वंशावलियाँ तथा उनकी विस्तृत चर्याएँ बौद्ध साहित्य के समसामयिक संस्कृत के विष्णुपुराण, वायुपुराण, मत्स्यपुराण एवं भागवत आदि पुराणों में भी दी गयी है । पालि भाषा का वंशसाहित्य भी यद्यपि प्रधानतः राजाओं की वंशावलियों का ही वर्णन करता है; तथापि उस में रामायण, महाभारत एवं अन्य पुराणों की तरह इस वर्णन के अतिरिक्त और भी बहुत कुछ है । धर्म-वृत्त एवं धार्मिक कथाएँ–दोनों के महत्त्वपूर्ण अंश हैं । इस सामान्य प्रतिज्ञा के साथ हम पालिभाषा एवं वंश-साहित्य के मूर्धन्यभूत इस दीपवंस ग्रन्थ की विशेषताओं का वर्णन करना चाहते हैं ।

पालि के वंस-साहित्य की परम्परा :

पालि भाषा में वंस-साहित्य की परम्परा आचार्य बुद्धघोष के काल से पूर्व ही प्रारम्भ हो चुकी थी, जोकि अद्यावधि (बीसवी शताब्दी तक) अविच्छिन्न रूप से चली आ रही है । पालि साहित्य में वंश-प्रतिपादक ग्रन्थ मुख्यतः ये हैं–

१. दीपवंस, २ महावंस, ३ चूळवंस, ४ बुद्धघोसुप्पत्ति, ५. सद्धम्मसङ्गह, ६. महाबोधिवंस, ७ थूपवंस, ८. अत्तनगळुविहारवंस, ९. दाठावंस, १०. छकेसधातुवंस, ११. गन्धवंस, एवं सासनवंस आदि ।

दीपवंस :

दीपवंस पालिभाषागत वंस-साहित्य का प्रथम ग्रन्थ है । इस में लङ्काद्वीप का इतिहास वर्णित है । या यों कहिये कि लङ्काद्वीप की ऐतिहासिक परम्परा का आधार एवं आदि स्रोत इसी ग्रन्थ में सर्वप्रथम उपलब्ध होता है । यह ग्रन्थ बुद्धघोषकाल से पूर्व ही निर्मित हो चुका था । इसमें भगवान् के महापरिनिर्वाणकाल

से प्रारम्भ होकर राजा महासेन (ई. ३२५-३५२) तक का क्रमबद्ध इतिहास वर्णित है ।

रचनाकाल :

इस ग्रन्थ की प्रामाणिकता इसी से स्पष्ट है कि आचार्य बुद्धघोष ने अपनी अट्ठकथाओं में, विशेषतः कथावत्थुप्पकरण की अट्ठकथा में, दीपवंस को अनेक प्रसङ्गों में प्रमाणरूप में उद्धृत किया है । बुद्धघोष का जीवनकाल विद्वानों ने चतुर्थ-पञ्चम शताब्दी निर्णीत किया है । अतः यह निश्चित रूप से माना जा सकता है कि दीपवंस का रचनाकाल ३५२ ई. राजा महासेन के अन्तिम शासनवर्ष (जहां तक का वर्णन दीपवंस में मिलता है) से ४५० ई. के मध्य होना चाहिये ।

दीपवंस की रचना का आधार :

दीपवंस की ऐतिहासिक परम्परा एवं विषयवस्तु प्राचीन सिंहली अट्ठकथाओं के ऐतिहासिक अंशों पर आधृत है । ये अट्ठकथाएँ बहुत पहले सिंहली भाषा में लिखी गयी थीं । ये पद्यमिश्रित गद्य रूप में लिखी गयी थीं । इन्हीं अट्ठकथाओं पर बुद्धघोष की त्रिपिटक-अट्ठकथाएँ भी आधृत हैं । तथा इन्हीं पर दीपवंस भी । 'महाअट्ठकथा', 'महापच्चरी', 'कुरुन्दी', 'चुल्लपच्चरी' एवं 'अन्धट्ठकथा' आदि जिन सिंहल-अट्ठकथाओं से बुद्धघोष ने अपनी त्रिपिटक अट्ठकथाओं में सामग्री संगृहीत की थी उन्हीं अट्ठकथाओं पर दीपवंस आदि भी आधृत हैं । 'महावंस-टीका' (सीहलट्ठकथा-महावंस) से भी सम्भवतः दीपवंस में अधिक सामग्री ली गयी है ।

रचना–दोष :

१. इस तरह अनेक स्रोतों से सहायता संगृहीत करने के कारण, उनमें निर्दिष्ट परम्पराओं को मौलिक रूप में ही रखने के सात्त्विक आग्रह के कारण भी दीपवंस में अत्यधिक **पुनरुक्तियाँ** मिलती हैं ।

२. यद्यपि इस में विभिन्न स्रोतों से सामग्री तो संग्रह कर ली गयी, परन्तु उन्हें एकरूपता प्रदान नहीं की गयी । अतः यह **अनेकरूपता** भी इस ग्रन्थ का दोष ही माना जायगा ।

३. यों इस ग्रन्थ में उक्त सङ्कलन का संग्रह कर के भी उसे यहाँ एकरूपता प्रदान न करते हुए, कहीं एक ही घटना का वर्णन **अतिसंक्षिप्त** रूप दे दिया गया ।

४. अन्यत्र उसी घटना को इतना **विस्तृत रूप** दिया गया कि पाठक को अरुचि होने लगे ।

५. अतः यह ग्रन्थ **साहित्यिक** कला की दृष्टि से **अतिमहत्त्वपूर्ण** नहीं

माना जा सकता; क्योंकि यह भाषा और छन्द–दोनों ही दृष्टियों से निर्दुष्ट नहीं बन पाया।

इसलिये यह तो कहना ही पड़ेगा कि इस ग्रन्थके रचनाकार का भाषा पर पाण्डित्यपूर्ण अधिकार नहीं दिखायी देता। अतः साहित्यिक दृष्टि से यह ग्रन्थ अव्यवस्थित, पुनरुक्तिदोषग्रस्त, भाषागत एवं शैलीगत दोषों से परिपूर्ण, अतएव नीरस गद्य-पद्यमय रचना है। इसी बात की तरफ पाठक का ध्यान दिलाने के लिये महावंसकार **महावंस** के प्रारम्भ में ही कहते हैं–

"पोराणेहि कतो पेसो अतिवित्थारतो क्वचि।
अतीव क्वचि सङ्खित्तो अनेकपुनरुत्तको॥"

(म. व. १/२)

यहाँ यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि यद्यपि इस ग्रन्थ में ऐतिहासिक सामग्री उपर्युक्त अट्ठकथाओं से ली गयी है, तथापि यह भाषा एवं शैली की दृष्टि से त्रिपिटक के ग्रन्थों के अधिक समीप है। बुद्धवंस' 'चरियापिटक' 'जातक' 'परिवार' आदि ग्रन्थों की शैली से दीपवंस की भाषा-शैली की पर्याप्त समानता है।

दीपवंस की ऐतिहासिक दृष्टि से प्रामाणिकता :

परन्तु कतिपय विद्वानों ने दीपवंस की इस साहित्यक श्लथता और अपूर्णता को देखते हुए इस के ऐतिहासिक दृष्टि से गौरवमय महत्त्व को भी विनष्ट करना चाहा है, यह उनका प्रमाद ही है; क्योंकि पालि साहित्य के महान् मनीषी डब्ल्यू. गायगर की दीर्घकालीन गवेषणाओं ने दीपवंस की ऐतिहासिक परम्परा-दृष्टि की प्रामाणिकता सर्वथा सिद्ध कर दी है।

दीपवंस में एक प्राचीन ऐतिहासिक परम्परा मिलती है, जिसको लङ्काद्वीप में सदा ही आदर एवं विश्वास की दृष्टि से देखा है। ईसा की पञ्चम शताब्दी में वर्तमान लङ्का के राजा धातुसेन ने राष्ट्रिय सम्मान के साथ, एक वार्षिक उत्सव के शुभ अवसर पर, 'दीपवंस' का सार्वजनिक पुण्यपाठ करवाया था।

दीपवंस की विषय-वस्तु :

लङ्का के प्रारम्भिक इतिहास से प्रारम्भ कर वहाँ के राजा महासेन (३२५-३५२ई.) तक का इतिहास दीपवंस में वर्णित है।

सर्वप्रथम, भगवान् बुद्ध के तीन बार लङ्कागमन का वर्णन है। वहाँ बुद्ध की प्राचीन वंशावलि का भी वर्णन मिलता है। बुद्ध की वंशावलि में प्रथम राजा का नाम महासम्मत बताया गया है। फिर प्रथम दो बौद्ध धर्मसङ्गीतियों का वर्णन हुआ

है । इस वर्णन में विनयपिटक (चुल्लवग्ग आदि) के वर्णन से कोई भिन्नता नहीं है । दीपवंस के आधार पर ही हम जान पाते हैं कि सम्राट् अशोक का शासन आते-आते बौद्ध धर्म अट्ठारह (१८) सम्प्रदायों में विभक्त हो चुका था । (चतुर्थ परिच्छेद) ।

प्रथम दो सङ्गीतियों के वर्णन के बाद दीपवंस में तृतीय सङ्गीति का वर्णन प्रारम्भ होता है; किन्तु लेखक यहाँ सम्बन्ध मिलाने के पहले विनयपरम्परा का वर्णन प्रारम्भ करता है । इसमें मोग्गलिपुत्र तिष्य एवं सम्राट् अशोक का राज्याभिषेक एवं तिष्य की प्रव्रज्या वर्णित है । (पञ्चम परिच्छेद) ।

षष्ठ परिच्छेद में सम्राट् अशोक की लोकोत्तर शक्तियों का वर्णन, सम्राट् द्वारा विहारनिर्माण वर्णित है । सप्तम परिच्छेद में महेन्द्र की प्रव्रज्या, सङ्घ में सङ्कट एवं तृतीय धर्मसङ्गीति का विस्तृत वर्णन हे ।

अष्टम परिच्छेद में सम्राट् अशोक की प्रेरणा से मोग्गलिपुत्र तिष्य द्वारा धर्मप्रचार हेतु देश-विदेश में विशिष्ट भिक्षुओं का प्रेषण वर्णित है ।

लङ्काद्वीप की स्थापना एक भारतीय उपनिवेश के रूप में लाळनरेश सिंहबाहु के विद्रोही पुत्र विजय ने की (जिसे भगवान् बुद्ध का आशीर्वाद प्राप्त था) । उसे अपने उच्छृङ्खल कार्यकलाप के कारण पिता द्वारा देशनिकाला दे दिया गया था । वह अपने कुछ साथियों के साथ जिस किसी तरह लङ्का द्वीप पहुँच गया । इस यात्रा-प्रसङ्ग में मार्ग में आये सूर्पारक, भरुकच्छ आदि बन्दरगाहों का भी संक्षिप्त वर्णन है, जिससे ग्रन्थकार की इतिहासपरिनिष्ठित बुद्धि का परिचय मिलता है ।

किन्तु साथ ही यह भी दिखाया गया है कि उस समय लङ्का में यक्ष, दानव एवं राक्षस रहते थे । **रामायण** महाकाव्य से तुलना करने पर यह साक्ष्य प्रमाणित हो जाता है । साथ ही इस वर्णन से इतिहास-पुराण शैली का एक आदर्श स्वरूप भी प्रस्तुत हो गया है । विजय लङ्का द्वीप का प्रथम अभिषिक्त राजा हुआ । उसके बाद अनेक राजा हुए । (नवम परिच्छेद) ।

दशम परिच्छेद में पाण्डुकाभय राजा के जन्म का वर्णन है ।

एकादश परिच्छेद में लङ्काद्वीप एवं जम्बुद्वीप (भारत) के राजाओं का सामयिक तुलनाक्रम दे कर अशोककालीन राजा देवानाम्प्रिय तिष्य का वर्णन किया गया है ।

सम्राट् अशोक ने तृतीय सङ्गीति के बाद अपने पुत्र महेन्द्र एवं पुत्री सङ्घमित्रा को बुद्ध-धर्म का सन्देश ले कर लङ्का जाने की आज्ञा दी । वे अपने साथ बोधिवृक्ष की शाखा भी लेते गये । लङ्का के राजा देवानाम्प्रिय तिष्य के शासनकाल में बौद्ध धर्म यथाविधि लङ्का द्वीप में प्रविष्ट हुआ । बोधिवृक्ष की वह शाखा पूर्ण सम्मान के

साथ अनुराधपुर में लगायी गयी । वहीं 'महाविहार' नामक विहार की स्थापना की गयी । एवं मिश्रक पर्वत पर भी एक विहार बनवाया गया । (द्वादश, त्रयोदश, चतुर्दश परिच्छेद) ।

पन्द्रहवें परिच्छेद में बड़ी धूम-धाम के साथ महाधातु-स्तूप-निर्माण का वर्णन है । इसी में यथाप्रसङ्ग भगवान् ककुसन्ध, भगवान् कोणागमन, भगवान् काश्यप के धातु-स्तूपों का भी वर्णन है ।

षोडश परिच्छेद में महाबोधि का लङ्का आगमन और सत्रहवें परिच्छेद में शासनोपयोगी तेरह (१३) बातों का विशद वर्णन एवं महेन्द्रस्थविर का परिनिर्वाण तथा देवानाम्प्रिय तिष्य के देहावसान का वर्णन है ।

अष्टादश परिच्छेद में लङ्काद्वीप की प्रशस्त भिक्षुणियों की गणना लिपिबद्ध है ।

देवानाम्प्रिय तिष्य के देहावसान के बाद, लङ्का द्वीप को एक दुःसह विपत्ति का सामना करना पड़ा । उस समय दक्षिण भारत से द्रविड़ों ने वहाँ जा कर उस द्वीप की राष्ट्रिय एकता को भङ्ग करना आरम्भ कर दिया तथा द्वीप का बहुत सा भाग अपने अधिकार में कर लिया । यों, द्रविड़ों द्वारा निरन्तर त्रस्त किये जाने पर भी लङ्का के मैत्रीभावनापरायण बौद्ध राजाओं ने उनसे युद्ध करने की बात नहीं सोची । जो भाग द्रविड़ों ने अपने अधिकार में कर लिया था, उस भाग की जनता उन द्रविड़ राजाओं के अत्याचारों से बहुत दुःखी थी । अन्त में उन्हें 'राजा दुष्ट ग्रामणी' के रूप में एक उपयुक्त नेता मिला जो उन्हें उन द्रविड़ों द्वारा प्रदत्त कष्टों से छुड़ा पाया । दुष्टग्रामणी का वास्तविक नाम ग्रामणी ही था । वह तत्कालीन बौद्ध लङ्काधिपति काकवण्ण तिस्स का पुत्र था । वह अतीव उद्धत एवं वीर स्वभाव वाला था । सोलह वर्ष की आयु में ही उसने द्रविड़ों से युद्ध करने हेतु अपने पिता से आज्ञा माँगी । अहिंसावादी बौद्ध पिता ने नरहिंसायुक्त युद्ध की आज्ञा नहीं दी । उसी कारण वह ग्रामणी विद्रोही हो गया । पिता की आज्ञा न मानने के कारण, उसके नाम के साथ जनता ने 'दुष्ट' (दुट्ठ) शब्द लगा दिया । बाद में, पिता के मरणानन्तर, वह शोषित लङ्काद्वीपीय जनता का स्वाभाविक नेता बन गया । उसने एक सुसङ्गठित सेना तय्यार की । उसके बल पर उसने द्रविड़ों को परास्त किया । और लङ्काद्वीप को पुनः एक सूत्र में बाँधा । यह राजा दुष्टग्रामणी लङ्का का सबसे प्रबल प्रतापी राजा माना जाता है । उसने बौद्ध धर्म की बहुत अभ्युन्नति की । उसने एक नौमंजिला लौहप्रासादविहार, अपने शासनकाल में, बनवाया । साथ ही महास्तूप एवं अनेक स्तूप तथा विहार भी बनवाये ।

राजा दुष्टगामणी के बाद, उसके वंशजों में अनेक राजाओं के बाद, प्रसिद्ध राजा हुआ वट्टगामणी । इसी राजा के समय समग्र त्रिपिटक लिपिबद्ध (लेखबद्ध) किया गया । अतः उसका शासनकाल (प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व) पालिसाहित्य के इतिहास में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण माना जाता है ।

वट्टगामणी के बाद, राजा चोरनाग, तिष्य, शिव, कुटिकर्ण तिष्य का वर्णन है। (उन्नीस, बीस परिच्छेद)।

राजा कुटिकर्ण के पुत्र राजा अभय ने भी बौद्ध शासन की अभ्युन्नति में पूरा हाथ बटाया। इस के बाद राजा आमण्डगामणी अभय, कणीरजानु तिष्य, चूड़ाभय, एवं राजा शुभ हुए। (इक्कीसवाँ परिच्छेद)।

बाईसवें परिच्छेद में ग्रन्थकार लङ्का के कुछ अन्य राजाओं के बाद अन्तिम राजा महासेन का वर्णन करते हुए ग्रन्थ को एकाएक समाप्त कर देते हैं।

दीपवंस का ऐतिहासिक महत्त्व :

अब हम इन विषयों पर विचार करेंगे-(१)"दीपवंस के वर्णनों का ऐतिहासिक महत्त्व क्या है ? (२) लङ्का के निश्चित इतिहास के रूप में यह कहाँ तक मान्य है? (३) भारतीय इतिहास की परम्पराओं से उसके वर्णनों का क्या और कहाँ तक सामञ्जस्य या विरोध है ? (४) पालि साहित्य और बौद्ध धर्म के विकास के इतिहास में उसके क्या महत्त्वपूर्ण साक्ष्य हैं ?

दीपवंश का अतिरञ्जनामय वर्णन :

दीपवंस इतना अधिक अतिरञ्जनामय एवं अलौकिक वर्णनबहुल ग्रन्थ है कि उसे शब्दशः इतिहास नहीं माना जा सकता। उदाहरण स्वरूप (१) पालि त्रिपिटक के साक्ष्य से हम जानते हैं कि भगवान् अपने पैंतालीस वर्ष के चारिकाकाल में भारत के मध्यमण्डल को छोड़ कर कहीं नहीं गये। (२) राजकुमार विजय का उसी दिन लङ्काद्वीप पहुँचना जिस दिन भगवान् का महापरिनिर्वाण हुआ- यह भी वास्तविक घटनाक्रम से मेल नहीं खाता। कारण कि यदि विजय नाम का कोई व्यक्ति महापरिनिर्वाण के दिन लङ्का द्वीप गया होता और उस के प्रति भगवान् का कुछ भी आत्मीयत्व होता तो दीघनिकाय के महापरिनिर्वाण सूत्र में, जहाँ कि भगवान् के महापरिनिर्वाण का विशद वर्णन है, अवश्य कुछ न कुछ सङ्केत इसके लिये होता। इसी तरह (३) महेन्द्र एवं उन के सहयोगी भिक्षुओं का आकाशमार्ग से उड़ कर लङ्का में पहुँचना भी किसी अन्य साक्ष्य से प्रमाणित नहीं है। (४) इसी प्रकार लौहप्रासाद एवं महाधातुस्तूप-निर्माण के समय अनेक प्रकार के चमत्कार होना भी ऐतिहासिक शैली नहीं कहलाता। यह केवल धर्म के प्रति श्रद्धा बढ़ाने में ही निमित्त बन सकता है।

अतः इन या ऐसी ही अन्य बातों को एक तरफ रख कर दीपवंस की मूलवस्तु का परीक्षण किया जाय तो उससे हमें निश्चय ही प्रामाणिक इतिहास तक पहुँचने में सहायता मिलेगी। इतना ही नहीं, लङ्काद्वीप के धार्मिक एवं राजनीतिक

इतिहास के साथ साथ भारतीय इतिहास की अनेक समस्याओं को सुलझाने में भी बहुत दूर तक सहयोग मिल सकता है ।

१. कालानुक्रम :

दीपवंस के अन्य वर्णन कितने ही अतिरञ्जनामय क्यों न हों, कालानुक्रम के सम्बन्ध में उनका प्रामाण्य एवं महत्त्व निर्विवाद है । उन वर्णनों की इसी विशेषता को लक्ष्य करते हुए प्रो.रायस डेविस कहते हैं– "लङ्का के इतिहास-ग्रन्थों की कालानुक्रमणिका इङ्गलैण्ड एवं फ्रांस के उन सर्वोत्तम ग्रन्थों की कालानुक्रमणिका से भी, जो उन देशों में अनेक शताब्दियों बाद तक लिखे गये, किसी प्रकार कम महत्त्वशाली नहीं है ।[1]

यद्यपि विजय से प्रारम्भ कर देवानाम्प्रिय तिष्य से पूर्व तक के कालानुक्रम के विषय में तो कुछ निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता, परन्तु देवानाम्प्रिय तिष्य एवं दुष्टग्रामणी से महासेन तक का कालानुक्रम प्रामाणिक माना जा सकता है[2] । क्योंकि ग्रन्थ में बुद्ध महापरिनिर्वाण से कालक्रम निर्धारित करते हुए राजाओं का शासनकाल निर्धारित किया गया है, अतः उससे न केवल बुद्ध के महापरिनिर्वाण, अपितु अन्य अनेक भारतीय ऐतिहासिक घटनाओं के तिथिविनिश्चय में भी पर्याप्त सहायता मिली है ।

२. भारतीय ऐतिहासिक घटनाओं का समर्थन :

दीपवंश में वर्णित तथ्यों से भारतीय ऐतिहासिक घटनाओं का अद्भुत रूप से समर्थन मिलता है । उदाहरण के रूप में अशोक के पूर्ववर्ती राजाओं, जैसै–नौ नन्द, चन्द्रगुप्त, बिम्बिसार आदि का वर्णन, बिम्बिसार एवं अजातशत्रु के पारस्परिक सम्बन्ध और बुद्ध के साथ उनका समकालिक होना, भगवान् बुद्ध का बिम्बिसार से आयु में पाँच वर्ष बड़ा होना, चन्द्रगुप्त एवं उस के ब्राह्मणमन्त्री चाणक्य का विवरण, सब से बढ़ कर–अशोक के बुद्धमहापरिनिर्वाण के दो सौ अट्ठारह (२१८) वर्ष बाद अभिषिक्त होना आदि इन दीपवंस आदि लङ्काद्वीपीय ग्रन्थों में ऐसे तथ्य हैं कि जो भारतीय इतिहास के समर्थन में उद्धृत किये जा सकते हैं ।

३. धर्मप्रचारहेतु धर्मोपदेशकों के भेजने का समर्थन :

दीपवंस के अष्टम परिच्छेद में वर्णित धर्मोपदेशकों का बौद्ध धर्म के प्रचार हेतु देश-विदेश में गमन भी भारत में प्राप्त अभिलेखों के आधार से सत्य सिद्ध होता

---

1. बुद्धिस्ट इण्डिया, पृ. २७४
2. द्र०–इसी ग्रन्थ के परिशिष्ट में सूची सं. २ ।

है । (क) भारत के मध्यप्रदेशस्थित साँची-स्तूप में प्राप्त एक धातु-मञ्जूषा पर उत्कीर्ण है–'सुपुरिसस्स मज्झिमस्स' (सत्पुरुष मध्यम का) (ख) ऐसी ही दूसरी धातुमञ्जूषा पर उत्कीर्ण है– ' सुपुरिसस्स मोगलिपुतस्स' (सत्पुरुष मोग्गलिपुत्त का) (ग) इसी तरह साँची-स्तूप की एक पाषाणवेष्टनी पर, उरुवेला से लङ्का को ले जायी जाने वाली बोधिवृक्षशाखा का अतीव मनोमुग्धकारी चित्र अङ्कित है । इससे भी दीपवंस में वर्णित सङ्घमित्रा का लङ्काद्वीपगमन प्रमाणित होता है ।

४. पुरातात्त्विक गवेषणाओं तथा चीनी यात्रियों के यात्रावर्णन से समर्थन :
(क) दीपवंस में वर्णित अशोक एवं देवानाम्प्रिय तिष्य का समकालिक होना पुरातात्त्विक गवेषणाओं तथा ह्वेनसाङ्ग आदि चीनी यात्रियों के यात्रावृत्तों से भी सत्य सिद्ध होता है । (ख) दीपवंस में वर्णित बौद्धसङ्गीतियों की ऐतिहासिकता त्रिपिटक के चुल्लवग्ग ग्रन्थ से प्रमाणित होती है ।

अतः इन 'दीपवंस' आदि इतिहासग्रन्थों के वर्णन ऐतिहासिक दृष्टि से भी समाश्रयणीय हैं । विशेषतः उत्तरकालीन इतिहास के सम्बन्ध में तो इनका साक्ष्य अधिक स्पष्ट और प्रामाणिक हैं ।

पालिसाहित्य और बौद्धधर्म के विकास के इतिहास में दीपवंस का साक्ष्य :

दीपवंस का विशेष महत्त्व लङ्काद्वीप के धार्मिक इतिहास-ग्रन्थके रूप में ही है ।

(१) सर्वप्रथम इस में स्थविर उपालि से स्थविर महेन्द्र तक विनयधरों का जो कालानुक्रम दिया है वह लङ्काद्वीप एवं जम्बूद्वीप–दोनों देशों में बौद्ध धर्म के विकास की दृष्टि से अतीव महत्त्वशाली है ।

(२) लङ्काद्वीप के स्तूप, विहार एवं चैत्यों के वर्णन की दृष्टि से भी दीपवंस की रचना महत्त्वपूर्ण है । दीपवंस में अनुराधपुर के महाविहार, अभयगिरिविहार, स्तूपाराम, महामेघवनोद्यान, लौहप्रासाद आदि विहारों के वर्णन लङ्का में तीसरी-चौथी शताब्दी तक के बौद्ध धर्म में हुए विकास पर इतना प्रामाणिक प्रकाश डालते हैं कि पुरातत्त्व के अनुसन्धाताओं को उनसे बहुत कुछ सहयोग मिल सकता है ।

(३) इसी प्रकार इस ग्रन्थ में लङ्का में होनेवाले तत्कालीन उत्सवों का भी यथाप्रसङ्ग ललित वर्णन उपलब्ध है ।

(४) विशेष वर्णनीय यह भी है कि इस ग्रन्थ में भारत लङ्का द्वीप का शताब्दियों तक परस्पर आदान-प्रदान (धार्मिक, सामाजिक एवं व्यापारिक) का भी स्थान-स्थान पर अच्छा चित्रण है ।

(५) तत्कालीन भारतीय इतिहास एवं भूगोल तो मानो इस ग्रन्थ में पुनरुज्जीवित हो उठा है । राजगृह, कौसाम्बी, वैशाली, उज्जयिनी, विदिशा,

पुष्पपुर (पाटलिपुत्र), नालन्दा आदि का सजीव चित्रण उस समय की स्मृति को हरी-भरी (ताजा) कर देता है । बुद्ध-स्मृति से अङ्कित भारतीय नगरों का जैसे– कपिलवस्तु, कुशावती, कुशीनारा, गिरिव्रज (राजगृह), जेतवन (श्रावस्ती), मथुरा, उरुवेला (गया), काशी, ऋषिपतन (सारनाथ), पाटलिपुत्र, वाराणसी आदि के वर्णन से तथा अङ्ग, मगध, कलिङ्ग, चम्पा, मल्ल, वेणुवन, इन्द्रप्रस्थ, भरुकच्छ, शूर्पारक, तक्षशिला, सागल (सियालकोट), अवन्ती, मद्र, प्रयाग आदि विशिष्ट स्थानों तथा उतने ही अधिक लङ्का द्वीप के सांस्कृतिक केन्द्रों और स्थानों से, जो इस ग्रन्थ में वर्णित हैं,(इन के सहारे) एक भूगोल का निर्माण किया जा सकता है ।

पालि साहित्य के इतिहास में इस ग्रन्थ का साक्ष्य :

यह ग्रन्थ त्रिपिटक की प्राचीनता सम्बन्धी उस परम्परा का समर्थन करता है जिसके दर्शन हम पहले **अशोक के अभिलेखों** तथा **मिलिन्दपञ्ह** ग्रन्थ में करते हैं । इस ग्रन्थ में तीनों पिटकों, पाँचों निकायों तथा उनके विभिन्न ग्रन्थों को नामग्रहणपूर्वक, उनके वग्गों, पञ्ञासकों, संयुत्तों का पूर्ण विवरण देते हुए, उद्धृत किया है । इस विवरण से यह स्पष्ट प्रमाणित होता है कि पालि त्रिपिटक, इस ग्रन्थ के प्रणयनकाल में भी, उसी नाम एवं उसी वर्गीकरण में विद्यमान था जिस में वह आज है ।

क्या दीपवंस को महाकाव्य कहा जा सकता है?

महाकाव्य की परिभाषा करते हुए संस्कृत के प्रसिद्ध कवि आचार्य दण्डिन् ने बताया है कि काव्यग्रन्थ उसे ही कह सकते है जिस में अधोलिखित अट्ठारह (१८) बातों में से सब का या अधिक से अधिक का वर्णन हो । वे अट्ठारह बातें ये हैं– १. नगर, २. अर्णव (समुद्र), ३. शैल (पर्वत), ४. छह ऋतुएँ, ५. चन्द्रोदय एवं ६. सूर्योदय का वर्णन हो, ७. उद्यानक्रीड़ा, ८. जलक्रीड़ा, ९. मद्यपानक्रीड़ा, १०. रतिक्रीड़ा आदि उत्सवों का वर्णन हो, ११. विनोदमय उपालम्भ, संवाद, १२. विवाह, १३. सन्तानोत्पत्ति का वर्णन हो, १४. मन्त्रियों के साथ गूढ मन्त्रणा, १५. दूत-संवाद, १६. शत्रु पर आक्रमण के लिये प्रस्थान, १७. युद्ध एवं १८. नायक की विजय वर्णित की गयी हो । वे कहते हैं–

"नगरार्णव शैलर्तुचन्द्रार्कोदयवर्णनैः ।
उद्यान-सलिलक्रीड़ा-मधुपान-रतोत्सवैः ॥
विप्रलम्भैर्विवाहैश्च कुमारोत्पत्तिवर्णनैः ।
मन्त्र-दूत-प्रयाणाजि-नायकाभ्युदयैरपि ॥"

अब पाठक स्वयं इस ग्रन्थ को पढ़कर निश्चय कर ले कि उपर्युक्त १८ बातों में से कितनी बातें इस ग्रन्थ में वर्णित हैं कि जिनके बल पर इसे महाकाव्य कहा जा सके। फिर भाषा, छन्द एवं शैली की दृष्टि से तो इसकी दुर्बलता प्रारम्भ में ही सिद्ध की जा चुकी है।

अन्त में, पाठकों से विनम्र निवेदन है कि दीपवंस-महावंस में वर्णित उभय-साधारण विषयों के विवेचन हेतु हमारी महावंस ग्रन्थ की भूमिका के अवलोकन का भी कष्ट करें। पुनरुक्तिदोष से बचने के लिये कुछ बातें वहीं लिखी गयी हैं।

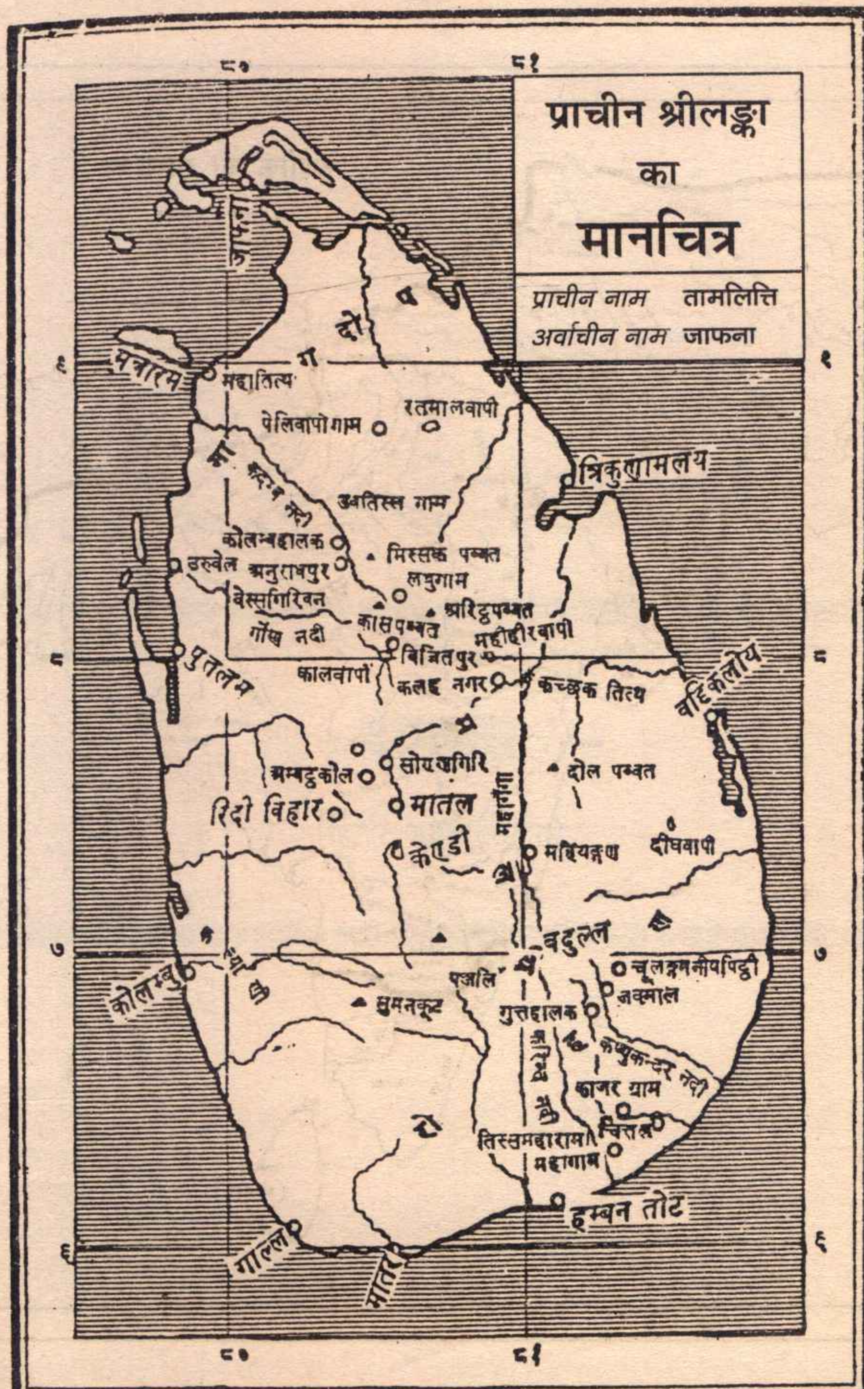
वाराणसी
१५.८.९६

–स्वामी द्वारिकादासशास्त्री

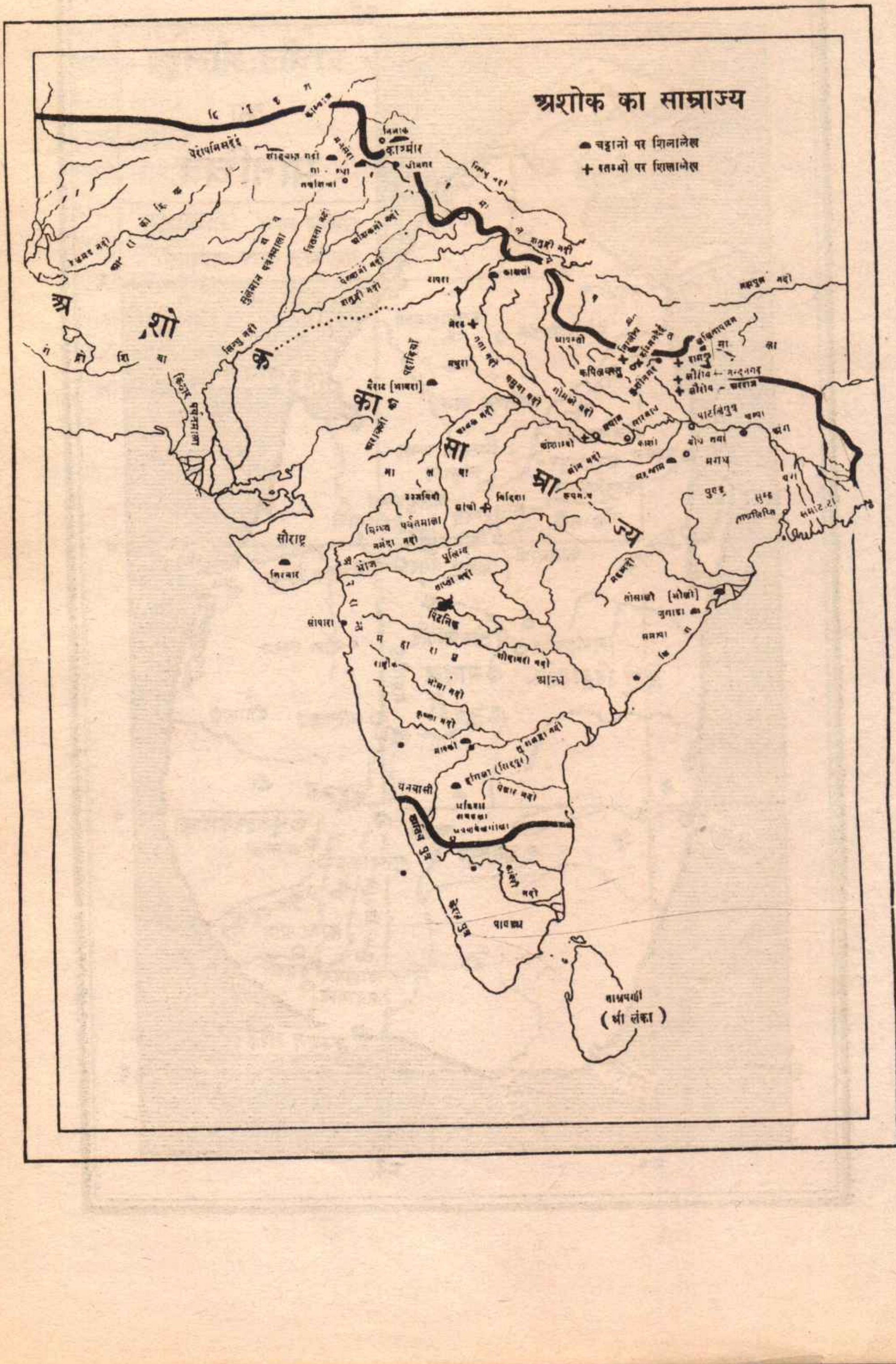
दीपवंस का

विषयानुक्रम

●



प्राचीन श्रीलङ्का
का
मानचित्र
प्राचीन नाम तामलित्ति
अर्वाचीन नाम जाफना
जाफना
महातित्थ
पेलिवापीगाम
रतमालवापी
त्रिकुणामलय
अवतिस्स गाम
कोलम्बहालक
मिरसक पब्बत
उरुवेल
अनुराधपुर
लज्जुगाम
वेस्सगिरिवन
अरिट्ठपब्बत
कासपब्बत
गोण नदी
महाहीरवापी
पुत्तलम
विजितपुर
कालवापी
कलह नगर
कच्छक तित्थ
मम्बट्ठकोल
दोल पब्बत
रिदी विहार
मातल
कोण्डी
महगंगा
दीघवापी
बदुल्ल
कोलम्बु
सुमनकूट
चूलङ्गनीयपिट्ठी
जज्जमाल
गुत्तहालक
कण्डुकन्दर नदी
काजर ग्राम
तिस्समहाराम
चित्तल
महागाम
हम्बन तोट
गाल्ल
मातर



अशोक का साम्राज्य
चट्टानों पर शिलालेख
स्तम्भों पर शिलालेख
अशोक का साम्राज्य
काश्मीर
सौराष्ट्र
पाटलिपुत्र
मगध
आन्ध्र
वनवासी
(श्री लंका)

दीपवंस

(हिन्दी अनुवादसहित)

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स

१.

दीपवंसो

पठमो परिच्छेदो

(यक्खदमनं)

[S.1, R.13] दीपागमनं बुद्धस्स, धातु च बोधियागमं ।
सङ्गहाचरियवादं च, दीपम्हि सासनागमं ॥ १ ॥

नरिन्दागमनं वंसं, कित्तयिस्सं सुणाथ मे ।
पीतिपामोज्जजननं, पसादेय्यं मनोरमं ॥ २ ॥

उदग्गचित्ता सुमना, पहट्ठा[1] तुट्ठमानसा ।
निद्दोसं भद्रवचनं, सक्कच्चं सम्पटिच्छथ ॥ ३ ॥

सुणाथ सब्बे पणिधाय मानसं
वंसं पवक्खामि परम्परागतं ।
अतिप्पसत्थं बहुनाभिवण्णितं
एतम्हि[2] नानाकुसुमं व गन्थितं ॥ ४ ॥

अनूपमं वंसवरग्गवासिनं[3]
अपुब्बं[4] अनञ्ञं तथ सुप्पकासितं ।
अरियागतं उत्तमसब्भिवण्णितं,
सुणाथ[5] दीपत्थुतिसाधुसक्कतं ॥ ५ ॥

---

1. सहट्ठा-सी. ।
2. एतं हि-सी. ।
3. वंसवरग्गवादितं-सी. ।
4. सब्बं-सी. ।
5. सुणन्तु-सी. ।

उन भगवान् अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध को प्रणाम

दीपवंस

प्रथम परिच्छेद

(यक्षदमन-वर्णन)

ग्रन्थ की विषय-वस्तु—इस ग्रन्थ में हम इन विषयों का वर्णन करेंगे—१. भगवान् बुद्ध का लङ्का द्वीप में आना २. भगवान् के शरीर की धातुओं की पूजा, ३. बोधि वृक्ष का लङ्काद्वीप में लाया जाना, ४. तीनों धर्मसङ्गीतियों का वर्णन, ५. बौद्धों के आचार्यवादों का यथासमय क्रमशः विभाजन-विस्तार, ६.(लङ्का) द्वीप में बौद्ध धर्म का प्रचार-प्रसार, ७. द्वीप में प्रथम (भारतीय) राजा का आगमन, तथा, ८. उस के वंश का समय-क्रम से विस्तार । इन सभी विषयों का विस्तार से वर्णन किया जायगा । जिज्ञासु जन इसे ध्यानपूर्वक सुनें ॥ १-२ ॥

ग्रन्थ की उपादेयता—क्यों कि इन बातों का श्रवण धर्मप्रेमी जनता के लिये प्रीति एवं प्रमोद (हर्ष) का जनक है, (बुद्ध, धर्म एवं सङ्घ में) श्रद्धा का उत्पादक है, मन, एवं बुद्धि के लिये पढने-सुनने में रुचिकर है । इसमें कारण यह है कि इसका अनेक प्रकार से यहाँ (इस ग्रन्थ में) वर्णन हुआ है । अतः इसे मन लगा कर आप लोग सुनें ।

इस के श्रवण में आप यत्किञ्चित् भी उपेक्षा न करें, अपितु उत्साहितचित्त, शुद्ध-हृदय, प्रहृष्टमन एवं सन्तुष्टचित होकर इसे सत्कारपूर्वक सुनें ॥ ३ ॥

विशेषतः, श्रोता इसे इसलिये भी ध्यान से सुनें कि मैं इसमें परम्परागत बौद्धों (स्थविरों तथा राजाओं) के वंश का वर्णन करूँगा, जो कि अत्यधिक प्रशस्त है (प्रशंसनीय) है, बहुत से विशिष्ट विद्वानों द्वारा अभिवर्णित भी है तथा जो इस ग्रन्थ में स्थान-स्थान पर सुगन्धित पुष्पों की तरह गुँथा हुआ है ॥ ४ ॥

यह (इतिहास) वर्णन अनुपम है, अद्वितीय है, अच्छे वंशों के सद्गुणों से परिपूर्ण है, आर्य (श्रेष्ठ) जनों से परम्परया प्राप्त है, श्रेष्ठ विद्वानों द्वारा पुनः पुनः वर्णित भी है । इसमें सबसे बढकर विशेष यह है कि इस में स्थान-स्थान पर यथाप्रसङ्ग इस द्वीप की सज्जनों द्वारा मान्य स्तुति (अच्छाइयाँ, उन्नति, विकास आदि) भी वर्णित है ॥ ५ ॥

[R.14] आसभं ठानपल्लङ्कं, अचलं दळहमकम्पितं ।
चतुरङ्गे पतिट्ठाय, निसीदि पुरिसुत्तमो ॥ ६ ॥

[S.2] निसज्ज पल्लङ्कवरे नरासभो,
दुमिन्दमूले दिपदानमुत्तमो ।
न छम्भति वीतभयो व केसरी,
दिस्वान मारं सहसेनमागतं[1] ॥ ७ ॥

मारवादं भिन्दित्वान वित्रासेत्वा ससेनकं ।
जयो अत्तमनो धीरो सन्तचित्तो समाहितो ॥ ८ ॥
विपस्सना कम्मट्ठानं मनसिकारं च योनिसो ।
सम्मसि बहुविधं धम्मं अनेकाकारनिस्सितं ॥ ९ ॥

पुब्बेनिवासञाणं च दिब्बचक्खुं च चक्खुमा ।
सम्मसन्तो महाञाणी तयो[2] यामे[2] अतिक्कमि ॥ १० ॥

ततो पच्छिमयामम्हि पच्चयाकारं विवट्टयि ।
अनुलोमं पटिलोमं च मनसा का सिरीघनो ॥ ११ ॥

ञत्वा धम्मं परिञ्ञाय पहानं मग्गभावनं ।
अनुस्सरि[3] महाञाणी विमुत्तो पधिसङ्खये ॥ १२ ॥

सब्बञ्ञुतञाणवरं अभिसम्बुद्धो महामुनि ।
बुद्धो बुद्धो ति तं नामं समञ्ञा पठमं अहु ॥ १३ ॥

बुज्झित्वा सब्बधम्मानं उदानं कत्वा पभङ्करो ।
तदेव पल्लङ्कवरे सत्ताहं वीतिनामयि ॥ १४ ॥

समितसब्बसन्तासो कतकिच्चो अनासवो ।
उदग्गो सुमनो हट्ठो विचिन्तेसि बहुं हितं ॥ १५ ॥

---

1. सहसेनवाहनं- रो. ।
2-2. यामे तयो- रो. ।
3. अनुसासि–रो. ।

भगवान् को बुद्धत्व-प्राप्ति---पुरुषश्रेष्ठ (गौतम) चार अङ्गों (पाद, जानु, जङ्घा एवं नितम्ब) का आश्रय लेकर दृढ, निश्चल एवं किसी भी तरह विचलित न करने योग्य श्रेष्ठ (उत्तम, आर्षभ) आसन लगा कर विराजमान हुए ॥ ६ ॥

वे प्राणियों में सर्वोत्तम, पुरुषो में श्रेष्ठ, द्रुमेन्द्र (अश्वत्थ, बोधिवृक्ष) के नीचे श्रेष्ठ पद्मासन से विराजमान होकर ऐसे बैठे थे जैसे कोई सिंह सर्वथा निर्भय होकर बैठा हो । उस समय, अपनी विशाल सेना के साथ आये मार से भी वे कोई भय नहीं मान रहे थे ॥ ७ ॥

वे मार के सभी षड्यन्त्रों को विफल कर, उसकी सेना को परास्त कर, विजयी योद्धा के रूप में सन्तोष एवं धैर्य के साथ शान्तचित्त होकर समाधि-अवस्था में विराजमान थे ॥ ८ ॥

उन्होंने, उस समय विपश्यना (अन्तर्दृष्टि), कर्मस्थान (ध्यान का विषय), योनिशः मनस्कार (यथार्थ विचार) तथा अन्य बहुत तरह के अनेक आकार वाले धर्म पर विचार किया ॥ ९ ॥

इसी तरह उन चक्षुष्मान् (दिव्यदृष्टिसम्पन्न) महाज्ञानी ने पूर्वनिवास (पूर्वजन्म) विषयक ज्ञान एवं दिव्य दृष्टि पर भी विचार किया । यों, उन्होंने रात्रि के पहले तीन प्रहर बिताये ॥ १० ॥

फिर उन शास्ता (श्रीघन) ने अन्तिम प्रहर में अनुलोम एवं प्रतिलोम क्रम से प्रत्ययों के आकार (प्रतीत्यसमुत्पाद) पर चित्त में सूक्ष्मता से विचार किया ॥ ११ ॥

यों, वे महाज्ञानी धर्म पर सूक्ष्मतया विचार कर, अकुशल धर्मों के प्रहाण एवं मार्ग-भावना का अनुस्मरण कर, चित्तविकारों को क्षीण कर विमुक्तिरस का पान करने लगे ॥ १२ ॥

इस तरह वे महामुनि अब तक श्रेष्ठ सर्वज्ञता का साक्षात्कार कर चुके थे, अतः वे लोक में 'जान चुके' 'जान चुके' ऐसी प्रसिद्धि प्राप्त कर 'बुद्ध' इस नाम से प्रख्यात हो गये ॥ १३ ॥

यो, वे प्रभाकर सभी धर्मों को सम्यक्तया साक्षात् कर, उनके विषय में विमल हृदयोद्गार प्रकट करते हुए सप्ताहपर्यन्त उस बोधि-आसन पर ही विराजमान रहे तथा विमुक्ति सुख का रसानुभव करते रहे ॥ १४ ॥।

जन-हित में धर्मोपदेश हेतु विचार--- यों, बोधि प्राप्त करने के बाद, अपने सभी सांसारिक दुःखों को क्षीण होने से स्वयं को कृतकृत्य मानते हुए क्षीणास्रव, प्रसन्नचित्त (उदग्र) , प्रसन्नवदन प्रहृष्ट उन भगवान् ने जनता का हित सोचते हुए बहुत तरह से चिन्तन किया ॥ १५ ॥

खणे खणे लये बुद्धो सब्बलोकमवेक्खति ।
पञ्चचक्खु विवरित्वा ओलोकेसि बहू[1] जने[1] ॥ १६ ॥

अनावरणञाणं तं पेसेसि दिपदुत्तमो ।
अद्दस विरजो सत्था लङ्कादीपं वरुत्तमं ॥ १७ ॥

सुदेसं उतुसम्पन्नं सुभिक्खं रतनाकरं ।
पुब्बबुद्धमनुचिण्णं ओरियगणनिसेवितं ॥ १८ ॥

लङ्कादीपवरं दिस्वा सुखेत्तं अरियालयं ।
ञत्वा कालमकालं च विचिन्तेसि अनुग्गहो ॥ १९ ॥

[S.3] "लङ्कादीपे इमं कालं यक्खभूता च रक्खसा ।
सब्बे बुद्धपतिकुट्ठा सक्का उद्धरितुं बलं ॥ २० ॥

[R. 15] नीहरित्वा यक्खगणे पिसाचे अवरुद्धके ।
खेमं कत्वान तं दीपं वसापेस्सामि मानुसे ॥ २१ ॥

तिट्ठन्तेसु[2] इमे पापे यावतायुं असेसतो ।
सासनन्तरं भविस्सति लङ्कादीपवरे तहिं ॥ २२ ॥

उद्धरित्वानहं सत्ते पसादेत्वा बहू जने ।
आचिक्खित्वान तं मग्गं अच्चुतं अरियापथं ॥ २३ ॥

अनुपादा परिनिब्बायि, सुरियो अत्थङ्गतो यथा ।
परिनिब्बुते चतुमासे हेस्सति पठमसङ्गहो ॥ २४ ॥

ततो परं वस्ससते वस्सानट्ठारसानि च ।
दुतियो[3] सङ्गहो होति पवत्तत्थाय सासनं ॥ २५ ॥

1-1. बहुज्जने-इति पि पाठो । एवमुपरि पि ।

2. 0 च- रो. ।

3. ततियो–सी., रो. ।

इस अवसर पर, भगवान् बुद्ध ने क्षण-क्षण में परिवर्तित होते हुए सभी लोकों को सब तरह से देखा । तथा उन्होंने अपने पाँच चक्षुओं से (१. मांसचक्षु, २, दिव्यचक्षु, ३. प्रज्ञाचक्षु, ४. बुद्धचक्षु[1] एवं ५. समन्तचक्षु) सभी तरह की जनता का अवलोकन किया ॥ १६ ॥

लङ्काद्वीप की उपयोगिता– तब पुरुषों में श्रेष्ठ, निष्पाप उन भगवान् ने अपने अनावरणज्ञान (बुद्ध ज्ञान) से उस श्रेष्ठ लङ्काद्वीप को देखा ॥ १७ ॥

जो प्रत्येक दृष्टि से अच्छा देश है, जहाँ यथासमय सभी ऋतुओं का आगमन-प्रत्यागमन होता है, जहाँ सदा सुभिक्ष (सुवृष्टि) ही रहता है, जो सभी तरह के रत्नों का उत्पत्तिस्थल है, जहाँ पूर्व बुद्ध भी धर्मोपदेश हेतु जाते रहे है, जहाँ विशेषतः सज्जनों का ही वास है ॥ १८ ॥

ऐसे आर्यजननिषेवित, सत्क्षेत्रभूत लङ्का द्वीप को देखकर उस पर धर्मोपदेश हेतु अनुग्रह करने का विचार करते हुए उन्होंने उस के समय-असमय का चिन्तन किया ॥ १९ ॥

तब उन्होंने विचारा–"लङ्काद्वीप में इस समय यक्ष एवं राक्षसों का बाहुल्य है ये सभी बुद्ध धर्म के विरोधी (प्रतिक्रुष्ट) हैं । इन्हें बलपूर्वक ही वहाँ से निकालना पड़ेगा ॥ २० ॥

"अतः, धर्म के आचरण में अवरोध (रुकावट) डालने वाले इन यक्ष एवं पिशाचों के समूहों को वहाँ से निकालकर उस द्वीप को सुखमय (खेम) बनाकर वहाँ मनुष्यों को वसाऊँगा ॥ २१ ॥

"यदि ये पापी अपने जीवन भर (आयुःपर्यन्त) उस लङ्का में रह गये तो वहाँ धर्मप्रचार में बहुत बाधा आयगी ॥ २२ ॥

"अतः मैं इन्हें वहाँ से निकाल कर अवशिष्ट बहुत से धार्मिक जनों को उस अच्युत एवं आर्यनिषेवित (अष्टाङ्गिक) मार्ग का उपदेश देकर ही ॥ २३ ॥

"अनुपधिशेष परिनिर्वाण को प्राप्त करूँगा, जैसे सूर्य जनता के सभी उपयोगी कार्य करके ही अस्त हुआ करता है । मेरे परिनिर्वृत होने के चार मास बाद प्रथम धर्मसंग्रह (धर्मसङ्गीति) होगा ॥ २४ ॥

"फिर इसके बाद एक सौ अट्ठारह (११८) वर्ष बीतने के बाद द्वितीय धर्म-सङ्गीति, धर्म में प्रवृत्ति (स्थिरता) लाने के लिये, होगी ॥ २५ ॥

---

1. द्र.–महानिद्देस, सारिपुत्तसुत्त ।

इमस्मिं जम्बुदीपम्हि भविस्सति महीपति ।
महापुञ्ञो तेजवन्तो धम्मासोको[1] ति विस्सुतो ॥ २६ ॥

तस्स रञ्ञो असोकस्स पुत्तो हेस्सति पण्डितो ।
महिन्दो सुतसम्पन्नो लङ्कादीपं पसादये" ॥ २७ ॥

बुद्धो ञत्वा इमं हेतुं बहुं अत्थूपसंहितं ।
कालाकालं इमं दीपं आरक्खं सुगतो करि ॥ २८ ॥

पल्लङ्कं अनिमिसं च चङ्कमं रतनाघरं ।
अजपालमुचलिन्दो खीरपालेन सत्तमं ॥ २९ ॥

सत्तसत्ताहकरणीयं, कत्वान विविधं जिनो ।
बाराणसिं गतो वीरो धम्मचक्कं पवत्तितुं ॥ ३० ॥

धम्मचक्कं पवत्तेन्तो पकासेन्तो धम्ममुत्तमं ।
अट्ठारसन्नं कोटीनं धम्माभिसमयो अहु ॥ ३१ ॥

[S.4.] कोण्डञ्ञो भद्दियो वप्पो महानामो च अस्सजि ।
एते पञ्च महाथेरा विमुत्तानन्तलक्खणे ॥ ३२ ॥

यससहाया[2] चत्तारि पुन पञ्ञास दारके ।
बाराणसि इसिपतने वसन्ते[3] उद्धरी जिनो ॥ ३३ ॥

[R. 16] वाराणसिं वसित्वान[4] वुत्थवस्सो तथागतो ।
कप्पासिके वनसण्डे उद्धरि भद्दवग्गिये ॥ ३४ ॥

अनुपुब्बं चरमानो उरुवेलमवस्सरि ।
अद्दस विरजो सत्था उरुवेलकस्सपं जटिं ॥ ३५ ॥

---

1. असोकधम्मो- रो. ।
2. यसस्स सहाया–सी. ।
3. वसन्तो- रो. ।
4. पविसित्वान-सी. ।

"उस समय इस जम्बुद्वीप (भारतवर्ष) में एक महान् पुण्यशाली तेजस्वी (प्रतापी) राजा होगा, जिसका कि नाम 'धर्माशोक' होगा ॥ २६ ॥

"इस राजा का महेन्द्र नामक पुत्र होगा, जो पण्डित एवं गुरुमुख से धर्मश्रवण किये रहेगा वही इस समग्र लङ्का द्वीप को बुद्ध के प्रति श्रद्धालु बनायगा" ॥ २७ ॥

भगवान् ने (अपने अनावृत ज्ञान से) इस अत्यधिक अर्थयुक्त उपकारी काल-अकाल विषयक विचार को जान कर तब तक के लिये इस लङ्का द्वीप की रक्षा का उपाय कर दिया ॥ २८ ॥

भगवान् का वाराणसी-प्रस्थान---तब उन वीर भगवान् ने पर्यङ्क, अनिर्मिष, चंक्रमण, रत्नगृह, अजपाल, मुचलिन्द,एवं क्षीरपाल--इन सात आसनों पर सात सप्ताह पर्यन्त विविध प्रकार से विमुक्तिसुख का आनन्द लेते हुए धर्मचक्र-प्रवर्तन हेतु वाराणसी की ओर प्रस्थान किया ॥ २९-३० ॥

यों वहाँ (वाराणसी-सारनाथ में) भगवान् द्वारा प्रथम, अत एव अद्वितीय धर्मोपदेश करते समय अट्ठारह करोड़ (१८,००,००,०००) धर्मप्राण जन-समूह को धर्माभिसमय (धर्मलाभ) हुआ ॥ ३१ ॥

प्रथम धर्मोपदेश (धर्मचक्रप्रवर्तन) के समय-१. कोण्डञ्ञ, २. भद्दिय, ३. वप्प, ४, महानाम एवं ५. अस्सजि–इन पाँच महास्थविरों को विमुक्ति एवं शरीर की अनित्यता-अनात्मता का ज्ञान हुआ ॥ ३२ ॥

इसी तरह वाराणसी-इसिपतन में रहते हुए भगवान् ने (श्रेष्ठिपुत्र) यश, उसके चार साथी, फिर पचास (५०) तरुणों का भी अपने धर्मोपदेश से उद्धार किया ॥ ३३ ॥

वाराणसी में ही वर्षावास करते हुए भगवान् तथागत ने कपास के वनषण्ड में कुछ भद्रवर्गियों का उद्धार किया ॥ ३४ ॥

उरुवेल गमन-(फिर वर्षावास के बाद) क्रमशः चारिका करते हुए उरुवेल (गया के पास) पधारे । वहाँ भगवान् ने उरुवेल-काश्यप जटिल का चित्त निष्पाप (निर्विकार) देखा ॥ ३५ ॥

अग्यागारे अहिनागं दमेसि पुरिसुत्तमो ।
दिस्वा अच्छरियं सब्बे निमन्तिंसु तथागतं ॥ ३६ ॥

"हेमन्तं चातुमासम्हि इध विहर, गोतम !
मयं तं निच्चभत्तेन सदा उपट्ठहामसे" ॥ ३७ ॥

उरुवेलायं हेमन्ते वसमानो तथागतो ।
जटिले सपारिसज्जे विनेसि पुरिसासभो ॥ ३८ ॥

महायञ्ञं अकप्पिंसु[1] अङ्गा च मगधा उभो ।
दिस्वा यञ्ञे महालाभं विचिन्तेसि अयोनिसो ॥ ३९ ॥

"महिद्धिको महासमणो आनुभावं च तं महा ।
सचे महाजनकाये विकुब्बेय्य कथेय्य वा ॥ ४0 ॥

परिहायिस्सति मे ळाभो गोतमस्स भविस्सति ।
अहो नून महासमणो नागच्छेय्य समागमं" ॥ ४१ ॥

चरितं अधिमुत्तिं च आसयं च अनूसयं ।
चित्तस्स सोळसाकारे विजानाति तथागतो ॥ ४२ ॥

जटिलस्स चिन्तितं ञत्वा परचित्तविदू मुनि ।
पिण्डपातं कुरुदीपं गन्त्वान महतिद्धिया[2] ॥ ४३ ॥

अनोतत्तदहे बुद्धो परिभुञ्जित्वान भोजनं ।
तत्थ झानसमापत्तिं समापज्जि बहुं हितं ॥ ४४ ॥

बुद्धचक्खूहि लोकग्गो सब्बलोकं विलोकयि ।
अद्दस विरजो सत्था लङ्कादीपवरुत्तमं ॥ ४५ ॥

---

1. पकप्पिसुं-रो. ।
2. महाइद्धिया-रो. ।

(अतः उसके अग्न्यागार में ठहरने का विचार कर) वहाँ उस पुरुषोत्तम ने अग्न्यागार मे रहने वाले भयङ्कर विषधर अहिनाग का दमन किया । भगवान् का यह आश्चर्यजनक कार्य देखकर सभी (जटिलों) ने उनको सादर निमन्त्रित किया और कहा ॥ ३६ ॥

"भो गौतम! आप इस हेमन्त ऋतु के चार मास तक यहीं विराजें, हम आप की, प्रतिदिन भोजन देकर, सेवा करेंगे "॥ ३७ ॥

यों (निमन्त्रण स्वीकार कर,) भगवान् उस हेमन्त ऋतु में उरुवेला में ही वास करते हुए समग्र जटिल-समूह सहित उन तीनों जटिलों को धर्म-प्रवचन करते रहे ॥ ३८ ॥

इसी समय जटिलों ने एक महायज्ञ का अनुष्ठान प्रारम्भ किया । उसमें अङ्ग एवं मगध देशों के बहुत से विशिष्ट नागरिक अपनी तरफ से उपहार ले लेकर वहाँ उपस्थित होते । इस से उन जटिलों को अत्यधिक आर्थिक लाभ होता । अतः उन जटिलों ने सोचा– ॥ ३९ ॥

"यह महाश्रमण (गौतम) अत्यधिक ऋद्धिसम्पन्न है, एवं इसका आनुभाव (तेज, प्रताप) भी हमलोगों से अधिक है । यदि यह इस यज्ञ में उपस्थित जनता को यज्ञ के विरोध में कुछ कहने लगेगा तो वे नागरिक हमसे विमुख हो जायँगे । यों, हमारा वह आर्थिक लाभ क्षीण हो जायगा । अतः क्या ही अच्छा हो, ये श्रमण गौतम कुछ दिन के लिये कहीं चले जाँय ! यज्ञ के अवसर पर ये यहाँ उपस्थित न रहें" ॥ ४०-४१ ॥

भगवान् तो मानवचित्त की चरित, अधिमुक्ति, आशय एवं अनुशय आदि सोलहों (१६) गतियाँ जानते थे ॥ ४२ ॥

अतः परचित्त के ज्ञाता भगवान् ने जटिलों द्वारा मनमें सोची हुई बात जान ली, और वे अपने ऋद्धिबल से भिक्षा (पिण्डपात) हेतु कुरुद्वीप जाकर ॥ ४३ ॥

वहाँ, भगवान् ने अनवतप्तदह (मानसरोवर) पर भोजन किया और वे वहीं लोकहितार्थ ध्यानसमापत्ति (समाधि) में लीन हो गये ॥ ४४ ॥

समाधि से उठकर लोकमें श्रेष्ठ भगवान् ने अपने पाँच चक्षुओं में से बुद्धचक्षु से समग्र लोक का अनुवीक्षण किया । वहाँ उन्हें श्रेष्ठ, निष्पाप लङ्का द्वीप दिखायी दिया ॥ ४५ ॥

महावनं महाभीमं आहु लङ्कातलं तदा ।
नानायक्खा महाघोरा लुद्धा लोहितभक्खसा[1] ॥ ४६ ॥

[S.5.] चण्डा रुद्दा च रभसा[2] नानारूपविहेसिका ।
नानाधिमुत्तिका सब्बे सन्निपाते समागता[3] ॥ ४७ ॥

"तत्थ गन्त्वान तं मज्झे वीमंसेत्वान[4] रक्खसे ।
नीहरिते[5] पिसाचे ते मनुस्सा होन्ति[5] इस्सरा"॥ ४८ ॥

इममत्थं महावीरो चिन्तयित्वा बहुं हितं ।
[R. 17] नभं अब्भुग्गमित्वान जम्बुदीपा इधागतो ॥ ४९ ॥

यक्खसमागममज्झे उपरि सिरमत्थके ।
निसीदिनं गहेत्वान दिस्समानो नभे ठितो ॥ ५० ॥

ठितं पस्सन्ति सम्बुद्धं यक्खसेना समागता ।
"बुद्धो" ति तं न मञ्ञन्ति, "यक्खो अञ्ञतरो" इति ॥ ५१ ॥

गङ्गातीरे महियासु पोक्खलेसु,
पतिट्ठिते थूपट्ठाने सुभङ्गणे ।
तस्मिं पदेसम्हि[6] ठितो नरुत्तमो,
समप्पितो झानसमाधिमुत्तमं ॥ ५२ ॥

झानं लहुं खिप्पनिस्सन्तिकारो
मुनि समापज्जति चित्तक्खणे ।
सहसा समुट्ठाति[7] झानक्खणिया ।
समापयि सुचिन्तेहि पारमीगतो ॥ ५३ ॥

---

1. लोहित भक्खसं-सी. ।
2. पिसाचा- रो.
3. समागते- सी. ।
4. विहिंसेत्वान- सी. ।
5-5. नीहरित्वा पिसाचानं मनुस्सा होन्तु-रो. ।
6. पदेसस्मिं- रो. ।
7. तं उट्ठाति- रो. ।

उस समय लङ्काद्वीप की यह स्थिति थी कि वह लङ्का भूमि उस एक भयङ्कर महावन (घोर अरण्य) के रूप में परिवर्तित हो गयी थी । उसमें उस समय सब तरफ महाभयानक, लोभी, रक्तपिपासु यक्ष-राक्षस निर्भीक होकर भ्रमण कर रहे थे ॥ ४६ ॥

वे सभी चण्ड (क्रोधी) थे, कठोर रुद्ररूप थे, नाना रूप धारण कर लेते थे, नाना प्रकार की अधिमुक्ति (विश्वास) करने में प्रवीण थे, वे सभी इस समय किसी सम्मेलनविशेष में एकत्र हुए थे ॥ ४७ ॥

भगवान् ने विचार किया–"इस समय वहाँ जाकर उन के बीच में बैठकर किसी न किसी उपाय से उन पिशाचों तथा राक्षसों को निकाल देने पर वहाँ (उस द्वीप के) मनुष्य ही अधिपति (ईश्वरस्वामी) हो जायँगें" ॥ ४८ ॥

भगवान् ने यह लोकहितकारी चिन्तन किया, और वे आकाशमार्ग से चलकर, जम्बुद्वीप से लङ्काद्वीप पहुँचे ॥ ४९ ॥

यक्षसमागम–तथा वे उस यक्षसमागम में पहुँच कर, आकाश में स्थित रहते हुए सबके सिर पर बैठे हुए से दिखायी दिये ॥ ५० ॥

तो भी वहाँ एकत्र हुए वे यक्ष उन्हें उस अवस्था में बुद्धरूप में नहीं पहचान सके, अपितु वे समझते रहे कि हम में से कोई यक्ष ही बैठा हुआ है ॥ ५१॥

यह यक्षसमागम गङ्गा के दक्षिण तट पर, जहाँ आज महियङ्गणस्तूप बना हुआ है उसी स्थान पर, हो रहा था । हमारे पुरुषोत्तम भगवान् आकाश में ही विशिष्ट समाधि लगाकर बैठ गये ॥ ५२ ॥

ऐसे आश्रयविहीन स्थान पर भी भगवान् समाधिसमापन्न हो जाते थे और वे जब चाहते थे तब उस समाधि से उठ भी जाते थे ॥ ५३ ॥

ठितो नभे[1] इद्धि विकुब्बमानो,
यक्खो [2]महिद्धि [2]च महानुभावो ।
खणियं घना मेघसहस्सधारा,
पवस्सति सीतलवातदुद्दिनि ॥ ५४ ॥

"अहं करोमि ते उण्हं मम देथ निसीदितुं ।
अत्थि तेजबलं मय्हं परिस्सयविनोदनं"॥ ५५ ॥

"सचे विनोदितुं सक्का निसीदाहि यथिच्छितं ।
[R. 18] सब्बेहि समनुञ्ञातं तव तेजबलं कर"॥ ५६ ॥

"उण्हं याचथ मं सब्बे भिय्यो तेजं महातपं ।
खिप्पं करोम अच्चुण्हं तुम्हेहि अभिपत्थितं" ॥ ५७ ॥

ठिते मज्झन्तिके काले गिम्हानं सुरियो यथा ।
एवं यक्खानमातापो काये ठपितदारुणं ॥ ५८ ॥

[S. 6] यथा कप्पपरिवट्टे चतुसूरियआतपो ।
एवं निसीदने सत्थु तेजो होति ततुत्तरि ॥ ५९ ॥

यथा सुरियं उदेन्तं न सक्का चरितुं[3] नभे ।
एवं निसीदनं चम्मं नत्थि आवरणं नभे ॥ ६० ॥

निसीदनं कप्पजालं व तेजं सुरियं व पत्थरि[4] ।
महातपं विकिरति अग्गिजालं व नप्पकं ॥ ६१ ॥

1. नरो-रो. ।
2-2. न महिद्धि-रो. ।
3. आवरितुं- रो. ।
4. पत्थवि- रो. ।

इस तरह आकाशस्थित भगवान् ने यक्षरूप में अपने प्रताप से आकाश से भयङ्कर जलधारा बरसानी प्रारम्भ की । इस से कुछ ही क्षणों में ऐसा दुर्दिन हो गया कि हड्डियाँ कम्पा देने वाली ठण्ढी हवा भी उस वर्षा के साथ ही बहने लगी ॥ ५४ ॥

(इससे वे यक्ष शीत के कारण ठिठुरने लगे । वे तत्काल ही किसी तरह उष्णता (गर्मी) चाहने लगे । तब भगवान् ने कहा–)

"मैं तुम लोगों को उष्णता दे सकता हूँ, यदि तुम लोग मुझे बैठने के लिये कहीं उचित स्थान दे सको । मुझ में इतना सामर्थ्य है कि मैं तुम्हारे कष्टों का निवारण कर सकता हूँ" ॥ ५५ ॥

यक्ष बोले–"यदि आप हमारे कष्टों का निवारण कर सकें तो आप जिस स्थान पर विराजमान होना चाहें, विराजें ।" ऐसा कहकर सभी यक्षों ने भगवान् से प्रार्थना की कि वे अपना अलौकिक सामर्थ्य दिखावें ॥ ५६ ॥

भगवान् बोले– "तुम उष्णता की भी अभिकांक्षा कर रहे हो, तथा मेरा सामर्थ्य भी देखना चाहते हो । तो लो! मैं तुम्हारे लिये वह उष्णता प्रकट करता हूँ जो तुम्हें अभिवाञ्छित है" ॥ ५७ ॥

जैसे ग्रीष्म ऋतु के समय मध्याह्न काल में सूर्य तपता है, इसी तरह वह भगवान् द्वारा उत्पादित उष्णता यक्षों के शरीर पर तीव्रता से पड़ने लगी ॥ ५८ ॥

जैसे कल्पावसान के समय चार सूर्य एक साथ निकल कर जगत् पर भयङ्कर उष्णता फैंकते हैं उसी तरह उस समय भगवान् द्वारा अपने सामर्थ्य से प्रकट की गयी उस उष्णता का भी वही प्रभाव था ॥ ५९ ॥

जैसे सूर्य के उदित होने पर आकाश में साधारण प्राणी की गति कठिन हो जाती है; उसी तरह भगवान् का वह प्रदीप्त चर्मासन भी आकाश में अन्य को किसी भी तरह गतिमान् नहीं होने दे रहा था ॥ ६० ॥

भगवान् का वह चर्मासन उस समय वही प्रखर उष्णता फैंक रहा था, जैसे कल्पावसान के समय उदित चार (४) सूर्य उष्णता प्रकट किया करते हैं ॥ ६१ ॥

"अङ्गाररासिं जलितातपं तहिं,
निसीदनं अब्भसमं पदिस्सति ।
दीपेसु[1] उण्हं निदस्सेति दुस्सहं,
धुवं निपक्कं अयपब्बतूपमं[1] ॥ ६२ ॥

"पुरत्थिमं पच्छिम - दक्खिणुत्तरं,
उद्धं अधो दस दिसा इमायो ।
कथं गमिस्साम सुखी अरोगा,
कदा पमुञ्चाम इमं सुभेरवं ॥ ६३ ॥
सचे अयं यक्खो महानुभावो,
तेजो समापज्जति पज्जलायति ।
सब्बे व यक्खा विलया भविस्सरे,
भुसं व मुट्ठिरजं वातखित्तं ॥ ६४ ॥
बुद्धो[2] इसीनं[3] निसभो[3] सुखावहो,
दिस्वान यक्खे दुक्खिते भयट्टिते ।
अनुकम्पको कारुणिको महेसि,
विचिन्तयि[4] अत्थसुखं अमानुसे ॥ ६५ ॥
[R. 19] "अथञ्ञदीपं अतिरूपकं[5] इमं,
निन्नं थलं सब्बठानेकसादिसं ।
नदी पब्बत तडाक सुनिम्मलं,
दीपं गिरिं लङ्कातलसमूपमं ॥ ६६ ॥

"सुनिब्भयं सोभितसागरन्तरं[6],
पहूतभक्खं बहुधञ्ञमाकुलं ।
उतुसमत्थं हरिसद्दलं महिं,
वरं गिरिदीपमिमस्स उत्तरिं ॥ ६७ ॥

1-1. पक्कं व अयोमय पब्बतूपमं ।
दीपेसु उण्हं निदस्सेति दुस्सहं,
यक्खासु पटिसरणं गवेसयुं -रो. ।

2. ०च खो- रो. ।

3-3. इसिनिसभो- रो. ।

4. विचिन्तयी- सी. ।

5. पटिरूपकं- रो. ।

6. गोपितसागरन्तकं- रो. ।

तब यक्षों ने सोचा– "भगवान् का वह चर्मासन उष्णता से प्रदीप्त होता हुआ वैसा ही दिखायी दे रहा है मानो आकाश में प्रखर रूप से तपता हुआ कोई लौह पर्वत हो ॥ ६२ ॥

"यह महाप्रतापी यक्ष यदि पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण, ऊपर नीचे सभी दशों दिशाओं को इसी तरह प्रज्चलित करता रहा तो हमलोग इस प्रखर उष्णता के रहते कैसे सुखी, कैसे स्वस्थ (नीरोग) रह पायँगे, हम इस प्रखर उष्णता की भयङ्करता से कैसे मुक्त हों! ॥ ६३ ॥

तब तो हम सभी इस द्वीप से उसी तरह प्रलीन हो जायँगे जैसे हाथ की मुट्ठी में ली हुई रज (धूल) मुख की तीव्र वात (फूँक) से उड़ा दी जाती है" ॥ ६४ ॥

तब, उन अनुकम्पक एवं दयालु ऋषिश्रेष्ठ बुद्ध ने, जो सभी के लिये सुख की ही कामना करते है, उन यक्षों को इस तरह दुःखी एवं भयार्त देखकर, उन के सुखमय जीवन के लिये भी चिन्तन किया ॥ ६५ ॥

तब उनके चित्त में, यह बात ध्यान में आयी– "इन यक्षों के लिये कोई एक ऐसा द्वीप क्यों न खोज दिया जाय जो इस द्वीप की अपेक्षा निम्न स्थल वाला हो, सर्वत्र समतल भी हो, और इन यक्षों के अनुकूल भी हो, जहाँ जलसुविधा हेतु नदी-पर्वत-तालाबों में निर्मल जल हो, ऐसा कोई पहाड़ी द्वीप हो जो इस लङ्काद्वीप की तरह इनको सर्वथा सुविधाजनक हो ॥ ६६ ॥

(यों विचार करते-करते भगवान् के ध्यान में आया कि) "इस लङ्का द्वीप से आगे समुद्र के बीच में एक ऐसा द्वीप है जो भयरहित हैं, जहाँ प्रभूत खाद्यसामग्री है, जो नानाविध धान्यों से सम्पन्न हैं, जहाँ सभी ऋतुएँ यथासमय आती रहती हैं, जहाँ सब तरफ कोमल तथा हरी घास से भरी हुई भूमि है–वह द्वीप इस लङ्काद्वीप से सभी दृष्टियों से अच्छा है ॥ ६७ ॥

[S. 7.] "रम्मं मनुञ्ञं हरितं सुसीतलं,
आराम वनरामणेय्यकं वरं ।
सन्तीध फुल्ला फलधारिनो दुमा,
सुञ्ञं विवित्तं न च कोचि इस्सरो ॥ ६८ ॥

"महण्णवे सागरवारिमज्झे,
सुगम्भीरे ऊमि सदा पभिज्जरे[1] ।
सुदुग्गमे पब्बतजालमुस्सिते,
सुदुक्करं अत्थमनिट्ठमन्तरं ॥ ६९ ॥

"परमानरोसा[2] परपिट्ठिमंसिका,
अकारुणिका परहेठ्ठने रता ।
चण्डा च रुद्दा रभसा च निद्दया,
विदप्पनीका सपथे इमे[3] इध[3] ॥ ७० ॥

"अथ रक्खसा यक्खगणा च दुट्ठा,
दीपं इमं लङ्काचिरनिवासितं ।
ददामि सब्बं गिरिदीपपोराणं,
वसन्तु[4] सब्बे सुपजा अनीघा ॥ ७१ ॥

"इमं च लङ्कातलमानुसानं
पोराणकप्पट्ठितवुत्थवासं ।
वसन्तु लङ्कातले मानुसा बहू,
पुब्बेव ओजोवरमण्डसादिसे[5] ॥ ७२ ॥

"एतेहि अञ्ञेहि गुणेह्युपेतो,
मनुस्सवासो अपि[6] [6]नेकभद्दको ।
दीपेसु दीपिस्सति सासनागते,
सुपुण्णचन्दो व नभे उपोसथे" ॥ ७३ ॥

---

1. अभिज्जरे-सी. । ।
2. परवानरोसा-रो. ।
3-3. इध इमे-रो.।
4. वसन्तु-रो. ।
5. ०सादिसं-रो. ।
6-6. अनेकभद्दको-रो. । ।

"जो द्वीप रम्य भी है, मनोहारी भी है, हरा-भरा भी है और ठण्डा भी है । वहाँ अनेक बाग-बगीचे एवं सुन्दर वन भी हैं, जिनमें सब तरह से फले-फूले वृक्ष भी है। साथ ही वह अन्य प्राणियों से शून्य (रहित) भी है और एकान्त (विविक्त) भी है । सब से बड़ी बात वहाँ यह है कि उसका कोई स्वामी (राजा) भी नहीं है ।। ६८ ।।

"वह समुद्र से घिरा हुआ है, तथा समुद्र के मध्य में स्थित होने के कारण उसके चारों तरफ समुद्र के जल की इतनी ऊँची-ऊँची तरङ्गें उठती रहती हैं कि उनके भय से वहाँ जाने के लिये कोई साहस नहीं कर पाता, अतः वह 'सुदुर्गम' है । अथ च, वहाँ पर्वतसमूह का बाहुल्य होने के कारण, वहाँ के निवासियों के लिये किसी प्रकार का अनिष्ट या भय उत्पाद करना भी सब के लिये दुष्कर है ।। ६९ ।।

"ये यक्ष-राक्षस भी स्वभावतः ऐसे है जो दूसरों के प्रति वृथा ही अभिमान एवं क्रोध करते रहते हैं, दूसरे की पीठ का माँस नोंचने वाले (दूसरे पर अकारण आक्रमण करने वाले) हैं, ये निर्दय हैं, दूसरों को दुःख देने में ही सुख मानने वाले हैं, ये चण्ड (अतिक्रोधी) हैं, रौद्र हैं, या दिन-रात सोते रहते हैं । ऐसे ये यक्ष-राक्षस इस एकान्त एवं शून्य द्वीप में स्वाभिमान के साथ रह सकेंगे; क्योंकि यहाँ इनका कोई विरोधी (शत्रु) नहीं होगा ।। ७० ।।

"इस तरह ये दुष्ट यक्ष-राक्षस जो कि इस लङ्का द्वीप में चिर काल से रहते आ रहे है, यदि मैं इन्हें यह पुराना गिरिद्वीप वासहेतु पूर्णतः दे दूँ तो ये यहाँ अपने बाल-बच्चों के साथ सुखपूर्वक रह सकेंगे ।। ७१ ।।

"साथ ही लङ्का द्वीप भी फिर से उन मनुष्यों के निवासयोग्य हो जायगा, जो यहाँ पूर्व के कितने ही कल्पों से रहते आ रहे थे । अब वे (मनुष्य) पुनः इस लङ्का द्वीप में आकर सुख एवं सामर्थ्य सम्पन्न होकर पहले की तरह बसने लगेंगे ।। ७२ ।।

"इस तरह यक्षों से रहित हुआ एवं इन तथा ऐसे ही अन्य अनेक गुणों से युक्त यह द्वीप भी पुनः मनुष्यों के आवासयोग्य हो जायगा । समय आने पर यह द्वीप धर्म का प्रचार होने पर अन्य द्वीपों में अपनी वैसी ही विशेषता (भेद) बना लेगा जैसे उपोसथ (पूर्णिमा) के दिन आकाश में विशेषरूप से चमकता हुआ चाँद बना लेता है" ।। ७३ ।।

[R. 20] दीपं उभो मानुसा रक्खसा च,
उभो उभिन्नं तुलयं सुखं मुनि ।
भिय्यो सुखं लोकविदू उभिन्नं,
परिवत्तयि गोणयुगं व फासुकं ॥ ७४ ॥

सङ्कड्ढयि गोतमो दीपमिद्धिया,
बन्धं[1] व गोणं दळहरज्जु व कड्ढितं ।
दीपेन दीपं उपनामयी मुनि,
युगं व नावं दळहधम्मवेदितं ॥ ७५ ॥

[S. 8.] दीपेन दीपं युगलं तथागतो,
कत्वानुळारं विपरीत[2] रक्खसे ।
वसन्तु सब्बे गिरिदीपरक्खसा,
सपक्कमासावसनं ववत्थितं ॥ ७६ ॥

गङ्गं गिम्हम्हि यथा पिपासिता,
याचन्ति[3] यक्खा गिरिदीपमत्थिका ।
पविट्ठा सब्बे अनिवत्तने पुन,
पमुञ्च दीपं यथा भूमियं मुनि ॥ ७७ ॥

यक्खा सुतुट्ठा सुपहट्ठरक्खसा,
लद्धा सुदीपं मनसाभिपत्थितं ।
न[4] भायिंसु[4] सब्बे अतिप्पमोदिता,
ओतरिंसु सब्बे जने[5] नक्खत्तमहं ॥ ७८ ॥

---

1. बन्धनं-रो. ।
2. विपरीत-सी. ।
3. धावन्ति-रो.।
4-4. अभायिसुं-रो. ।
5. छणे-रो. ।

यों, लोकव्यवहारज्ञ भगवान् (बुद्ध) ने इन दोनों (यक्ष एवं मनुष्यों) के ही हित एवं सुख की कामना उसी तरह की जैसे कोई गृहस्थ अपने दोनों बैलों की सुखकामना करता है ॥ ७४ ॥

तब भगवान् (गौतम) ने अपने ऋद्धिबल से उस द्वीप को उसी तरह (समुद्रतल से) ऊपर उठा लिया जैसे नाव या बैल को दृढ़ रज्जु बाँध कर खींच लिया जाता है। फिर उन दोनों द्वीपों को एक दूसरे के पास ऐसे ही लाकर मिला दिया जैसे दो नावें एक ही दृढ रज्जु से बन्धी हों ॥ ७५ ॥

यों, उन्होंने दोनों द्वीपों को एक साथ मिला कर, उस दूसरे द्वीप को यक्ष राक्षसों के वास के लिये ऐसा अनुकूल बना दिया कि ये अपने लिये पका हुआ मांस (खाद्य) एवं आवास सुव्यवस्थित रूप से प्राप्त कर सकें ॥ ७६ ॥

जैसे ग्रीष्म ऋतु में कोई प्यासा आदमी गङ्गा (जलपूर्ण नदी) की खोज करता हो उसी तरह वे यक्ष-राक्षस अपने वास के लिये उस गिरिद्वीप में जब प्रविष्ट हुए तो भगवान् भी आकाश से भूमि पर उतर आये ॥ ७७ ॥

उस गिरिद्वीप को पाकर यक्ष पूर्णतः सन्तुष्ट हुए, राक्षस भी पूर्णतः प्रसन्न हो गये; क्योंकि उनकी यथाभीप्सित आकांक्षा (मनचाही माँग) पूर्ण हो गयी । तब वे निर्भीक एवं अत्यधिक प्रमुदित होते हुए उस उत्सव–सम्मेलन में पुनः एकत्र हुए ॥ ७८ ॥

अत्वान बुद्धो सुखिते अमानुसे,
ठत्वान[1] मेत्तं परित्तं भणि जिनो ।
कत्वान दीपं तिविधं पदक्खिणं,
सदा रक्खं यक्खगणविनोदनं ॥ ७९ ॥

सन्तप्पयित्वान[2] [2]भवे अमानुसे,
रक्खं च कत्वा दळहमेत्त-भावनं ।
उपद्दवं दीपेसु विनोदयित्वा,
अगोरुवेलं[3] पुन पि[4] तथागतो ॥ ८0 ॥ ति ॥

पठमो परिच्छेदो ॥
यक्खदमनं निट्ठितं ॥
भाणवारो पठमो ॥

●

---

1. कत्वान-रो. ।
2-2. सन्तप्पयित्वा पिसाचे-रो. ।
3. गतो उरुवेलं पुन-रो. ।
4. पि–रो. पोत्थके नत्थि ।

जब भगवान् ने देखा कि वे यक्ष-राक्षस (वह गिरिद्वीप वास के लिये पाकर) अत्यधिक सन्तुष्ट एवं सुखी है तो उनके प्रति स्वचित्त में मैत्री भावना उत्पन्न करते हुए उन्हें कुछ स्वल्प धर्मोपदेश किया और द्वीप की तीन बार प्रदक्षिणा की, जिसके प्रभाव से वह लङ्का द्वीप यक्ष-राक्षसों से विहीन रहता हुआ सुरक्षित रहे ॥ ७९ ॥

निगमन– यों, भगवान् उस लङ्का द्वीप के वासी यक्ष-राक्षसों को पृथक् द्वीप में बसाकर उन्हे सन्तुष्ट करते हुए तथा उनके प्रति दृढ मैत्री भावना प्रकट करते हुए, लङ्का द्वीप का समग्र उपद्रव (सङ्कट) मिटाकर, पुनः (जम्बुद्वीप के) उरुवेल स्थान पर (जटिलों के आश्रम में) लौट आये ॥ ८० ॥

प्रथम परिच्छेद समाप्त ॥
यक्ष दमन-वर्णन समाप्त ॥
प्रथम भाणवार समाप्त ॥

(इस प्रकरण के कथाविस्तार के लिये महावंस ग्रन्थ के प्रथम परिच्छेद का 'महियङ्गणगमन' नामक प्रसङ्ग भी देखें -अनु॰ ।)

२.

दुतियो परिच्छेदो

(१. नागदमनं)

[S. 9, R. 20] अरहं पन सम्बुद्धो कोसलानं पुरुत्तमं ।
उपनिस्साय विहासि सुदत्तारामे सिरीघनो ॥ १ ॥

तस्मिं जेतवने बुद्धो धम्मराजा पभङ्करो ।
सब्बलोकमवेक्खन्तो तम्बपण्णिवरद्दस ॥ २ ॥

अतिक्कन्ते पञ्चवस्सम्हि तम्बपण्णितलं अगा ।
अवरुद्धके विनोदेत्वा सुञ्ञं[1] दीपं अका सयं ॥ ३ ॥

उरगा अज्ज दीपम्हि पब्बतेय्या समुट्ठिता ।
उभो वियूळ्हसङ्गामं युद्धं करिंसु दारुणं ॥ ४ ॥

सब्बे महिद्धिका नागा सब्बे घोरविसा अहू ।
सब्बे व किब्बिसा चण्डा मदमाना अवस्सिता ॥ ५ ॥

खिप्पका पि महातेजा पदुट्ठा कक्खला खरा ।
उज्झानसञ्ञी सुकोपा उरगा विरलत्थिका ॥ ६ ॥

महोदरो महातेजो चूळोदरो च तेजवा[2] ।
उभो पि बलसम्पन्ना उभो पि वण्णातिसया ॥ ७ ॥

---

1. पुञ्ञं–सी. ।
2. तेजसो–रो. ।

द्वितीय परिच्छेद

(नाग-दमन)

एक समय श्रीघन (शास्ता) भगवान् सम्यक्सम्बुद्ध कोसल देश के श्रेष्ठ नगर (श्रावस्ती) के सुन्दर जेतवनविहार में साधनाहेतु विराजमान थे ॥ १ ॥

उस जेतवन में विराजे हुए प्रभाकर (तेजस्वी), धर्मस्वामी, भगवान् बुद्ध ने अपनी दिव्य दृष्टि से सभी लोकों का समीक्षण करते हुए ताम्रपर्णी द्वीप को देखा ॥ २ ॥

भगवान् का ताम्रपर्णीगमन–

(प्रथम लङ्काद्वीप-यात्रा के) पाँच वर्ष व्यतीत होने पर, भगवान् वहाँ पुनः पधारे । वहाँ उन्होंने धर्मविरोधियों (अवरोधकों) को स्वयं परास्त कर द्वीप को पुनः पवित्र बनाया ॥ ३ ॥

नागयुद्ध–उस समय पर्वत एवं द्वीप के रहने वाले दोनों ही नागसमूह परस्पर भयङ्कर युद्ध में लिप्त थे ॥ ४ ॥

ये सभी नाग महान् ऋद्धि से सम्पन्न थे । सभी भयङ्कर (प्राणहर) विष से युक्त थे । सभी पापी, भयानक (प्रचण्ड), मदोन्मत्त एवं स्वकीय बल के अभिमानी थे ॥ ५ ॥

वे सभी शीघ्रता करने वाले, महान् तेजस्वी, दुष्ट, कर्कश (कठोर) एवं खर (रूखे) स्वभाववाले, उद्धयानसंज्ञी (परस्पर दोषारोप करने वाले), क्रोधी एवं एकान्त (बिल) चाहने वाले (एकाकी ही रहने के स्वभाव वाले) सर्प थे ॥ ६ ॥

उनमें कुछ अतिविशाल (लम्बे) शरीर वाले, कुछ लघुकाय (छोटे शरीर वाले), कुछ महान् तेजस्वी तथा कुछ अल्प तेजस्वी–दोनों ही प्रकार के सर्प थे । उनकी ये दोनों ही जातियाँ बलवती एवं रूपवती थीं ॥ ७ ॥

न पस्सति कोचि समं समुत्तरि,
महोदरो मानमत्तेन तेजसा ।
"दीपं विनासेमि ससेलकाननं,
घातेमि सब्बे पटिपक्खपन्नगे" ॥ ८ ॥

चूळोदरो गज्जति[1] माननिस्सितो,
"आगच्छन्तु नागसहस्सकोटियो ।
हनामि सब्बे रणमज्झमागते,
थलं करोमि सतयोजनं दीपं" ॥ ९ ॥

पदूसयन्ति विसवेगदुस्सहा,
सम्पज्जलन्ति उरगा महिद्धिका ।
परोसधम्मा[2] भुजगिन्दमुच्छिता,
समुस्सहन्ति[3] रणसत्तु मद्दितुं ॥ १० ॥

[S. 10.] दिस्वान बुद्धो उरगिन्दकुप्पनं,
[R. 22] दीपं विनस्सन्ति निवत्तहेतुकं ।
लोकत्थचारी[4] सुगतो बहुं हितं,
विचिन्तयी अग्गसुखं सदेवके ॥ ११ ॥

"सचे न गच्छेय्यं न पन्नगा सुखी,
दीपं विनासं न च साधु नागते ।
नागे अनुकम्पमानो सुखत्थिको,
गच्छामहं दीपवुद्धिं[5] समेक्खितु[5]" ॥ १२ ॥

लङ्कादीपे गुणं दिस्वा "पुब्बे यक्खविनोदितं ।
मम साधुकतं दीपं मा विनासेन्तु पन्नगा" ॥ १३ ॥

---

1. गच्छति-सी. ।
2. रोसधम्मा-रो. ।
3. उस्सहन्ति-रो. ।
4. लोकस्स चारी-रो. ।
5-5. दीपसुखं समिच्छितुं-रो. ।

उनमें **महोदर** (विशालकाय) नाग अपने से बढ़कर किसी को भी बलवत्तर नहीं समझता था। वह अपने बल के अभिमान में इतना उन्मत्त था कि वह यही समझता था--"मैं एकाकी ही वन-पर्वत सहित शत्रु पक्ष के समग्र सर्पसमूह को विनष्ट करने में समर्थ हूँ" ॥ ८ ॥

उधर, **चूळोदर** (लघुकाय) नाग भी अपने अभिमान के मद में उन्मत्त होकर गर्जना करता था--"भले ही मेरे सम्मुख युद्ध हेतु हजारों या करोड़ों नाग भी क्यों न आ जायँ, मैं उन्हें विनष्ट करता हुआ सौ योजन द्वीप की इस भूमि को प्राणहीन कर समतल क्षेत्र बना दूँगा" ॥ ९ ॥

यों, अपने दुःसह (प्रबल) विषवेग से दूसरों को प्रदूषित करने वाले महान् ऋद्धिसम्पन्न, क्रोधी स्वभाव वाले, अपने 'भुजगेन्द्र' नाम को यथार्थ करने वाले वे नाग युद्ध में शत्रु का प्रत्येक प्रकार से मर्दन करने में समर्थ थे ॥ १० ॥

भगवान् बुद्ध ने उन सर्पों का वह विशेष क्रोध देखकर सोचा कि यों तो ये नाग परस्पर युद्ध करते हुए द्वीप को शून्य प्राणरहित बना देंगे ! अतः लोकहित-चिन्तक भगवान् बुद्ध ने देवताओं सहित इस लोक का दूरगामी परिणाम वाला यह चिन्तन किया– ॥ ११ ॥

"यदि मैं इस समय वहाँ न जाऊँगा तो ये नाग परस्पर युद्ध कर भविष्य में न केवल अपना ही नाश कर लेंगे, अपितु, अपने साथ ही अपने द्वीप का भी विनाश कर बैठेंगे"। अतः नागों पर कृपालु एवं उनके लिये सुख चाहनेवाले भगवान् ने सोचा कि क्यों न मैं द्वीप की सुख-समृद्धि हेतु तत्काल वहाँ पहुँच जाऊँ ॥ १२ ॥

लङ्काद्वीप की विशेषताएँ देखकर, जिसकी कि उन्होंने अतीत में यक्ष जाति से रक्षा की थी, उन्होंने सोचा कि ये दुष्ट पन्नग वहाँ मेरे द्वारा किये गये अच्छे कार्य को भी अपने कुकृत्यों से नष्ट न कर डालें ॥ १३ ॥

इदं वत्वान सम्बुद्धो वुट्ठहित्वान आसना ।
गन्धकुटितो निक्खम्म द्वारे अट्ठासि चक्खुमा ॥ १४ ॥

यावता जेतवने च आरामे वनदेवता ।
सब्बे व उपट्ठहिंसु "वयं[1] गच्छाम चक्खुमा" ॥ १५ ॥

"अलं सब्बे पि तिट्ठन्तु समिद्धि येको व गच्छतु ।
आगच्छ सह रुक्खो च[2] धारयित्वान पिट्ठितो" ॥ १६ ॥

बुद्धस्स वचनं सुत्वा समिद्धि सुमनो अहू ।
समूलं रुक्खमादाय सह गच्छि तथागतं ॥ १७ ॥

नरुत्तमं तं[3] सम्बुद्धं देवराजा महिद्धिको ।
छायं कत्वान धारेसि बुद्धसेट्ठस्स पिट्ठितो ॥ १८ ॥

सङ्गामं यत्थ नागानं तत्थ गन्त्वा नरुत्तमो ।
उभो नागवरमज्झे ठितो सत्था नुकम्पको ॥ १९ ॥

नभे गन्त्वान सम्बुद्धो उभो नागानमन्तरे[4] ।
अन्धकारतमं[5] [5]घोरं अकासि लोकनायको ॥ २० ॥

अन्धं तमं तदा होति लोकनाथस्स[6] [6]इद्धिया ।
अन्धकारेन ओनद्धो विहिताय रुक्खो अहु ॥ २१ ॥

अञ्ञमञ्ञं न पस्सन्ति तसित नागा भयट्टिता ।
सयं[7] पि ते न पस्सन्ति कुतो सङ्गाम कारितुं ॥ २२ ॥

सब्बे सङ्गामं भिन्दित्वा पमुञ्चित्वान आयुधं ।
नमस्समाना सम्बुद्धं सब्बे ठिता कतञ्जली ॥ २३ ॥

---

1. मयं-रो. ।
2. रो. नत्थि ।
3. नं- सीं. ।
4. नागानं उपरि-रो. ।

5-5. तिब्बन्धकारतमं-रो. ।

6-6. केसरमयिद्धिया-रो. ।

7. जितं- रो. ।

भगवान् का नागयुद्ध के निवारणहेतु गमन– यह कह कर ज्ञानदर्शी (चक्षुष्मान्) भगवान् बुद्ध आसन से उठकर, गन्धकुटी (साधनाकुटी) से निकल कर, द्वार पर खड़े हो गये ॥ १४ ॥

उस समय, जेतवन में जितने भी देवता रहते थे, वे सब भगवान् के सम्मुख उपस्थित हो गये और बोले– "भो चक्षुष्मन् ! हम भी आपके साथ चलें?" ॥ १५ ॥

भगवान् बोले– "नहीं, आप लोग सब यहीं ठहरें । केवल एक समृद्धि (सुमन) ही मेरे साथ, अपनी पीठ पर वृक्ष रखकर आवें" ॥ १६ ॥

भगवान् के ये वचन सुनकर समृद्धि अतीव प्रमुदित हुआ । उसने मूल (जड़) सहित वृक्ष साथ में लेकर भगवान् का अनुगमन किया ॥ १७ ॥

इस यात्रा के समय, देवराज इन्द्र पुरुषोत्तम भगवान् बुद्ध पर छत्र किये हुए उनके पीछे-पीछे चलने लगा ॥ १८ ॥

नागयुद्ध रोकने का उपाय--इस तरह वे कृपालु सम्बुद्ध, उन दोनों युद्धरत नागसमूहों के बीच में जाकर खड़े हो गये ॥ १९ ॥

और वहाँ आकाश में स्थित रहकर उन लोकनायक ने अपने ऋद्धिबल से कृत्रिम घोर अन्धकार पैदा कर दिया ॥ २० ॥

जब लोकनाथ के उस अनुपम ऋद्धिबल से (सूर्य के छिपने से) घोर अन्धकार पैदा हो गया तब वहाँ का सम्पूर्ण क्षेत्र अन्धकारावृत हो गया ॥ २१ ॥

जब वे नाग वहाँ परस्पर एक दूसरे को न देख पाये तो वे बहुत त्रस्त हो गये, साथ ही भयभीत भी । इस स्थिति में, जबकि वे स्वयं को ही नहीं देख पा रहे थे, तब संग्राम करना तो बहुत दूर की बात हो गयी! ॥ २२ ॥

अतः, वे सभी संग्राम से विरत होकर, शस्त्र त्यागकर, भगवान् को प्रणाम करते हुए उनके सम्मुख हाथ जोड़ कर खड़े हो गये ॥ २३ ॥

[S. 11.] सलोमहट्ठे अत्वान दिस्वा नागे भयट्टिते ।
मेत्तचित्तेन फरित्वा उण्हरंसिं पमुञ्चयि ॥ २४ ॥

[R. 23] आलोको व महा आसि अब्भुतो लोमहंसनो ।
सब्बे पस्सन्ति सम्बुद्धं नभे चन्दं व निम्मलं ॥ २५ ॥

छहि वण्णेहि उपेतो जलन्तो नभमन्तरे ।
दस दिसा विरोचेन्तो ठितो[1] नागे ऽभासथ ॥ २६ ॥

"किमत्थियं, महाराज! नागानं विवादो अहू ।
तुम्हे व अनुकम्पाय जवागच्छिं ततो अहं " ॥ २७ ॥

"अयं चूळोदरो नागो अयं नागो महोदरो ।
मातुलो भागिनेय्यो च विवदन्ता धनत्थिका" ॥ २८ ॥

अनुद्दयं चण्डनागानं सम्बुद्धो अज्झभासथ ।
"अप्पो हुत्वा महा होति कोधो बालस्स आगमो ॥ २९ ॥

"किमुद्दिस्स बहू नागा महादुक्खं निगच्छथ ।
इमं परित्तं पल्लङ्कं मा तुम्हे नासयित्थ ॥ ३० ॥

अञ्ञमञ्ञं विनासेथ अकतं जीवितक्खयं" ।
संवेजेसि तदा नागे निरयदुक्खेन चक्खुमा ॥ ३१ ॥

मनुस्सयोनिं दिब्बं च निब्बानं च पकित्तयि[2] ।
पकासयन्तं सद्धम्मं सम्बुद्धो[3] दिपदुत्तमो[3] ॥ ३२ ॥

सब्बे नागा निपतित्वा खमापेसुं तथागतं ।
सब्बे नागा समागन्त्वा समग्गा हुत्वान पन्नगा ॥ ३३ ॥

---

1. ठिते-सी. ।
2. पकित्तयी-सी. ।
3-3. सम्बुद्धं दिपदुत्तमं-रो. ।

ऐसी स्थिति में, भगवान् ने उन नागों को रोमाञ्चित एवं भयार्त देखकर, मैत्री चित्त से भावना करते हुए उष्णरश्मि (= सूर्य) को मुक्त कर दिया ॥ २४ ॥

यों, उस समय अद्भुत एवं रोमहर्षक प्रकाश सर्वत्र फैल गया । तभी सब (नागों) ने भगवान् बुद्ध को वैसा ही देखा जैसे आकाश में निर्मल चन्द्रमा दिखायी दे रहा हो ॥ २५ ॥

छह वर्णों से युक्त, आकाश में देदीप्यमान, दसों दिशाओं को आलोकित करते हुए भगवान् बुद्ध ने नागों (के राजा) से पूछा–॥ २६ ॥

"महाराज! नागों में यह विवाद किस कारण से प्रारम्भ हो गया? मैं तो तुम ही पर अनुकम्पा करने के लिये, इतनी शीघ्रता (जव=वेग) से यहाँ चला आ रहा हूँ" ॥ २७ ॥

नागों ने भगवान् को बताया–- "भगवन्! यह चूळोदर नाग है और यह महोदर! यहाँ मामा (महोदर) अपने भागिनेय (चूळोदर) से धन के लोभ में पड़कर युद्ध कर रहा है" ॥ २८ ॥

उन क्रोधी नागों का इस (युद्ध) कृत्य से अनुदय (हानि) देखते हुए भगवान् ने कहा--" मूर्खों का साधारण कलह भी, आगे चल कर, बहुत विनाशकारी हो जाया करता है ॥ २९ ॥

"आप लोग इतने नाग मिलकर किसलिये युद्ध कर रहे हैं? कहीं यह साधारण पलंग (मणिमय आसन) तुम्हारे समग्र कुल का नाश न करा बैठे! क्यों तुम एक दूसरे का विनाश करने पर कटिबद्ध हो! क्यों यह व्यर्थ जीव-हिंसा करने पर कटिबद्ध हो रहे हो!" ॥ ३० ॥

एतदनन्तर ज्ञानदर्शी उन भगवान् बुद्ध ने उन नागों को धर्माचरण के प्रति उत्साहित करते हुए नरक लोक के भयङ्कर दुःखों का विस्तार से वर्णन किया ॥ ३१ ॥

साथ ही उनको मनुष्ययोनि एवं देवयोनि में उत्पत्तियों का महत्त्व भी विस्तार से बताया । इसी के साथ भगवान् ने उनको सद्धर्म का उपदेश भी किया ॥ ३२ ॥

(भगवान् के इस उपदेश से प्रभावित होकर) सभी नाग, भूमि में लम्बे (दण्डवत्) गिरकर, भगवान् से अपने इस अपराध की क्षमा-याच्ञा करने लगे । फिर सभी नाग एवं पन्नग एकत्र हुए ॥ ३३ ॥

उपेसुं सरणं सब्बे असीति पाणकोटियो ।
"सब्बे नागा विनस्साम इमं पल्लङ्कहेतुकं" ॥ ३४ ॥

आदाय पल्लङ्कवरं उभो नागा समग्गिका ।
"पटिगण्हथ पल्लङ्कं अनुकम्पाय चक्खुम" ॥ ३५ ॥

अधिवासेसि सम्बुद्धो तुण्हीभावेन चक्खुमा ।
अधिवासनं विदित्वान तुट्ठा महोरगा उभो ॥ ३६ ॥

निसीदतु मं सुगतो पल्लङ्के[1] [1]वेळुरियमये ।
पभस्सरे[2] जातिवन्ते[2] नागानं अभिपत्थिते"[3] ॥ ३७ ॥

पतिट्ठपिसुं पल्लङ्कं नागा दीपानमन्तरे ।
निसीदि तत्थ पल्लङ्के धम्मराजा पभङ्करो ॥ ३८ ॥

[S. 12] पसादेत्वान सम्बुद्धो असीति नागकोटियो ।
तत्थ नागा परिविसुं अन्नपानं च भोजनं ॥ ३९ ॥

ओनीतपत्तपाणि[4] च नं[5] असीति नागकोटियो ।
परिवारेत्वा निसीदिंसु बुद्धसेट्ठस्स सन्तिके ॥ ४० ॥

कल्याणिके गङ्गामुखे नागो अहु सपुत्तको ।
महानागपरिवारो नामेनासि[6] मणिक्खिको ॥ ४१ ॥

[R. 24] सद्धो सरणसम्पन्नो सम्मादिट्ठि [7]व सीलवा ।
नागसमागमं गन्त्वा भिय्यो अभिपसादिय[8] ॥ ४२ ॥

दिस्वा बुद्धबलं नागो अनुकम्पं फणिमयं ।
अभिवादेत्वा निसीदि आयाचेसि तथागतं ॥ ४३ ॥

1-1. पल्लङ्कं वेळुरियमयं- रो. ।
2-2. पभस्सरं जातिवन्तं-रो. ।
3. अभिपत्थितं- रो. ।
4. ओणितपत्तपाणिं-रो. ।
5. तं-रो. ।
6. नामेना पि-रो. ।
7. च-रो. ।
8. अभिपसीदति-रो. ।

नागों का पर्यङ्क-दान हेतु सङ्कल्प– वे सभी नाग अस्सी करोड़ (८0,00,00,000) प्राणियों के साथ भगवान् की शरण में गये। और यह सोचकर कि "इस पलंग के कारण हमारी यह समग्र नाग जाति ही विनष्ट हो जायगी"॥ ३४ ॥

वे दोनों नागराज, अन्य सभी नागों को साथ में (रखते हुए) एकत्र होकर, उस पलंग को भगवान् के सम्मुख रखकर भो चक्षुष्मन्! आप ही इसे स्वीकार करें" —यह कहने लगे ॥ ३५ ॥

भगवान् ने मौन रहकर नागों का यह उपहार स्वीकार कर लिया । भगवान् की स्वीकृति जानकर वे दोनों नागराज अत्यन्त प्रमुदित हुए ॥ ३६ ॥

तब उन सन्तुष्ट हुए नागराजों ने भगवान् से पुनः निवेदन किया--"सुगत! आप इस वैदूर्य मणियों से निर्मित प्रभास्वर, उच्चजाति के रत्नों से सम्पन्न, नागों द्वारा प्रस्तुत पर्यङ्क (सिंहासन) पर विराजमान होने की कृपा करें" ॥ ३७ ॥

यों कहकर उन नागों ने उस पलंग को द्वीपों के बीच में रख दिया । धर्मराज प्रभाकर भगवान् उस पर विराजमान हुए ॥ ३८ ॥

तब भगवान् ने उन अस्सी करोड़ (८0,00,00,000) नागों को उपदेश करते हुए धर्म के प्रति श्रद्धालु बनाया । फिर नागों ने भगवान् को विविध अन्न एवं पान से युक्त भोजन कराया ॥ ३९ ॥

भोजन के बाद, भगवान् को थाली से हाथ हटाया देखकर, वे अस्सी करोड़ (८0,00,00,000) नाग भगवान् को परिवृत (घेर) कर धर्मश्रवणार्थ उनके समीप बैठ गये ॥ ४0 ॥

मणिअक्षक नाग– कल्याणी नदी के मुहाने पर एक महानाग परिवार एवं पुत्रों सहित रहता था । उस परिवार के प्रधान का नाम था 'मणिअक्षिक' ॥ ४१ ॥

वह धर्म के प्रति श्रद्धालु, त्रिशरणसम्पन्न, सम्यग्दृष्टि एवं शीलाचारसम्पृक्त था । वह उस नागसमागम (सम्मेलन) में जाकर, भगवान् का उपदेश सुनकर उनके धर्म के प्रति और भी अधिक श्रद्धावान् हो गया ॥ ४२ ॥

वहाँ वह, भगवान् का ऋद्धिबल देख कर, भगवान् की अधिक अनुकम्पा प्राप्त करने के लिये, भगवान् के सम्मुख जाकर, उन्हें प्रणाम कर एक तरफ बैठ गया । तब उसने तथागत से यह प्रार्थना की–॥ ४३ ॥

"इमं दीपानुकम्पाय पठमं यक्खविनोदितं ।
इदं नागानं नुग्गहं दुतियं दीपानुकम्पनं ॥ ४४ ॥

"पुन पि भगवा अम्हं [1]अनुकम्पं महामुनि ।
अहं चुपट्ठहिस्सामि वेय्यावच्चं करोम हं" ॥ ४५ ॥

नागस्स भासितं सुत्वा बुद्धो सत्तानुकम्पको ।
लङ्कादीपं हितत्थाय अधिवासेत्वा[2] निसीदिय[2] ॥ ४६ ॥

परिभुञ्जित्वा पल्लङ्कं वुट्ठहित्वा पभङ्करो ।
दिवाविहारं अकासि तत्थ दीपन्तरे मुनि ॥ ४७ ॥

दीपन्तरे दीपानग्गो दिवसं वीतिनामयि ।
समापत्तिं समापज्जि ब्रह्मविहारेन चक्खुमा ॥ ४८ ॥

सायण्हकालसमये नागे आमन्तयि जिनो ।
"इधे व होतु पल्लङ्को खीरपालो इधच्छतु[3] ।
नागा सब्बे इमं रुक्खं पल्लङ्कं च नमस्सथ" ॥ ४९ ॥

इदं वत्वान सम्बुद्धो अनुसासेत्वान पन्नगे ।
परिभोगचेतियं दत्वा पुन जेतवनं गतो ॥ ५० ॥

नागदमनं निट्ठितं ॥

२. कल्याणी-आगमनं

[S. 13] अपरं पि अट्ठमे वस्से नागराजा मणिक्खिको ।
निमन्तयि महावीरं पञ्चभिक्खुसते सह ॥ ५१ ॥

परिवारेत्वान सम्बुद्धं वसीभूता महिद्धिका ।
उप्पतित्वा जेतवने कममानो नभे मुनि ॥ ५२ ॥

---

1. इमं-रो. ।
2-2. अधिवासेसि सुगतो-रो. ।
3. इधागच्छतु- रो. ।

"आपने प्रथम बार इस द्वीप पर तब अनुकम्पा की थी जब आप यक्षदमनहेतु इस द्वीप में पधारे थे । पुनः दूसरी बार आपने अब अनुकम्पा की है कि आज इस नागयुद्ध के निवारणहेतु यहाँ पधारे हैं ॥ ४४ ॥

"अब मेरी भगवान् से पुनः प्रार्थना है कि आप एक बार पुनः इस द्वीप पर पधारें । उस समय मैं आपका आदर-सत्कार एवं सेवा (=वेय्यावच्च) करूँगा" ॥ ४५ ॥

नाग का यह कथन सुनकर सत्त्वानुकम्पी भगवान् ने लङ्काद्वीप के हित में मणिअक्षिक का यह कथन (प्रार्थना) स्वीकार कर लिया और बैठ गये ॥ ४६ ॥

भोजन करने के बाद, कुछ समय वे पलङ्ग पर भी बैठे । फिर उन तेजस्वी महामुनि ने द्वीप के मध्य एकान्त में जाकर दिन में की जानेवाली साधना की ॥ ४७ ॥

यों उस ज्ञानिश्रेष्ठ चक्षुष्मान् भगवान् ने दिन भर द्वीप के मध्य अरण्य में एकान्तवास करते हुए ब्रह्मविहार-समाधि सुख का उपभोग किया ॥ ४८ ॥

सायङ्काल होने पर भगवान् ने सभी नागों को आमन्त्रित किया, एवं उनको आदेश दिया--"यह पलंग एवं यह राजायतन (क्षीरपाल) वृक्ष (जिसे समृद्धि सुमन जेतवन से अपने साथ लाये थे)– दोनों ही आज से यहीं प्रतिष्ठित रहेंगे । तथा आज से सभी नाग इस वृक्ष एवं पलंग को प्रतिदिन प्रणाम करते रहेंगे" ॥ ४९ ॥

भगवान् पन्नगों को यह आदेश देकर एवं उन्हें और भी कई तरह धर्मोपदेश (धर्मानुशासन) कर तथा उन्हें परिभोगचैत्य (की सामग्री) देकर पुनः जेतवन पधार गये ॥ ५० ॥

नागदमनवर्णन समाप्त ॥

२ .कल्याणी-आगमन

फिर (तीसरी बार) (बोधिप्राप्ति के) आठ वर्ष बीतने पर नागराज मणि-अक्षिक ने भगवान् को पाँच सौ (५००) भिक्षुओं सहित लङ्काद्वीप आने के लिये निमन्त्रित किया ॥ ५१ ॥

यों भगवान् ऋद्धिसम्पन्न पाँच सौ भिक्षुओं को अपने साथ लेकर जेतवन से आकाश में उड़कर क्रमशः ॥ ५२ ॥

लङ्कादीपं अनुप्पत्तो गङ्गं कल्याणिसम्मुखं ।
सब्बे रतनमण्डपं उरगा कत्वा महातले ।
नानारङ्गेहि वत्थेहि दिब्बदुस्सेहि छादयुं ॥ ५३ ॥

नानारतनलङ्कारा नानापुप्फविचित्तका ।
नानारङ्गधजा नेका मण्डपं नानालङ्कतं ॥ ५४ ॥

सब्बसन्थतं सन्थरित्वा पञ्ञापेत्वान आसनं ।
बुद्धप्पमुखसङ्घं च पवेसेत्वा निसीदयुं[1] ॥ ५५ ॥

[R. 25] निसीदित्वान सम्बुद्धो पञ्चभिक्खुसते सह ।
समापत्तिं समापज्जि मेत्तं सब्बदिसं फरि ॥ ५६ ॥

सत्तक्खत्तुं समापज्जि बुद्धो झानं ससावको ।
तस्मिं ठाने महाथूपो पतिट्ठतीति[2] अद्दस ॥ ५७ ॥

महादानं पवत्तेसि नागराजा मणिक्खिको ।
पटिग्गहेत्वा सम्बुद्धो नागदानं ससावको ॥ ५८ ॥

भुत्वान अनुमोदित्वा नभुग्गच्छि ससावको ।
ओरोहित्वा तहं[3] बुद्धो ठाने दीघवापिचेतिये ॥ ५९ ॥

समापज्जि समापत्तिं ञाणं लोकानुकम्पको ।
वुट्ठहित्वा समापत्तिं तम्हि ठाने पभङ्करो ॥ ६० ॥

वेहायसं कममानो धम्मराजा ससावको ।
महामेघवने तत्थ बोधिट्ठानं उपागमि ॥ ६१ ॥

पुरिमा तिस्सो[4] महाबोधी[4] पतिट्ठहिंसु महीतले ।
तं ठानं उपगन्त्वान तत्थ झानं समप्पयि ॥ ६२ ॥

---

1. निसीदिंसु-रो. ।
2.१. पतिट्ठासि चेतियं उत्तमं-रो. ।
3. नभे-रो.।
4-4 तीणि महाबोधि-इति पि पाठो ।

लङ्काद्वीप में कल्याणी नदी के तट पर पहुँचे । वहाँ सभी नागों ने महातल (ऊँचे स्थान) में रत्नजटित मण्डप बनाकर उसे नाना वर्ण के दिव्य वस्त्रों से सजाया ॥ ५३ ॥

उनके द्वारा वह मण्डप नानारत्नों से अलंकृत किया गया । नाना प्रकार के पुष्पों से सजाया गया, वहाँ नाना रंग की ध्वजाएँ फहरायी गयीं । यों उस मण्डप को सभी प्रकार से सुशोभित किया गया ॥ ५४ ॥

इस तरह नागों ने उस मण्डप को सर्वथा अलंकृत कर, वहाँ अच्छी बिछायत बिछा कर, भगवान् बुद्ध सहित भिक्षुसङ्घ को सादर लाकर उसमें बैठाया ॥ ५५ ॥

यों भगवान् बुद्ध, उन पाँच सौ भिक्षुओं के साथ, वहाँ विराजमान होकर इसलिये समाधिनिष्ठ हो गये कि उसके माध्यम से सभी दिशाओं में मैत्री भावना का विस्तार किया जा सके ॥ ५६ ॥

उस समय भगवान् बुद्ध ने सात बार ध्यान लगा कर देखा तो उन्हें यही ज्ञात हुआ कि यहाँ आगामी समय (भविष्य) में एक महास्तूप का निर्माण होगा ॥ ५७ ॥

इस अवसर पर नागराज मणिअक्षिक ने (भिक्षुओं के लिये) महादान का आयोजन किया । भगवान् ने उस नागराज के महादान (भोजन) को स्वीकार किया ॥ ५८ ॥

वहाँ भोजन कर, बाद में धर्मानुमोदन करते हुए भगवान् बुद्ध अपने शिष्यों सहित आकाशमार्ग से दीर्घवापिचैत्य स्थान पर जा उतरे ॥ ५९ ॥

वहाँ भी लोकानुकम्पक, धर्मराज भगवान् ज्ञानसमाधि से समापन्न हुए । उस समाधि से उठकर ॥ ६० ॥

आकाशमार्ग से शिष्यों सहित महामेघवन के बोधिस्थान पर पहुँचे ॥ ६१ ॥

इस (भूमि) क्षेत्र में पूर्वकाल के भी तीन महाबोधि वृक्ष यथासमय रोपित हुए थे । अतः उस स्थान पर भी भगवान् ने समाधि लगायी ॥ ६२ ॥

"तिस्सो[1] बोधी[1] इमं ठाने तयो बुद्धान सासने ।
ममं च बोधि इधे व पतिट्ठहिस्सति नागते " ॥ ६३ ॥

ससावको समापत्तिं वुट्ठहित्वा नरुत्तमो ।
यत्थ मेघवनं रम्मं अगमासि नरासभो ॥ ६४ ॥

तत्थापि सो समापत्तिं समापज्जि ससावको ।
वुट्ठहित्वा समापत्तिया ब्याकरि[2] सो[2] पभङ्करो ॥ ६५ ॥

[S. 14] "इमं पदेसं पठमं ककुसन्धो लोकनायको ।
इमं पल्लङ्कठानम्हि निसीदित्वा पटिग्गहि ॥ ६६ ॥

इमं पदेसं दुतियं कोनागमनो नरासभो ।
इमं पल्लङ्कट्ठानम्हि निसीदित्वा पटिग्गहि ॥ ६७ ॥

इमं पदेसं ततियं कस्सपो लोकनायको ।
इमं पल्लङ्कठानम्हि निसीदित्वा पटिग्गहि ॥ ६८ ॥

अहं गोतमसम्बुद्धो सक्यपुत्तो नरासभो ।
इमं पल्लङ्कठानम्हि निसीदित्वा समप्पितो" ॥ ६९ ॥ ति ॥

कल्याणी-आगमनं निट्ठितं ॥
दुतियो परिच्छेदो निट्ठितो ॥
भाणवारो दुतियो निट्ठितो ॥

●

1-1. तिस्सो बोधि-इति पि पाठो ।
2-2. व्याकरोसि–रो. ।

तब भगवान् ने सङ्कल्प किया–"जब इन पूर्वबुद्धों की तीन महाबोधियाँ यहाँ प्रतिष्ठित हुई हैं तो मेरे द्वारा सेवित बोधि भी यहाँ प्रतिष्ठित होनी चाहिये" ॥ ६३ ॥

उस रम्य बोधि स्थान पर समाधि के बाद पुरुषश्रेष्ठ भगवान् शिष्यों सहित मेघवनोद्यान गये ॥ ६४ ॥

वहाँ भी वे समाधिनिष्ठ हुए । समाधि से उठकर उन प्रभाकर भगवान् ने वहाँ के प्रत्येक स्थान का क्रमशः यों वर्णन किया– ॥ ६५ ॥

"इस प्रथम प्रदेश में लोकनायक भगवान् ककुसन्ध (बुद्ध) इस पलंग पर विराज कर समाधिनिष्ठ हुए थे ॥ ६६ ॥

"इस द्वितीय प्रदेश (स्थान) में विराजमान रहकर पुरुषोत्तम (भगवान्) कोणागमन ने समाधि लगायी थीं ॥ ६७ ॥

"इस तृतीय प्रदेश में लोकनायक (भगवान्) काश्यप ने समाधि लगायी थी ॥ ६८ ॥

"अब इस चतुर्थ प्रदेश में बैठकर मैं पुरुषश्रेष्ठ शाक्यपुत्र गौतम बुद्ध भी कुछ समयतक समाधिसमापन्न हुआ हूँ" ॥ ६९ ॥

कल्याणी-आगमन-वर्णन समाप्त ॥
द्वितीय परिच्छेद समाप्त ॥
द्वितीय भाणवार भी समाप्त ॥

(इन कथाप्रसङ्गों का विस्तार महावंस ग्रन्थ के प्रथम परिच्छेद में भी देखें–अनु०)

३.

ततियो परिच्छेदो

(महाराजवंसो)

अतीतकप्पे राजानो ठपेत्वान भवाभवे ।
इमम्हि कप्पे राजानो पकासिस्सामि सब्बसो ॥ १ ॥

[R. 26] जातिं च नामगोत्तं च आयुं च अनुपालनं ।
सब्बं[1]तं[1] कित्तयिस्सामि तं सुणाथ यथाकथं ॥ २ ॥

पठमाभिसित्तो राजा भूमिपालो जुतिन्धरो ।
महासम्मतनामेन रज्जं कारेसि खत्तियो ॥ ३ ॥

तस्स पुत्तो रोजो नाम वररोजो नाम खत्तियो ।
कल्याणवरकल्याणा उपोसथो महिस्सरो ॥ ४ ॥

मन्धाता सत्तमो तेसं चतुदीपम्हि इस्सरो ।
चरो उपचरो राजा चेतियो च महिस्सरो ॥ ५ ॥

मुचलो महामुचलो मुचलिन्दो सागरो पि च ।
सागरदेवो भरतो च अङ्गीसो नाम खत्तियो ॥ ६ ॥

रुचि महारुचि चेव पतापो महापतापो पि च ।
पनादो महापनादो च सुदस्सनो नाम खत्तियो ॥ ७ ॥

महासुदस्सनो नाम दुवे नेरू च अच्चिमा ।
अट्ठवीसति राजानो आयु तेसं असङ्ख्या ॥ ८ ॥

कुसावती राजगहे मिथिलायं पुरुत्तमे ।
रज्जं कारिंसु राजानो तेसं आयु असङ्ख्या ॥ ९ ॥

1-1. सब्बन्ता-सी. ।

तृतीय परिच्छेद

(महाराजवंशवर्णन)

प्राचीन कल्प में हुए राजाओं के जन्म-मरण का लेखा छोड़कर वर्तमान कल्प में हुए राजाओं का ही सर्वथा वर्णन करूँगा ॥ १ ॥

इस सर्वथा वर्णन में– उनके जन्म, नाम, गोत्र, आयु, शासनकाल–ये सभी बातें रहेंगी, जिन का विस्तार किया जायगा । इन्हें मैं जैसे-जैसे कहूँ, उसे ध्यानपूर्वक सुनिये ॥ २ ॥

महासम्मत वंश– सर्वप्रथम कोई महासम्मत नाम का क्षत्रिय भूमि की रक्षा हेतु 'राजा' पद पर अभिषिक्त हुआ । उसने सर्वप्रथम इस पृथ्वी पर राज्य किया ॥ ३ ॥

उसके बाद उसके सात पुत्र हुए, जिनके नाम क्रमशः ये हैं– १. रोज, २. वर-रोज, ३. कल्याणक (प्रथम), ४. कल्याणक (द्वितीय), ५. उपोसथ, ६. मान्धाता एवं ७. महीश्वर । ये सातों ही चारों द्वीपों के सम्राट् थे ॥ ४ ॥

उनके बाद ये बाईस (२२) राजा हुए; जैसे– १. चर, २. उपचर, ३. चैत्य, ४. महीश्वर (द्वितीय) ॥ ५ ॥

५. मुचल, ६. महामुचल, ७. मुचलिन्द, ८. सागर, ९. सागरदेव, १०. भरत एवं ११. अङ्गीरस राजा ॥ ६ ॥

१२. रुचि, १३. महारुचि, १४. प्रताप, १५. महाप्रताप, १६. प्रबाद, १७. महाप्रवाद, १८. सुदर्शन राजा ॥ ७ ॥

१९. महासुदर्शन, २०. नेरु (प्रथम), २१. नेरु (द्वितीय), २२. अर्चिष्मान् । इन के बाद अन्य अट्ठाईस (२८) राजा भी हुए, जिन की आयु गणनातीत (असङ्ख्य) है ॥ ८ ॥

इन सब राजाओं ने उत्तम नगर कुशावती, राजगृह, एवं मिथिला में राज्य किया । इन की आयु भी गणनातीत थी ॥ ९ ॥

[S.15] दसदसकं[1] सतं च[1] सतं दस सहस्सियो ।
दससहस्सं[2] नहुतं दस नहुतं सहस्सियो[2]।
दससतसहस्सं[3] कोटि दस कोटि पकोटियो ॥ १० ॥

तथा[4] कोटिप्पकोटी च नहुतं निन्नहुतं पि च ।
अक्खोहिणि बिन्दु च अब्बुदो च निरब्बुदो[4] ॥ ११ ॥

[5]अहहं सब्बं चेव वट्टं सोगन्धिकुप्पलं ।
कुमुदं पुण्डरीकं च पदुमं कथानद्धयं[5] ॥ १२ ॥
एत्तका गणिता सङ्ख्या[6] गणनागणिता[6] तहिं ।
ततो उपरिमभूमि असङ्ख्येय्या ति वुच्चति ॥ १३ ॥

एकसतं च राजानो अच्चिमस्सासि[7] अत्रजा ।
महारज्जं अकारेसुं नगरे कपिलह्वये[8] ॥ १४ ॥

तेसं पच्छिमको राजा अरिन्दमो नाम खत्तियो ।
पुत्ता पपुत्तका तस्स सट्ठि[9] ते भूमिपालका[9]।
महारज्जं अकारेसुं अयुज्झानगरे पुरे ॥ १५ ॥

तेसं पच्छिमको राजा दुप्पसहो महिस्सरो ।
[R.27] पुत्ता पपुत्तका तस्स सट्ठि ते भूमिपालका ।
महारज्जं अकारेसुं बाराणसिपुरुत्तमे ॥ १६ ॥

तेसं पच्छमिको राजा अहितन्नो[10] नाम खत्तियो ।
चतुरासीति सहस्सानि तस्स पुत्तपपुत्तका ।
महारज्जं अकारेसुं कपिलह्वनगरे[11] पुरे ॥ १७ ॥

1-1 दसदससतं चेव-रो. ।
2.-2 सहस्सं दस दससहस्सं च, दसदसहस्सं सतसहस्सियो ।-रो.
3. च-रो. ।
4.-4 नहुतं च निन्नहुतं च, अब्बुदो च निरब्बुदो ।
अबब्बं अटटं चेव, अहहं कुमुदानि च ॥ -रो. ।
5.-5 सोगन्धिकं उप्पलको पुण्डरीकपदुमको । -रो.
6.-6 सङ्ख्या गणनागणिका-रो. ।
7. ०'पि--रो.।
8. पकुलसह्वये-रो. ।
9.-9 छपञ्ञासं च खत्तिया-रो. ।
10. अभितत्तो-रो. ।
11. कपिलनगरे-रो. ।

गणनाक्रम– (प्रसङ्गवश गणना की पद्धति बतायी जा रही है–) दश दशक (१०+१०) को एक सौ (१००) कहते है । दश सौ (१००+१०) को 'हजार' कहते है । दश हजार को 'नहुत' कहते है । दश नहुत को 'सहस्रीय' कहते है ॥ १० ॥

दश सौ हजार को 'कोटि' कहते हैं । दस कोटि को 'प्रकोटि' कहते है । इसी तरह आगे 'कोटिप्रकोटि', 'नहुत', 'निन्नहुत', 'अक्षौहिणी', 'बिन्दु' 'अर्बुद', निरर्बुद' ॥ ११ ॥

'अहह', सभी 'वृत्त' (?) 'सौगन्धिक', 'उत्पल', 'कुमुद', 'पुण्डरीक' 'पद्म' 'कथान' (१), 'कथान' (२) ॥ १२ ॥

यो गणित (गिनती की गयी) सङ्ख्या आगे बढ़ती जाती है । बाद की सङ्ख्या तो 'असङ्ख्य' कहलाती है ॥ १३ ॥

अवशिष्ट (कपिलवस्तु का) राजवंश–उस अर्चिष्मान् राजा के एक सौ पुत्र हुए, जिन्होंने कपिलवस्तु नगरी में रहकर चक्रवर्ती साम्राज्य (महाराज्य) की स्थापना की ॥ १४ ॥

अयोध्या का राजवंश–उनमें सब से अन्तिम (पश्चिमक) राजा हुआ अरिन्दम । उसके पुत्र-प्रपौत्र सब मिलाकर साठ (६०) राजा हुए । इन्होंने श्रेष्ठ अयोध्या नगरी में रहकर अपने साम्राज्य की स्थापना की ॥ १५ ॥

वाराणसी का राजवंश–उन में अन्तिम राजा दुप्रसह सम्राट् हुआ । इसके साठ (६०) पुत्र, प्रपौत्र हुए, जिन्होंने वाराणसी नगर में रहकर साम्राज्य की स्थापना की ॥ १६ ॥

उनमें अन्तिम राजा हुआ आहितान्न । उसके चौरासी हजार (८४,०००) पुत्र-प्रपौत्र हुए । उन्होंनें कपिल (वस्तु?) में रहकर साम्राज्य की स्थापना की ॥ १७ ॥

तेसं पच्छिमको राजा ब्रह्मदत्तो महिस्सरो ।
पुत्ता पपुत्तका तस्स छत्तिंसा पि च खत्तिया ।
महारज्जं अकारेसुं हत्थिपुरवरुत्तमे ॥ १८ ॥

तेसं पच्छिमको राजा कम्बलवसभो अहू ।
पुत्ता पपुत्तका तस्स बत्तिंसा पि च खत्तिया ।
नगरे एकचक्खुम्हि रज्जं कारेसुं ते तदा[1] ॥ १९ ॥

तेसं पच्छिमको राजा पुरिन्ददो देवपूजितो ।
पुत्ता पपुत्तका तस्स अट्ठवीसति खत्तिया ।
महारज्जं अकारेसुं वजिरायं पुरुत्तमे ॥ २० ॥

[S.16] तेसं पच्छिमको राजा साधिनो नाम खत्तियो ।
पुत्ता पपुत्तका तस्स द्वावीस राजखत्तिया ।
महारज्जं अकारेसुं मधुरायं पुरुत्तमे ॥ २१ ॥

तेसं पच्छिमको राजा धम्मगुत्तो महब्बलो ।
पुत्ता पपुत्तका तस्स अट्ठारस च खत्तिया ।
नगरे अरिट्ठपुरे रज्जं कारेसुं ते तदा[2] ॥ २२ ॥

तेसं पच्छिमको राजा नरिन्दो सिट्ठिनामको ।
पुत्ता पपुत्तका तस्स सत्तरस च खत्तिया ।
नगरे इन्दपत्तम्हि रज्जं कारेसुं ते तदा[3] ॥ २३ ॥

तेसं पच्छिमको राजा ब्रह्मदेवो महीपति ।
पुत्ता पपुत्तका तस्स पण्णरस च खत्तिया ।
नगरे एकचक्खुम्हि रज्जं कारेसुं ते तदा[4] ॥ २४ ॥

तेसं पच्छिमको राजा बलदत्तो महीपति ।
पुत्ता पपुत्तका तस्स चुद्दस राजखत्तिया ।
महारज्जं अकारेसुं कोसम्बिनगरे पुरे ॥ २५ ॥

---

1. इध-रो. ।
2. इध-रो. ।
3. इध-रो. ।
4. इध-रो. ।

हस्तिपुर का राजवंश– उनमें अन्तिम सम्राट् ब्रह्मदत्त हुआ । इसके पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र छत्तीस हजार (३६,०००) हुए । उन्होंने हस्तिपुर में रहकर साम्राज्य की स्थापना की ॥ १८ ॥

एकचक्षुनगरी का राजवंश– उनमें अन्तिम राजा हुआ कम्बलवृषभ । उसके बत्तीस (३२) पुत्र-प्रपौत्र हुए । उन्होंने एकचक्षु नगरी में रहकर अपने राज्य की स्थापना की ॥ १९ ॥

वज्रा नगरी का राजवंश– उनमें अन्तिम राजा हुआ पुरन्दद । उसके अट्ठाईस (२८) पुत्र-प्रपौत्र राजा हुए । उन्होंने वज्रा नगरी में रहकर अपने साम्राज्य की स्थापना की ॥ २० ॥

मथुरा का राजवंश– उनमें भी अन्तिम क्षत्रिय राजा हुआ स्वाधीन । इसके बाईस (२२) पुत्र-पौत्रों ने मथुरा नगरी में रहकर अपना महाराज्य चलाया ॥ २१ ॥

अरिष्टपुर का राजवंश– उनमें अन्तिम राजा हुआ महाबली धर्मगुप्त । जिसके अट्ठारह (१८) पुत्र-प्रपौत्र राजाओं ने अरिष्टपुर नगर में रहकर अपना राज्य चलाया ॥ २२ ॥

इन्द्रप्रस्थ का राजवंश– उनमें अन्तिम राजा हुआ नरेन्द्र शिष्टि । उसके सत्तरह (१७) पुत्र-प्रपौत्र राजाओं ने इन्द्रप्रस्थ नगर में रहकर अपना राज्य स्थापित किया ॥ २३ ॥

एकचक्षुनगरी का राजवंश– उनमें अन्तिम राजा हुआ महीपति ब्रह्मदेव । उसके पन्द्रह (१५) पुत्र-प्रपौत्र राजाओं ने फिर से एकचक्षु नगरी को राजधानी बनाकर राज्य-स्थापना की ॥ २४ ॥

कोसाम्बी नगरी का राजवंश– उनमें अन्तिम राजा हुआ महीपति बलदत्त । उसके चौदह (१४) पुत्र-प्रपौत्र राजाओं ने कौसम्बी नगरी में रहकर महाराज्य की ॥ २५ ॥

तेसं पच्छिमको राजा भद्ददेवो ति विस्सुतो ।
पुत्ता पपुत्तका तस्स नव राजा च खत्तिया ।
नगरे कण्णगोच्छम्हि रज्जं कारेसुं ते इध ॥ २६ ॥

तेसं पच्छिमको राजा नरदेवो ति विस्सुतो ।
पुत्ता पपुत्तका तस्स सत्त च राजखत्तिया ।
[R.28] महारज्जं अकारेसुं रोजननगरे पुरे ॥ २७ ॥

तेसं पच्छिमको राजा महिन्दो नाम खत्तियो ।
पुत्ता पपुत्तका तस्स सत्त च राजखत्तिया ।
महारज्जं अकारेसुं चम्पाय नगरे[1] पुरे ॥ २८ ॥

तेसं पच्छिमको राजा नागदेवो महीपति ।
पुत्ता पपुत्तका तस्स पञ्चवीसा च खत्तिया ।
महारज्जं कारयिंसु मिथिलानगरे पुरे ॥ २९ ॥

तेसं पच्छिमको राजा बुद्धदत्तो महब्बलो ।
पुत्ता पपुत्तका तस्स पञ्चवीसति[2] खत्तिया ।
महारज्जं कारयिंसु राजगहपुरुत्तमे ॥ ३० ॥

[S.17] तेसं पच्छिमको राजा दीपङ्करो नाम खत्तियो ।
पुत्ता पपुत्तका तस्स द्वादस राजखत्तिया ।
महारज्जं कारयिंसु तक्कसिलापुरुत्तमे ॥ ३१ ॥

तेसं पच्छिमको राजा तालिस्सरो नाम खत्तियो ।
पुत्ता पपुत्तका तस्स द्वादस राजखत्तिया ।
महारज्जं कारयिंसु कुसिनारापुरुत्तमे ॥ ३२ ॥

तेस पच्छिमको राजा सुदिन्नो[3] नाम खत्तियो ।
पुत्ता पपुत्तका तस्स नव राजा च खत्तिया ।
महारज्जं कारयिंसु नगरे तामलित्थिये[4] ॥ ३३ ॥

तेसं पच्छिमको राजा सागरदेवो महिस्सरो ।
तस्स पुत्तो मखादेवो महादानपति अहू[5] ॥ ३४ ॥

---

1. चम्पकनगरे-रो. ।
2. पञ्चवीसा-रो. ।
3. पुरिन्दो-रो. ।
4. मलित्थियके-रो.
5. अहु-सी. ।

कर्णगुच्छनगर का राजवंश–उनमें अन्तिम राजा हुआ विख्यात **भद्रदेव** । उसके सात (७) पुत्र-प्रपौत्र राजा हुए । जिन्होनें कर्णगुच्छ नगर में रहकर राज्य-सञ्चालन किया ॥ २६ ॥

रोजननगर का राजवंश–उनमें अन्तिम राजा हुआ प्रसिद्ध **नरदेव** । उसके सात (७) पुत्र-प्रपौत्र राजा बने । जिन्होंने रोजननगर में रहकर अपना महान् राज्य सञ्चालित किया ॥ २७ ॥

चम्पा नगरी का राजवंश–उनमें अन्तिम राजा हुए **महेन्द्र** । उसके बारह (१२) पुत्र-पौत्रों ने चम्पा नगरी में रहकर महान् साम्राज्य की स्थापना की ॥ २८ ॥

मिथिला का (प्रथम) राजवंश–उनमें अन्तिम राजा हुआ **नागदेव** महीपति । उन के पचीस (२५) पुत्र-पौत्रों ने मिथिला नगरी को राजधानी बनाकर अपना राजवंश चलाया ॥ २९ ॥

राजगृह का राजवंश–उनमें अन्तिम राजा हुआ महाबली **बुद्धदत्त** । उसके पचीस (२५) पुत्र-पौत्रों ने श्रेष्ठ राजगृह नगर में रहकर अपने महान् साम्राज्य की स्थापना की ॥ ३० ॥

तक्षशिला का राजवंश–उनमें अन्तिम राजा हुआ **दीपङ्कर** क्षत्रिय । उसके बारह (१२) पुत्र-पौत्रों ने तक्षशिला में रहकर राज्य-सञ्चालन किया ॥ ३१ ॥

कुसीनगर का राजवंश–उनमें अन्तिम राजा हुआ **तालेश्वर** क्षत्रिय । उसके बारह (१२) पुत्र-पौत्रों ने उत्तम कुसीनगर में रहकर अपने राज्य का सञ्चालन किया ॥ ३२ ॥

ताम्रलिप्ति का राजवंश–उनमें अन्तिम राजा हुआ **सुदिन्न** क्षत्रिय । उसके नौ (९) पुत्र-पौत्रों ने ताम्रलिप्ति नगरी में रहकर अपने महान् साम्राज्य का सञ्चालन किया ॥ ३३ ॥

मिथिला का (द्वितीय) राजवंश–उनमें अन्तिम राजा हुआ **सागरदेव** । उस का पुत्र हुआ महान् दानपति **मखादेव** ॥ ३४ ॥

चतुरासीति सहस्सानि तस्स पुत्तपपुत्तका ।
महारज्जं कारयिंसु मिथिलायं[1] पुरुत्तमे ॥ ३५ ॥

तेसं पच्छिमको राजा नेमियो देवपूजितो ।
बलचक्कवत्ति राजा सागरन्तमहीपति ॥ ३६ ॥

नेमियपुत्तो कळारजनको, तस्स पुत्तो समङ्करो ।
असोको नाम सो राजा मुद्धावसित्तखत्तियो ॥ ३७ ॥

चतुरासीति सहस्सानि तस्स पुत्तपपुत्तका ।
महारज्जं कारयिंसु बाराणसिपुरुत्तमे ॥ ३८ ॥

तेसं पच्छिमको राजा विजयो नाम महिस्सरो ।
तस्स पुत्तो विजितसेनो अभिजातजुतिन्धरो ॥ ३९ ॥

धम्मसेनो नागसेनो समथो च[2] दिसम्पति ।
रेणु कुसो महाकुसो नवरथो दसरथो पि च ॥ ४० ॥

[R.29] रामो बिलारथो नाम चित्तदस्सी अत्थदस्सी ।
सुजातो ओक्कको चे व ओक्कामुखो च निपुरो ॥ ४१ ॥

चन्दिमा चन्दमुखो च सिविराजा च सञ्जयो ।
वेस्सन्तरो जनपति जाली च सीहवाहनो ॥ ४२ ॥

सीहस्सरो च यो धीरो पवेणिपालो च खत्तियो ।
द्वे असीति सहस्सानि तस्स पुत्तपपुत्तका ॥ ४३ ॥

[S.18] रज्जं कारेसुं राजानो नगरे कपिलव्हये ।
तेसं पच्छिमको राजा जयसेनो महीपति ॥ ४४ ॥

---

1. मिथिलानगरे पुरे-रो. ।
2. नाम-रो. ।

उसके चौरासी हजार पुत्र-पौत्र-प्रपौत्रों ने मिथिला नामक श्रेष्ठ नगरी में रहकर अपने महान् साम्राज्य की स्थापना की ॥ ३५ ॥

उनमें अन्तिम राजा हुआ **नेमिय** । जिसकी, अपने प्रखर प्रताप के कारण, देवता भी वन्दना करते थे । वह अपनी बलिष्ठ सेना के सहारे अपना चक्रवर्ती साम्राज्य स्थापित करने में सफल रहा । यों वह समुद्रपर्यन्त पृथ्वी का एकच्छत्र अधिपति था ॥ ३६ ॥

वाराणसी का राजवंश– उस नेमिय चक्रवर्ती का पुत्र **कळारजनक** हुआ । उसका पुत्र हुआ शमकर **अशोक** । यह राजा भी मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय था ॥ ३७ ॥

उसके चौरासी हजार (८४,०००) पुत्र-प्रपौत्र हुए । इन्होंने वाराणसी नगरी को राजधानी बनाकर महान् साम्राज्य का सञ्चालन किया ॥ ३८ ॥

कपिलवस्तु का राजवंश–उनमें अन्तिम राजा हुआ महाराज **विजय** । उसका पुत्र **विजितसेन** आभिजात्य कुल की शोभा से सम्पन्न था ॥ ३९ ॥

इसी तरह (इसके बाद) **धर्मसेन**, **नागसेन, शमथ, दिसम्पति, रेणुजु, कुश, महाकुश, नवरथ**, **दशरथ** ॥ ४० ॥

राम, **विलारथ, चित्रदर्शी**, **अर्थदर्शी**, **सुजात**, **ओक्कक** (इक्ष्वाकु ?), **उल्कामुख, निपुण** ॥ ४१ ॥

चन्द्रमा, चन्द्रमुख, शिविराजा, सञ्जय, वेस्सन्तर जनपति (राजा), **जाली और सिहिवाहन** ॥ ४२ ॥

(इनमें अन्तिम) राजा हुआ **सिंहेश्वर**, जो कि धैर्यवान्, परम्परा का संरक्षक राजा था । इसके बयासी हजार (८२,०००) पुत्र-पौत्र थे ॥ ४३ ॥

इन सभी राजाओं ने कपिल (वस्तु) नगरी को राजधानी बनाकर राज्य किया इनमें अन्तिम राजा था **जयसेन** ॥ ४४ ॥

तस्स पुत्तो सीहहनु अभिजातजुतिन्धरो ।
सीहहनुस्स ये पुत्ता यस्स ते पञ्च भातरो ॥ ४५ ॥

सुद्धोदनो च धोतो च सक्कोदनो च खत्तियो ।
सुक्कोदनो च सो राजा, राजा च अमतोदनो ।
एते पञ्च पि राजानो सब्बे ओदन-नामका ॥ ४६ ॥

सुद्धोदनस्सयं पुत्तो सिद्धत्थो लोकनायको ।
जनेत्वा राहुलभद्दं बोधाय अभिनिक्खमि ॥ ४७ ॥

सब्बे ते सतसहस्सानि चत्तारि नहुतानि च ।
अपरे तीणि सत राजानो महेसक्खा सियाय च ।
एत्तका पठवीपाला बोधिसत्तकुले जाता[1] ॥ ४८ ॥

"अनिच्चा वत सङ्खारा उप्पादवयधम्मिनो ।
उप्पज्जित्वा निरुज्झन्ति तेसं वूपसमो सुखो"॥ ४९ ॥ ति ॥

महाराजवंसो निट्ठितो ॥

●

सुद्धोदनो नाम राजा नगरे कपिलव्हये ।
सीहहनुस्सायं पुत्तो रज्जं कारेसि खत्तियो ॥ ५० ॥

पञ्चन्नं पब्बतमज्झे राजगहे पुरुत्तमे ।
बोधिसो नाम सो राजा रज्जं कारेसि खत्तियो ॥ ५१ ॥

सहाया अञ्ञमञ्ञा ते सुद्धोदनो च भातियो ।
इमम्हि पठमे कप्पे पवेणिपा जनाधिपा ॥ ५२ ॥

जातिया अट्ठवस्सम्हि उप्पन्ना पञ्च आसया ।
[R.30] "पिता मं अनुसासेय्य अत्थो रज्जेन खत्तियो ॥ ५३ ॥

---

1. वुत्ता-रो. ।

उसका पुत्र हुआ **सिंहहनु** जो आभिजात्यकुल-शोभासम्पन्न था । इस राजा सिंहहनु के पाँच पुत्र हुए जो पांचों सहोदर भाई थे ।। ४५ ।।

१. **शुद्धोदन,** २. **धौतोदन,** ३. **शक्रोदन,** ४, **शुक्लोदन** एवं ५. **अमृतोदन** । ये पाँचों ही (पृथक-पृथक् राज्यों के) राजा हुए । इन सभी के नाम के आगे 'ओदन' उपपद लगा हुआ था ।। ४६ ।।

राजा शुद्धोदन के ही पुत्र ये लोकनायक **सिद्धार्थ** हुए, जो राहुल को जन्म देकर बोधि-प्राप्ति के लिये राज्य छोड़कर प्रव्रजित हो गये ।। ४७ ।।

वे सभी एक लाख चालीस हजार तीन सौ (१,४०,३००) राजा महाप्रतापी थे । ये इतने राजा (पृथ्वीपाल) हमारे बोधिसत्त्व के कुल में उत्पन्न हुए ।। ४८ ।।

(परन्तु ये सभी समय आने पर काल (मृत्यु) के ग्रास बन गये; क्योंकि इसमें) "सभी संस्कार अनित्य हैं, उत्पत्ति एवं विनाश स्वभाव वाले है । ये (संस्कार) उत्पन्न हो कर निरुद्ध होते रहते है । इन का तो सर्वथा शान्त (व्युपशम) हो जाना ही मनुष्य के लिये परम सुख" हैं । (ऐसा धर्मवचन प्रमाण है) ।। ४९ ।।

महाराजवंश-वर्णन समाप्त ॥

●

कतिपय राजाओं का विशेष वर्णन– शुद्धोदन नामक राजा कपिल (वस्तु) नामक नगर में राज्य करते थे । वे राजा सिंहहनु के पुत्र थे ।। ५० ।।

उधर पाँच पर्वतों के बीच में राजगृह नगर में **बोधिस्व** नाम के राजा राज्य करते थे ।। ५१ ।।

ये दोनों राजा परस्पर मित्र थे । और ये राजपरम्परा में आकर यथासमय इस प्रथम कल्प में राजा बने ।। ५२ ।।

कभी आठ वर्ष की आयु में बोधिस्व (बिम्बिसार) के चित्त में पांच विचार हुए–

१. पिता मुझे अनुशासित (शिक्षित) करे;
२. मुझे ही अपना राज्य-भार स्वयं सौंपे ।। ५३ ।।

योे मय्हं विजिते बुद्धो उप्पजेय्य नरासमो ।
दस्सनं पठमं मय्हं उपसङ्कम्म तथागतो ॥ ५४ ॥

देस्सेय्य अमतं धम्मं पटिविज्झेय्यमुत्तमं"।
उप्पन्ना बिम्बिसारस्स पञ्च आसयका इमे ॥ ५५ ॥

[S.19] जातिया पण्णरसे वस्से भिसित्तो पितु अच्चये ।
सो तस्स विजिते रम्मे उप्पन्नो लोकनायको ।
दस्सनं पठमं तस्स उपसङ्कमि तथागतो ॥ ५६ ॥

देसेसि[1] अमतं धम्मं अब्भञ्ञासि महीपति ।
जातिवस्सं महावीरं पञ्चतिंस अनूनकं ॥ ५७ ॥

बिम्बिसारो[2] समतिंसा[3] जातवस्सो महीपति ।
विसेसो पञ्चहि वस्सेहि बिम्बिसारस्स गोतमो ॥ ५८ ॥

पञ्ञासं च द्वे वस्सानि रज्जं कारेसि खत्तियो ।
सत्ततिंस पि वस्सानि सह बुद्धेहि कारयि ॥ ५९ ॥

अजातसत्तु बत्तिंस रज्जं कारेसि खत्तियो ।
अट्ठवस्साभिसित्तस्स सम्बुद्धो परिनिब्बुतो ॥ ६० ॥

परिनिब्बुते च सम्बुद्धे लोकजेट्ठे नरासभे ।
चतुवीसति वस्सानि रज्जं कारेसि खत्तियो ॥ ६१ ॥

भाणवारो ततियो ॥
ततियो परिच्छेदो निट्ठितो ॥

●

---

1. देसितं-रो. ।
2. बिम्बिसार-रो. ।
3. समा तिंसा-रो. ।

३. मेरी राज्यसीमा में ही पुरुषश्रेष्ठ (सिद्धार्थ) बुद्धत्व पद प्राप्त करें;

४. बुद्ध बनने के बाद वे मुझे दर्शन देने के लिये सर्वप्रथम मेरे पास (राजगृह में) आवें ।

एवं ५. मेरे यहाँ (राजगृह) से ही वे जनता को अपना अमृतमय धर्मोपदेश प्रारम्भ करें ।

यों, ये पाँच सङ्कल्प राजा बिम्बसार के मन में पैदा हुए । ।। ५४-५५ ।।

वह बिम्बिसार जन्म से पन्द्रहवें (१५) वर्ष में पिता के देहावसान के बाद राज्यसिंहासन पर बैठा । सिद्धार्थ गौतम ने उसी की राज्यसीमा (गया) में बुद्धत्व पद प्राप्त किया । अथ च, बुद्धत्व प्राप्त करने के बाद राजगृह में आकर सर्वप्रथम वे उन्हीं को दर्शन देने हेतु गये ।। ५६ ।।

फिर अपना अमृतमय धर्मोपदेश भी उन्होने सर्वप्रथम राजा (बिम्बसार) को ही सम्बोधित किया । उस समय महावीर बुद्ध जन्म से पैतीस (३५) वर्ष की आयु के थे । अर्थात् वे उस समय बिम्बिसार से पाँच वर्ष बड़े थे ।। ५७-५८ ।।

इस राजा बिम्बिसार ने बावन (५२) वर्ष तक राज्य किया । इस समयावधि में वह भगवान् बुद्ध के साथ सैतीस (३७) वर्ष ही रह सका ।। ५९ ।।

इसके बाद राजा अजातशत्रु ने बत्तीस (३२) वर्ष राज्य किया । यह आठ (८) वर्ष ही राज्य कर पाया था कि भगवान् बुद्ध का महापरिनिर्वाण हो गया ।। ६० ।।

हाँ, इस राजा (अजातशत्रु) ने भगवान् बुद्ध के महापरिनिर्वाण के बाद भी चौबीस (२४) वर्ष तक राज्य किया ।। ६१ ।।

तृतीय परिच्छेद समाप्त ।।

तृतीय भाणवार समाप्त ।।

४.

चतुत्थो परिच्छेदो

(महाकस्सपसङ्गहो)

*परिनिब्बुतम्हि सम्बुद्धे कुसिनारायं पुरुत्तमे ।
सत्तसतसहस्सानि जिनपुत्ता समागता ॥ १ ॥

एतस्मिं सन्निपातम्हि थेरो कस्सपसव्हयो ।
सत्थुकप्पो महानागो पठविया नत्थि ईदिसो ॥ २ ॥

अरहन्तानं पञ्चसतं उच्चिनित्वान कस्सपो ।
वरं वरं गहेत्वान अकासि धम्मसङ्गहं ॥ ३ ॥

पाणिनं अनुकम्पाय सासनं दीघकालिकं ।
अकासि धम्मसङ्गहं तिण्णं मासानं अच्चये ॥ ४ ॥

सम्पत्ते चतुत्थे मासे दुतिये वस्सूपनायके ।
सत्तपण्णिगुहाद्वारे पठमो सङ्गहो अयं ॥ ५ ॥

[S.20] एतस्मिं सङ्गहे भिक्खू अग्गनिक्खित्तका बहू ।
सब्बे पि पारमिपन्ना लोकनाथस्स सासने* ॥ ६ ॥

धुतवादानमग्गो सो कस्सपो जिनसासने ।
बहुस्सुतानं आनन्दो, विनये उपालि पण्डितो ॥ ७ ॥

दिब्बचक्खुम्हि अनुरुद्धो, अङ्गीसो[1] पटिभानवा ।
पुण्णो च धम्मकथिकानं, चित्रकथी कुमारकस्सपो ॥ ८ ॥

---

* * सत्तेव सततसहस्सानि भिक्खुसङ्घा समागता ।
अरहा खीणासवा सुद्धा सब्बे गुणग्गतं गता ॥
ते सब्बे विचिनित्वान उच्चिनित्वा वरं वरं ।
पञ्चसतानं थेरानं अकंसु सङ्घसम्मतं ॥ -रो. ।

1. वाङ्गीसो-रो. ।

चतुर्थ परिच्छेद

(महाकाश्यप-संग्रह)

भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण के अवसर पर उत्तम नगर कुसिनारा में एक लाख (१,००,०००) भिक्षु एकत्र हुए ॥ १ ॥

प्रथम धर्मसङ्गीति– इस भिक्षु-समागम (सम्मेलन) में एक काश्यप नामक महास्थविर थे जो कि धर्मप्रवचन तथा श्रमणोचित गुणों में शास्ता से कुछ ही कम थे अर्थात् उस समय भिक्षुओं में इनके सदृश कोई नहीं था ॥ २ ॥

इन महास्थविर काश्यप ने (उन एक लाख भिक्षुओं में से) अच्छे योग्य पाँच सौ (५००) भिक्षुओं का चयन कर उनके साथ धर्म (त्रिपिटक) का सर्वसम्मत संग्रह (सङ्गायन=सङ्गीति) किया ॥ ३ ॥

उन्होंने यह धम्मसंग्रह, प्राणियों पर अनुकम्पा करते हुए सौगत धर्म की चिर (दीर्घकालिक) स्थिति हेतु, तीन मास में पूर्ण किया ॥ ४ ॥

प्रथम धर्मसङ्गीति का स्थान–द्वितीय वर्षावास की सम्प्राप्ति के समय, चतुर्थ (कार्तिक) मास में, सप्तपर्णी गुफा के द्वार पर(विशाल मण्डप में) यह प्रथम धर्मसङ्गीति (धर्मसंग्रह) सम्पन्न हुई ॥ ५ ॥

धर्मसङ्गीति में सम्मिलित भिक्षुओं का वैशिष्ट्य– इस धर्मसङ्गीति में भाग लेने वाले सभी भिक्षु अन्य भिक्षुओं की अपेक्षा श्रेष्ठ (अग्र) थे । वे सभी भगवान् के शासन में छह पारमिताओं से सम्पन्न थे ॥ ६ ॥

जैसे–वहाँ उपस्थित भिक्षुओं में महाकाश्यप धुताङ्गव्रतधारी भिक्षुओं में सर्वश्रेष्ठ थे । स्थविर आनन्द धर्म के श्रोताओं में सर्वश्रेष्ठ तथा उपालि स्थविर विनय के पण्डितों में अग्र थे ॥ ७ ॥

दिव्यदृष्टि (ऋद्धिबलप्राप्त) भिक्षुओं में स्थविर अनुरुद्ध, प्रतिभान (प्रत्युत्पन्न-मतिता) में स्थविर अङ्गीस, धर्मोपदेशकों (धर्मकथिकों) में पूर्ण (पुण्ण) स्थविर, विविध उपमाओं के सहारे धर्म का व्याख्यान करने वालों में कुमारकाश्यप श्रेष्ठ थे ॥ ८ ॥

विभज्जनम्हि कच्चानो कोट्ठितो पटिसम्भिदा ।
अञ्ञे पत्थि महाथेरा अग्गनिक्खित्तका बहू ॥ ९ ॥

[R.31] तेहि चञ्ञेहि थेरेहि कतकिच्चेहि साधुहि ।
पञ्चसतेहि थेरेहि धम्मविनयसङ्गहो ॥ १० ॥

थेरेहि कतसङ्गहो थेरवादो ति वुच्चति ।
उपालिं विनयं पुच्छित्वा धम्मं आनन्दसव्हयं ॥ ११ ॥

अकंसु धम्मसङ्गहं विनयं चापि भिक्खवो ।
महाकस्सपथेरो च अनुरुद्धो महागणी ॥ १२ ॥

उपालि थेरो सतिमा आनन्दो च बहुस्सुतो ।
अञ्ञे बहू अभिञ्ञाता सावका सत्थुवण्णिता ॥ १३ ॥

पत्तपटिसम्भिदा धीरा छळभिञ्ञा महिद्धिका ।
समाधिज्झानमनुचिण्णा सद्धम्मे पारमीगता ॥ १४ ॥

सब्बे पञ्चसता थेरा नवङ्गं जिनसासनं ।
उग्गहेत्वान धारेसुं बुद्धसेट्ठस्स सन्तिके ॥ १५ ॥

भगवतो सम्मुखा सुता पटिग्गहिता च सम्मुखा ।
धम्मं च विनयं चापि केवलं बुद्धदेसितं ॥ १६ ॥

धम्मधरा विनयधरा सब्बे पि आगतागमा ।
असंहीरा असङ्कुप्पा सत्थुकप्पा सदा गरू ॥ १७ ॥

अग्गसन्तिके गहेत्वा अग्गधम्मा तथागता ।
अग्गनिक्खित्तका थेरा अग्गं अकंसु सङ्गहं ।
सब्बो पि थेरवादो सो 'अग्गवादो' ति वुच्चति ॥ १८ ॥

(धर्म के) विभङ्ग-व्याख्यान में कच्चान (कात्यायन) स्थविर एवं प्रतिसंविदा (मीमांसापूर्ण ज्ञान) में कोट्ठित स्थविर अन्य सभी भिक्षुओं में श्रेष्ठ थे । इसी तरह अन्य भिक्षु भी किसी न किसी अङ्ग में सर्वश्रेष्ठ थे ॥ ९ ॥

उनसे, तथा उनके समान ही अन्य कृतकृत्य पाँच सौ (५००) साधुस्वभाव भिक्षुओं के सहयोग से वह धर्म एवं विनय का संग्रह सम्पन्न हुआ ॥ १० ॥

स्थविरवाद–उन स्थविरों द्वारा किया हुआ यह धर्मसङ्गायन 'स्थविरवाद' कहलाता है । इसमें उपालि स्थविर से विनयविषयक सूक्ष्म से सूक्ष्म प्रश्न किये गये और आनन्द स्थविर से सुत्तापिटक विषयक प्रश्न पूछे गये थे ॥ ११ ॥

इस तरह भिक्षुओं ने इस सङ्गीति में धर्म एवं विनय का विस्तारपूर्वक संग्रह किया । फिर इस संग्रह को सभी भिक्षुओं से, जिनमें ये कुछ भिक्षु प्रमुख थे; जैसे–स्थविर महाकाश्यप एवं महान् गण (भिक्षुसमूह) वाले अनुरुद्ध ॥ १२ ॥

स्मृतिमान् उपालिस्थविर, बहुश्रुत आनन्दस्थविर, या ऐसे ही अन्य सम्मानित (अभिज्ञात) भिक्षु, जिनके गुणों की भगवान् बुद्ध ने स्वयं अपने श्रीमुख से यथाप्रसङ्ग प्रशंसा की थी ॥ १३ ॥

तथा जो प्रतिसंविदा प्राप्त थे, धैर्यवान् थे, छह अभिज्ञाओं से युक्त थे, ऋद्धिबल से सम्पन्न थे, जो समाधि एवं ध्यान भावना में निरन्तर मग्न रहते थे, एवं सद्धर्म के आचरण में पारङ्गत थे ॥ १४ ॥

ऐसे इन सभी भिक्षुओं ने इस नौ अङ्गों वाले धर्मसंग्रह को प्रामाणिक रूप में स्वीकार कर उसे भगवान् बुद्ध के साक्षी के रूप में धारण किया ॥ १५ ॥

और उन सबने सङ्घ के लिये घोषणा की कि धर्म और विनय के विषय में भगवान् के सम्मुख जो कुछ भी सुना गया है, या जो उनसे प्रत्यक्षतः प्रतिगृहीत है वही धर्म और विनय (हमारी दृष्टि में) भगवान् बुद्ध द्वारा प्रोक्त है, अन्य नहीं ॥ १६ ॥

यह धर्म-संग्रह करने वाले सभी भिक्षु विनय के ज्ञाता थे, पारम्परिक आगम (शास्त्र) के ज्ञाता थे, मार द्वारा अकम्प्य थे, किसी के द्वारा भयभीत नहीं किये जा सकते थे । वे धर्माचरण में शास्ता के सदृश थे तथा इस धर्म के लिये सदा गौरवमय भाव रखते थे ॥ १७ ॥

क्यों कि यह धर्म अग्र (श्रेष्ठ बुद्ध) से ग्रहण करके इन अग्रों (श्रेष्ठ स्थविरों) ने इस का संग्रह किया है, या इस धर्म के प्रवक्ता तथागत भी धर्म- प्रवचन में अग्र श्रेष्ठ थे, और स्थविर भी इस धर्म का ग्रहण करने वालों में अग्र (श्रेष्ठ) थे अतः इस (प्रथम सङ्गीति में संगृहीत) स्थविरवाद को **अग्रवाद** (प्रधानवाद) भी कहते हैं ॥ १८ ॥

सत्तपण्णिगुहे रम्मे थेरा पञ्चसता गणी ।
निसिन्ना पटिभञ्जिसु[1] नवङ्गं सत्थुसासनं ॥ १९ ॥

सुत्तं गेय्यं वेय्याकरणं गाथुदानितिवुत्तकं ।
जातकब्भुतवेदल्लं नवङ्गं सत्थुसासनं ॥ २० ॥

[S.21] पविभत्तं इमं थेरं सद्धम्मं अविनासनं ।
वग्गपण्णासकं नाम संयुत्तं च निपातकं ।
आगमपिटकं नाम अकंसु सुत्तसम्मतं ॥ २१ ॥

*परियायदेसितं चापि अथो निप्परियायदेसितं ।
नीतत्थं येव नेय्यत्थं दीपेसुं सुत्तकोविदा* ॥ २२ ॥

याव तिट्ठन्ति सद्धम्मा सङ्गहं न विनस्सति ।
तावता सासनद्धानं चिरं तिट्ठति सत्थुनो ॥ २३ ॥

कतं धम्मं च विनयं सङ्गहं सासनारहं ।
सङ्घम्पि अचलं भूमिं दळ्हमप्पटिवत्तियं ॥ २४ ॥

यो कोचि समणो वा पि ब्राह्मणो च बहुस्सुतो ।
परप्पवादकुसलो वाळवेधि समागतो ॥ २५ ॥

न सक्का पटिवत्तेतुं सिनेरू व पतिट्ठितो ।
[R.32] देवो मारो च[2] ब्रह्मा च ये केचि पठविट्ठिता ॥ २६ ॥

न पस्सन्ति अणुमत्तं किञ्चि दुब्भासितं पदं ।
एवं सब्बङ्गसम्पन्नं[3] धम्मविनयसङ्गहं ॥ २७ ॥

---

1. पविभञ्जिंसु-सी. ।
- रो. पोत्थके न दिस्सति ।
2. वा-रो. ।
3. सब्बङ्गसम्पन्ना-सी. ।

रम्य सप्तपर्णी गुहा (के द्वार पर बने रम्य मण्डप) में बैठ कर इन पाँच सौ भिक्षुओं ने इस नवाङ्ग बुद्ध शासन का विभाजन (सर्वथा समीक्षण) कर संग्रह किया ॥ १९ ॥

इस बुद्ध-शासन के **नौ** (९) **अङ्ग** (परिच्छेद) ये कहलाते है; जैसे– १. सूत्र, २. गेय,३. व्याकरण, ४. गाथा,५. उदान,६. इत्युक्तक (इतिवुत्तक) ७. जातक, ८. अद्भुत धर्म एवं ९. वेदल्ल (प्रश्नोत्तर शैली का व्याख्यान) ॥ २० ॥

इस अविनाशी (स्थायी) स्थविरवादी बुद्धप्रोक्त धर्म का उक्त सङ्गीति में विभाजन कर संयुक्तनिकाय एवं अङ्गुत्तरनिकाय को 'वर्गपञ्चाशत्क' (वग्गपण्णासक) नाम दिया गया एवं समग्र सूत्रपिटक 'आगमपिटक' कहलाया ॥ २१ ॥

इस सङ्गीति में उन सूत्रों के मर्मज्ञ स्थविरों ने बुद्धवचन में जो कुछ भी पर्यायदेशित (परम्परया उपदिष्ट) या निष्पर्यायदेशित (साक्षादुपदिष्ट) था अथवा जो कुछ भी नीतार्थ (अवास्तविकी देशना) या नेयार्थ (आभिप्रायिकी देशना) था सभी का संग्रह किया ॥ २२ ॥

अतः जब तक (अच्छे भिक्षुओं द्वारा) सद्धर्म पर आचरण किया जाता रहेगा, तब तक यह धर्मसंग्रह विलुप्त नहीं होगा । और तभी (चिर काल) तक यह शास्ता का शासन भी चलता रहेगा ॥ २३ ॥

ज्यों ही उस प्रथम सङ्गीति में भिक्षुओं के आचरणयोग्य इस धर्म और विनय का संग्रह सम्पन्न हुआ, त्यों ही यह दृढ़ अचल एवं अप्रतिवर्तनीय भूमि भी (गद्गद होकर) काँप उठी ॥ २४ ॥

अब, कोई भी परमतानुयायी श्रमण या ब्राह्मण आ जाय जो कितना भी बहुश्रुत क्यों न हो, कितना भी परमतखण्डन में कुशल क्यों न हो,या कितना भी सूक्ष्म विचारक (बाल की खाल निकालने वाला) क्यों न हो ॥ २५ ॥

इस सुमेरु पर्वत के सदृश अचल, सुप्रतिष्ठित बुद्धवचन को विचलित नहीं कर सकता । भले ही फिर वह मार, ब्रह्मा या इस पृथ्वी का वासी कोई भी बलवान् से बलवान् या बुद्धिमान् से बुद्धिमान् प्राणी ही क्यों न हो! ॥ २६ ॥

वह (वैसा समर्थ जन) भी इस बुद्धवचन में कोई अणुमात्र (यत्किञ्चित्) दुर्भाषित (मिथ्याप्रयुक्त) पद नहीं बता सकता । इस विशेषता के साथ उन स्थविरों ने इस धर्म एवं विनय के संग्रह को सर्वाङ्गसम्पन्न बनाया । साथ ही शास्ता की सर्वज्ञता भी प्रकट कर दी ॥ २७ ॥

सुविभत्तं सुपटिच्छन्नं सत्थु सब्बञ्ञुताय च ।
महाकस्सपपामोक्खा थेरा[1] पञ्चसता च ते ॥ २८ ॥

कतं धम्मं च विनयसङ्गहं अविनासनं ।
सब्बसम्बुद्धसदिसं धम्मकायसभावनं ॥ २९ ॥

गन्त्वा[2] जनस्स सन्देहं अकंसु धम्मसङ्गहं ।
अञ्ञवादो सारत्थो सद्धम्ममनुरक्खणो ।
ठिति सासनअद्धानं थेरवादो सहेतुको ॥ ३० ॥

यावता अरिया अत्थि सासने बुद्धसावका ।
सब्बे पि समनुञ्ञन्ति पठमं धम्मसङ्गहं ॥ ३१ ॥

मूलनिदानं पठमं आदिपुब्बङ्गमं धुरं ।
*तस्मा हि सो थेरवादो अग्गवादो ति वुच्चति ॥ ३२ ॥

विसुद्धो अपगतदोसो थेरवादानमुत्तमो ।
पवत्तित्थ चिरकालं वस्सानं दसदा दसा ति*॥ ३३ ॥

महाकस्सपसङ्गहो निट्ठितो ॥

●

दुतियसङ्गहो

[S.22] निब्बुते लोकनाथस्मिं वस्सानि सोळसं तदा ॥
अजातसत्तु चतुवीस विजयस्स सोळसं अहु ॥ ३४ ॥

समसट्ठि तदा होति वस्सं उपालिपण्डितं ।
दासको उपसम्पन्नो उपालित्थेरसन्तिके ॥ ३५ ॥

---

1. थेर-रो. ।
2. ञत्वा-रो. ।
- . थेरा पञ्चसता कता अग्गा आजानिया कुलं ति ।।-रो.

उन पाँच सौ (५००) महाकाश्यप आदि प्रमुख स्थविरों ने इस अविनाशी विनय एवं धर्म का इस तरह से संग्रह किया कि यह शास्ता के सदृश तथा उनके धर्मकाय के तुल्य ही लोक में गौरव (सम्मान, पूजा) प्राप्त करेगा ॥ २८-२९ ॥

उन स्थविरों ने इस धर्म के प्रति तत्कालीन जनता के थोड़े से सन्देह का अनुमान कर के ही तत्क्षण इस धर्म को इस प्रकार से संगृहीत कर दिया कि इसमें दूसरे धर्मानुयायियों के मत का पोषक एक शब्द भी नहीं आ पाया, यों यह सारमात्र (तत्त्वमात्र) रह गया। साथ ही यह इस सद्धर्म का रक्षक (प्रहरी) भी बन गया। अतः यह स्थविरवादी धर्मसंग्रह स्थायी भी है, सहेतुक (सप्रयोजन) भी है। ॥ ३० ॥

यों, जब तक इस बुद्धशासन में जो आर्य (श्रेष्ठ) जन रहेंगे, अर्थात् वे इस धर्म का पालन करते रहेंगे, वे सभी इस प्रथम धर्मसंग्रह का समर्थन (समनुज्ञा) करते रहेंगे ॥ ३१ ॥

यह स्थविरवाद इस धर्म का मूल कारण (निदान) है, सर्वप्रथम है, आदिभूत है, पूर्वगामी (आगे चलने वाला) है, धर्म की धुरी के सदृश (भारवहन में समर्थ) है, अतः इसे आर्यजन 'अग्रवाद' कहते हैं ॥ ३२ ॥

यह स्थविरवाद पवित्र (विशुद्ध) है, दोषरहित है, स्थविरवादी भिक्षुओं के लिये उत्तमतया ग्राह्य है, अतः यह इस लोक में सैकड़ों हजारों वर्षों तक चिर स्थायी रहेगा ॥ ३३ ॥

महाकाश्यपद्वारा कृत धर्मसंग्रह का वर्णन समाप्त ॥

●

द्वितीय धर्मसंग्रह (धर्मसङ्गीति)

लोकनाथ (भगवान्) को परिनिर्वृत हुए उस समय सोलह (१६) वर्ष बीत चुके थे, इसी तरह राजा अजातशत्रु को राज्य करते हुए चौबीस (२४) वर्ष बीत चुके थे, तथा उदयभद्र राजा द्वारा किये जा रहे शासन के भी सोलह (१६) वर्ष बीत चुके थे ॥ ३४ ॥

उपालि स्थविर– तब महास्थविर उपालि पण्डित साठ (६०) वर्ष की आयु के हो चुके थे, जब दासक श्रामणेर ने उपालि स्थविर के पास उपसम्पदा प्राप्त की ॥ ३५ ॥

यावता बुद्धसेट्ठस्स धम्मप्पत्ति पकासिता ।
सब्बं उपालि वाचेसि नवङ्गं जिनभासितं ॥ ३६ ॥

परिपुण्णं केवलं सब्बं नवङ्गं सुत्तमागतं ।
उग्गहेत्वान वाचेसि उपालि बुद्धसन्तिके ॥ ३७ ॥

सङ्घमज्झे वियाकासि बुद्धो· उपालिपण्डितं ।
"अग्गो विनयपामोक्खो उपालि मय्हसासने" ॥ ३८ ॥

एवं उपनीतो सन्तो सङ्घमज्झे महागणी ।
सहस्सं दासकपामोक्खा[1] वाचेसि पिटके तयो ॥ ३९ ॥

खीणासवानं विमलानं सन्तानं अत्थवादिनं ।
थेरानं पञ्चसतानं उपालि वाचेसि दासकं ॥ ४० ॥

परिनिब्बुतम्हि सम्बुद्धे उपालिथेरो महागणी ।
विनयं ताव वाचेसि तिंसवस्सं अनूनकं ॥ ४१ ॥

[R.33] चतुरासीतिसहस्सानि नवङ्गं सत्थुसासनं ।
वाचेसि उपालि सब्बं दासकं नाम पण्डितं ॥ ४२ ॥

दासको पिटकं सब्बं उपालित्थेरसन्तिके ।
उग्गहेत्वान वाचेसि उपज्झायो च[2] सासने ॥ ४३ ॥

सद्धिविहारिकं थेरं दासकं नाम पण्डितं ।
विनयं सब्बं ठपेत्वान निब्बुतो सो महागणी ॥ ४४ ॥

उदयो सोळवस्सानि रज्जं कारेसि खत्तियो ।
छवस्से उदयभद्दम्हि उपालिथेरो स निब्बुतो ॥ ४५ ॥

---

1. दासपामोक्खं--रो.
2. व-रो. ।

उपालि स्थविर ने (उपसम्पन्न हुए इस दासक को) उस समय भगवान् बुद्ध द्वारा कथित जितना भी धर्मवचन उपलब्ध था, वह नौ (९) अङ्गों से सम्पन्न बुद्धवचन समग्र रूप से पढ़ा दिया ॥ ३६ ॥

यों, समग्र, आदि से अन्त तक परिपूर्ण, यह सूत्रसहित नवाङ्ग बुद्धवचन, जिसकी उपालि पण्डित ने भगवान् बुद्ध से शिक्षा ली थी ॥ ३७ ॥

जिसके कारण भगवान् बुद्ध को भी, कोई प्रसङ्ग आने पर, सङ्घ के बीच में बैठे हुए कहना पड़ा था कि "विनय के जानने वाले मेरे शिष्यों में उपालि सर्वप्रमुख (सर्वश्रेष्ठ) हैं" ॥ ३८ ॥

दासक स्थविर–यों सङ्घ के बीच में भगवान् बुद्ध द्वारा भी प्रशंसाप्राप्त एवं मण्डलीश्वर उपालि स्थविर ने दासकप्रमुख एक हजार (१,०००) भिक्षुओं को तीनों पिटक (विनय,सूत्र, अभिधर्म) पढ़ाये ॥ ३९ ॥

जब उपालि पण्डित दासक को त्रिपिटक पढ़ा रहे थे, तब उस के साथ पढ़ने के लिये पाँच सौ (५००) ऐसे भिक्षु भी बैठते थे जो सभी क्षीणास्रव थे, शुद्धचित्त थे, शान्तहृदय थे, उचित बात ही बोलते थे (वाणी में गम्भीर थे) ॥ ४० ॥

इन महामण्डलीश्वर उपालि स्थविर ने भगवान् के परिनिर्वृत होने के बाद भी, तीस (३०) वर्ष तक निरन्तर भिक्षु-छात्रों को विनयपिटक पढ़ाया ॥ ४१ ॥

और इन उपालि स्थविर ने दासक को तो चौरासी हजार (८४,०००) धर्मस्कन्धों में विभक्त एवं सर्वाङ्गसम्पन्न समग्र त्रिपिटक (विस्तारपूर्वक) पढ़ाया ॥ ४२ ॥

यों, वे दासक भिक्षु उपालि स्थविर से समग्र त्रिपिटक का स्वाध्याय (वाचन) कर, सङ्घ में उपाध्याय बन गये ॥ ४३ ॥

अन्त में ये महामण्डलीश्वर उपालि स्थविर दासक को समग्र त्रिपिटक का पण्डित बनाकर (शासनपरम्परा को सुरक्षित कर) परिनिर्वृत हो गये ॥ ४४ ॥

(अजातशत्रु के बाद) राजा उदय ने सोलह वर्ष तक राज्य किया । इस उदय राजा को राज्य करते आठ ही वर्ष बीते थे कि उपालि स्थविर परिनिर्वृत हो गये ॥ ४५ ॥

सोणको[1] मानसम्पन्नो वाणिजो कासिमागतो ।
गिरिब्बजे वेळुवने पब्बजि सत्थुसासने ॥ ४६ ॥

दासको गणपामोक्खो मगधानं गिरिब्बजे ।
विहासि सत्ततिंसम्हि पब्बाजेसि च सोणकं ॥ ४७ ॥

पञ्चताळीसवस्सो सो दासको नाम पण्डितो ।
नागदासदसवस्सं पण्डुराजस्स वीसति ॥ ४८ ॥

[S.23] उपसम्पन्नो सोणको थेरो दासकसन्तिके ।
वाचेसि दासको थेरो नवङ्गं सोणकस्स पि ॥ ४९ ॥

उग्गहेत्वान वाचेसि उपज्झायस्स सन्तिके ।
दासको सोणकं थेरं सद्धिविहारिमनुपुब्बकं ॥ ५० ॥

कत्वा विनयपामोक्खं चतुसट्ठिम्हि निब्बुतो ।
चत्तारीसेव वस्सो सो थेरो सोणकव्हयो ॥ ५१ ॥

कालासोकस्स दसवस्से अड्ढमासे[2] च सेसके ।
सत्तरसन्नं वस्सानं थेरो आसि पगुणको ॥ ५२ ॥

अतिक्कन्तेकादसवस्सं छमासं चावसेसके ।
तस्मिं च समये थेरो सोणको गणपुङ्गवो ।
सिग्गवं चन्दवज्जिं च अकासि उपसम्पदं ॥ ५३ ॥

*दस दसकवस्सम्हि सम्बुद्धे परिनिब्बुते ।
महाभेदो अजायित्थ थेरवादानमुत्तमो ।
वेसालियं वज्जिपुत्ता दीपेन्ति दसवत्थुके ॥ ५४ ॥

---

1. सोनको-रो. । एवं सब्बत्थ ।
2. अड्ढमासे-रो.।
*. इत आरब्भ ६८ गाथापरियन्तं रो॰ पोत्थके बहु पाठभेदो दिस्सति, सो ततो व अवगन्तब्बो ।

सोणक स्थविर– कोई सोणक नामक सम्मानित व्यापारी अपने व्यापारिसमूह के साथ काशी जाता हुआ (मार्ग में), गिरिव्रज (राजगृह) के वेणुवन में, बुद्धधर्म में प्रव्रजित हुआ ॥ ४६ ॥

अपने गण (भिक्षुसमूह) के प्रधान दासक स्थविर मगध प्रदेश के गिरिव्रज प्रान्त में, सैंतीस (३७) वर्ष की (भिक्षु-) आयु में, चारिका कर रहे थे उसी समय उन्होंने सोणक को प्रव्रज्या-दीक्षा दी ॥ ४७ ॥

उस समय वे दासक स्थविर पैतालीस (४५) के हुए थे, राजा नागदास (राजगृह) को राज्य करते दश (१०) वर्ष हुए थे, तथा (मधुरा के राजा) पाण्डुराज को राज्य करते बीस (२०) वर्ष हुए थे ॥ ४८ ॥

उसी समय इन सोणक ने दासक स्थविर से प्रव्रज्या दीक्षा ली। फिर दासक स्थविर ने सोणक स्थविर को भी नवाङ्ग बुद्धवचन का अध्यापन किया ॥ ५९ ॥

दासक स्थविर ने जैसा बुद्धवचन अपने उपाध्याय (उपालि महास्थाविर) से पढा, वह सब उसी तरह उन्होंने अपने शिष्य सोणक को भी पढा दिया ॥ ५० ॥

इस तरह दासक स्थविर ने उन सोणक स्थाविर को विनय का प्रामाणिक विद्वान् बनाकर चौंसठ (६४) वर्ष की आयु में निर्वाण प्राप्त किया । उस समय सोणक स्थविर चालीस (४०) वर्ष के ही थे ॥ ५१ ॥

कालाशोक को राज्य करते हुए जब दश वर्ष में आठ मास अवशिष्ट थे उस समय सोणक स्थविर सत्तरह (१७) वर्ष की आयु में ही प्रगुणक (=ज्ञानसम्पन्न) हो चुके थे ॥ ५२ ॥

सिग्गव एवं चण्डवज्जी–और, जब उस राजा को राज्य करते हुए एकादश (११) वर्ष पूर्ण होने में छह मास अवशिष्ट थे, तब ये सोणक स्थविर गणपुङ्गव (एक भिक्षुसमूह के प्रमुख, मण्डलीश्वर) भी बन चुके थे । और उन्होंने उस समय सिग्गव एवं चण्डवज्जी को उपसम्पदा दी ॥ ५३ ॥

सङ्घभेद–(इसी राजा कालाशोक के शासन के समय) जब कि भगवान् बुद्ध का महापरिनिर्वाण हुए सौ (१००) वर्ष हो चुके थे इन स्थविरवादी भिक्षुओं में महान् भेद (फूट) पड़ गया । उस समय वैशाली वज्जिपुत्तक भिक्षु इन दश बातों का समर्थन करने लगे ॥ ५४ ॥

सिङ्गिलोणं द्वङ्गुलकप्पं गामन्तरावासनुमतिं ।
तथा आचिण्णामथितजलोगिं वा पि रूपियं ॥ ५५ ॥

निसीदनं अदसकं दीपिंसु बुद्धसासने ।
उद्धम्मं उब्बिनयं च अपगतं सत्थुसासने ॥ ५६ ॥

अत्थं धम्मं च भिन्दित्वा विलोमानि दीपयिंसु ते ।
तेसं निग्गहनत्थाय बहू बुद्धस्स सावका ॥ ५७ ॥

[S.24] द्वादस सतसहस्सा जिनपुत्ता समागता ।
एकस्मिं सन्निपातस्मिं पामोक्खा अट्ठ भिक्खवो ॥ ५८ ॥

सत्थुकप्पा महानागा दुरासदा महागणी ।
सब्बकामी च साळहो च रेवतो खुज्जसोभितो ॥ ५९ ॥

वासभगामी सुमनो च साणवासी च सम्भुतो ।
यसो काकण्डपुत्तो च जिनेन थोमितो इसि ॥ ६0 ॥

पापानं निग्गहत्थाय वेसालियं समागता[1] ।
वासभगामी च सुमनो अनुरुद्धस्सानुवत्तका ॥ ६१ ॥

अवसेसा थेरानन्दस्स दिट्ठपुब्बा तथागतं ।
एते सत्तसता भिक्खू वेसालियं समागता ॥ ६२ ॥

विनयं पटिगण्हन्ति ठपितं बुद्धसासने ।
सब्बे पि विसुद्धचक्खू समापत्तिम्हि कोविदा ॥ ६३ ॥

1. समागतं–सी०।

जैसे–१. सींग में लवण (नमक) रख कर ले जाना; २. मध्याह्नोत्तर, सूर्य का आकाश में दो अङ्गुल आगे बढ जाने पर भी, भोजन कर लेना; ३. मध्याह्न के बाद ग्रामान्तर में जाकर पुनः भोजन करना; ४. एक ही सीमा में रहने वाले भिक्षुओं का अपने अपने आवास में पृथक् उपोसथागार बनवाना; ५. बाद में आने वाले भिक्षुओं की स्वीकृति की प्रत्याशा में शास्त्राननुमत अल्पमत भिक्षुओं द्वारा पहले ही उपोसथ कर लेना; ६. विनय के आदेश से बढकर गुरु के वचन को प्रमाण मानना; ७. भोजनकाल के बाद भी, दूध-दही के बीच की अवस्था वाले दूध का पान। ८. मद्यभाव को अप्राप्त (विना खिंची) सुरा का पान। ९. विना किनारी के आसन का उपयोग एवं १०. रजत या सुवर्ण का परिग्रह। ये लोग इन बातों का अन्य भिक्षुओं में भी प्रचार करने लगे। उनका यह सब कृत्य धर्म से विमुख था, विनय के विरुद्ध था, धर्म से निष्कासन के योग्य था ॥ ५५-५६ ॥

वे भिक्षु अपने इस आचरण से धर्म और अनुशासन में भेद (फूट) डालते हुए बुद्ध-शासन से विरुद्ध चलने लगे। तब वहाँ धर्मानुयायी भिक्षुओं ने उन धर्मविरोधी भिक्षुओं को नियन्त्रित करने का प्रयत्न किया ॥ ५७ ॥

इस शुभ कृत्य के लिये, उस समय बारह लाख (१२,००,०००) भिक्षु आठ (८) भिक्षु-प्रमुख स्थविरों के साथ एकत्र हुए ॥ ५८ ॥

ये सभी स्थविर धर्म के आचरण एवं प्रवचन में शास्ता के समान, महान् आध्यात्मिक बल से युक्त, किसी के भी प्रभाव से नियन्त्रित होने में अशक्य तथा अपनी अपनी समर्थक विशाल भिक्षुमण्डलियों वाले थे। जिनके नाम ये हैं– १. सर्वकामी, २. साळह, ३. रेवत, ४. खुज्जसोभित ॥ ५९ ॥

५. वासभगामी, ६. सुमन, ७. साणवासी सम्भूत एवं ८. यश काकण्डकपुत्र जो भगवान् बुद्ध द्वारा भी प्रशंसाप्राप्त थे ॥ ६० ॥

ये सभी भिक्षु उन पापिभिक्षुओं पर निग्रहहेतु वैशाली में एकत्र हुए। इन उपर्युक्त विशिष्ट भिक्षुओं में दो भिक्षु–वासभगामी एवं सुमन भगवान् के साक्षात् शिष्य अनुरुद्ध के श्रावक (शिष्य) थे ॥ ६१ ॥

और अवशिष्ट छह स्थविर भिक्षु स्थविर आनन्द के शिष्य थे। इन सभी अहोभाग्य भिक्षुओं ने भगवान् बुद्ध के साक्षात् दर्शन किये थे। ये सात सौ (७००) भिक्षु वैशाली में एकत्र हुए ॥ ६२ ॥

इन सभी भिक्षुओं ने धर्म की अभ्युन्नति के लिये बुद्धानुमत विनय के ही पक्ष का समर्थन किया; क्योंकि ये सभी भिक्षु धर्माचरण के कारण निर्मलदृष्टि (विशुद्धज्ञान) थे एवं समाधि में भी परिनिष्ठित थे ॥ ६३ ॥

पन्नभारा विसञ्ञुत्ता सन्निपाते समागता ।
सुसुनागस्स पुत्तो सो कालासोको महीपति ॥ ६४ ॥

पाटलिपुत्रे, नगरम्हि रज्जं कारेसि खत्तियो ।
तं च पक्खं लभित्वान अट्ठ थेरा महिद्धिका ॥ ६५ ॥

दस वत्थूनि भिन्दित्वा पापे निद्धमयिंसु ते ।
निद्धमेत्वा पापभिक्खू मद्दित्वा वादपापकं ॥ ६६ ॥

सकवादसोधनत्थाय अट्ठ थेरा महिद्धिका ।
अरहन्तानं सत्तसतं उच्चिनित्वान भिक्खवो ।
वरं वरं गहेत्वान अकंसु धम्मसङ्गहं ॥ ६७ ॥

कूटागारसालाये च वेसालियं पुरुत्तमे ।
अट्ठमासेहि निट्ठासि दुतियो सङ्गहो अयं"*॥ ६८ ॥ ति ॥

दुतियसङ्गहो निट्ठितो ॥

●

आचरियवंसभेदो

[R.36] निकड्ढिता पापभिक्खू थेरेहि वज्जिपुत्तका ।
अञ्ञं पक्खं लभित्वान अधम्मवादी बहुज्जना ॥ ६९ ॥

दस सहस्सा[1] समागन्त्वा अकंसु धम्मसङ्गहं ।
तस्मायं धम्मसङ्गीति महासङ्गीति वुच्चति ॥ ७० ॥

[S.25] महासङ्गीतिका भिक्खू विलोमं अकंसु सासनं ।
भिन्दित्वा मूलसङ्गहं अञ्ञं अकंसु सङ्गहं ॥ ७१ ॥

1. सहस्सि-रो. ।

इन्हों ने अपना सांसारिक भार अपने कन्धों से उतार फेंका था, ये सांसारिक (पुत्र-पौत्रादि) बन्धनों से मुक्त हो चुके थे। ये सभी इस सम्मेलन में सम्मिलित हुए ॥ ६४ ॥

उस समय शिशुनाग का पुत्र राजा कालाशोक पाटलिपुत्र नगर में राज्य कर रहा था। (पहले उसके विरुद्ध होने पर भी बाद में) इन आठों ऋद्धिबलसम्पन्न भिक्षुओं ने उसको भी अपने पक्ष में कर लिया ॥ ६५ ॥

इन्होंने उन, पापी भिक्षुओं द्वारा समर्थित, पूर्वोक्त दश बातों का निराकरण कर, साथ ही उन पापी भिक्षुओं का भी दमन कर, सङ्घ से पापाचरण को पूर्णतः समाप्त कर दिया ॥ ६६ ॥

फिर इन आठों समर्थ भिक्षुओं ने स्थविरवाद के पुनः दृढ समर्थन हेतु, उन लाखों भिक्षुओं में से अच्छे-अच्छे सात सौ (७००) योग्य भिक्षुओं को चुनकर, यह (द्वितीय) धर्मसङ्गीति सम्पन्न की ॥ ६७ ॥

यह द्वितीय धर्मसङ्गीति श्रेष्ठ नगरी वैशाली की कूटागारशाला में आठ मास में निष्पन्न हुई ॥ ६८ ॥

द्वितीय धर्मसङ्गीति का वर्णन समाप्त ॥

●

आचार्यवंश में भेद (विभाजन)

इन स्थविरों द्वारा उन वज्जिपुत्रक पापभिक्षुओं एवं उनके अन्य समर्थक धर्मविरोधी अनेक भिक्षुओं को सङ्घ से निष्कासित कर दिया गया ॥ ६९ ॥

(उन निष्कासित) दश हजार भिक्षुओं की उपस्थिति में एक अन्य धर्मसङ्गीति सम्पन्न हुई, अतः यह 'महासङ्गीति' कहलायी ॥ ७० ॥

महासङ्गीति– इन महासङ्गीति-कर्ता भिक्षुओं ने स्थविरवादी शासन को विलोम (उलटा) कर दिया और स्थविरवादियों द्वारा किये गये मूल संग्रह को उलट कर उसके विपरीत अपना अन्य धर्मसंग्रह निर्धारित कर लिया ॥ ७१ ॥

अञ्ञत्थ सङ्गहितं सुत्तं अञ्ञत्थ अकरिंसु ते ।
अत्थं धम्मं च भिन्दिंसु विनये[1] निकायेसु पञ्चसु ॥ ७२ ॥

परियायदेसितं चापि अथो निप्परियायदेसितं ।
नीतत्थं चेव नेय्यत्थं अजानित्वान भिक्खवो ॥ ७३ ॥

अञ्ञं सन्धाय भणितं अञ्ञत्थ ठपयिंसु ते ।
ब्यञ्जनच्छायाय ते भिक्खू बहु अत्थं विनासयुं ॥ ७४ ॥

छड्डेत्वान[2] एकदेसं[2] सुत्तं विनयं गम्भीरं ।
अतिरूपं[3] सुत्तविनयं तं च अञ्ञं करिंसु ते ॥ ७५ ॥

परिवारं अत्थुद्धारं अभिधम्मं[4] छप्पकरणं[4] ।
पटिसम्भिदं च निद्देसं एकदेसं च जातकं ।
एत्तकं विस्सज्जेत्वान अञ्ञानि अकरिंसु ते ॥ ७६ ॥

नामं लिङ्गं परिक्खारं आकप्पकरणीयानि च ।
पकतिभावं जहेत्वा तं च अञ्ञं अकंसु ते ॥ ७७ ॥

[R.37] पुब्बङ्गमा भिन्नवादा महासङ्गीतिकारका ।
तेसं च अनुकारेन भिन्नवादा बहू अहू ॥ ७८ ॥

ततो अपरकालम्हि तस्मिं भेदो अजायथ ।
गोकुलिका एकब्योहारा द्विधा भिज्जित्थ भिक्खवो ॥ ७९ ॥

गोकुलिकानं द्वे भेदा अपरकालम्हि जायथ ।
बहुस्सुतिका च पञ्ञत्ती द्विधा भिज्जित्थ भिक्खवो ॥ ८० ॥

"चेतिया च पुनवादी महासङ्गीतिभेदका ।
पञ्च वादा इमे सब्बे महासङ्गीतिमूलका ॥ ८१ ॥

---

1. ये-रो. ।
2.-2 छुड्डेत्वा एकदेसं च-रो. ।
3. पटिरूपं-रो. ।
4.-4 अभिधम्मप्पकरणं–रो. ।

उन महासङ्गीतिकार भिक्षुओं ने पहले के भिक्षुओं द्वारा अन्य प्रकरण में संगृहीत पाठ को अन्य संग्रह में संगृहीत कर दिया । यों पूर्व स्थापित धर्म और विनय को विभक्त कर, विनय एवं पाँच निकायों में ॥ ७२ ॥

पर्यायदेशित एवं निष्पर्यायदेशित पाठ को, इसी तरह नीतार्थ एवं नेयार्थ पाठ को, उन महासङ्गीतिकार भिक्षुओं ने, विना जाने समझे ॥ ७३ ॥

किसी अन्य आशय से कथित बुद्धवचन को अन्य आशय के बोधक बुद्धवचन से सम्पृक्त कर दिया । अन्य अन्य तरह से व्याख्याएँ कर के उस बुद्धवचन के ग्राह्य अर्थ को ही विनष्ट कर दिया ॥ ७४ ॥

उन्होंने गम्भीर सूत्र एवं विनय के विशिष्ट कुछ अंशों को छोड़ कर उन के स्थान पर विरुद्ध (प्रतिकूल) पाठ स्थान स्थान पर रख दिया ॥ ७५ ॥

महासङ्गीतिकारकों का भिन्न त्रिपिटक– इसी तरह उन्होंने परिवार-ग्रन्थ के अर्थोद्धार में, छह ग्रन्थों के अभिधर्मपिटक में, पटिसम्भिदाभग्ग में, दोनों निद्देसों में, कुछ जातकों में कुछ पाठ छोड़ कर उसके स्थान पर दूसरे ही पाठ रख दिये ॥ ७६ ॥

इसी तरह सङ्घ में प्रतिदिन व्यवहार में आने वाले नामों का, चिह्नों का, परिष्कारों का, अवश्यपालनीय धर्मों का प्रकृतिभाव (पूर्वनिर्धारित रूप) हटा कर अन्य ही रूप बना दिया ॥ ७७ ॥

महासङ्गीतिकारकों में भेद–बाद में, इन सर्वप्रथम सङ्घ से भिन्न हुए महासङ्गीतिकारकों (महासाङ्घिकों) का अनुकरण करते हुए ऐसे ही बहुत से अन्य भिक्षुसमूहों ने भी अपना अपना पृथक् मत (वाद) स्थापित कर लिया ॥ ७८ ॥

फिर उससे आगे चलकर, कुछ काल बाद, इन महासङ्गीतिकारकों में भी दो भेद हो गये । इन में पृथक् होने वाले भिक्षु पहले **गोकुलिक** और दूसरे **'एक-व्यावहारिक'** कहलाये ॥ ७९ ॥

आगे चलकर इन गोकुलिक भिक्षुओं में एक भेद और हुआ । जिसका नाम पड़ा **'बाहुश्रुतिक'**; (बाहुलिक) ॥ ८० ॥

फिर इन महासङ्गीतिकारकों से मतभेद होने पर कुछ भिक्षु **'चैत्यवादी'** कहलाये । इस तरह ये महासङ्गीतिकारक भिक्षु ही इन उपर्युक्त पाँच भिन्न नामों से परस्पर पृथक् हो गये ॥ ८१ ॥

अत्थं धम्मं च भिन्दिंसु एकदेसं च सङ्गहं।
गन्थं च एकदेसम्हि छड्डेत्वा अञ्ञं अकंसु ते॥ ८२॥

नामं लिङ्गं परिक्खारं आकप्पकरणानि च।
पकतिभावं जहेत्वा[1] तं च अञ्ञं अकंसु ते॥ ८३॥

विसुद्धत्थेरवादम्हि पुन भेदो अजायथ।
महिंसासका वज्जिपुत्तका द्विधा भिज्जित्थ भिक्खवो॥ ८४॥

वज्जिपुत्तकवादम्हि चतुधा भेदो अजायथ।
धम्मुत्तरिका भद्दयानिका छन्नागारिका च सम्मिति॥ ८५॥

[S.26] महिंसासकानं द्वे भेदा अपरकालम्हि जायथ।
सब्बत्थिवादा[2] धम्मगुत्ता द्विधा भिज्जित्थ भिक्खवो॥ ८६॥

सब्बत्थिवादा कस्सपिका सङ्कन्ति[3] कस्सपिकेन च[3]।
सुत्तवादा ततो अञ्ञा अनुपुब्बेन भिज्जथ॥ ८७॥

एते एकादसवादा पभिन्ना थेरवादतो।
अत्थं धम्मं च भिन्दिंसु एकदेसं च सङ्गहं॥ ८८॥

गन्थं[4] च[4] एकदेसम्हि छड्डेत्वान अकंसु ते।
नामं लिङ्गं परिक्खारं आकप्पकरणीयानि च॥
पकतिभावं जहित्वा[5] तञ्च अञ्ञं अकंसु ते॥ ८९॥

सत्तरस भिन्नवादा एकवादो अभिन्नको॥
सब्बे व द्वारस होन्ति भिन्नवादेन ते सह।
निग्रोधो व महारुक्खो थेरवादानमुत्तमो॥ ९०॥

---

1. विजहेत्वा–रो.।
2. सब्बत्थवादा–रो.।
3–3 कस्सपिका सङ्कन्तिका– रो.।
4–4 गण्ठिञ्च–रो.।
5. विजहित्वा– रो.।

इस तरह मूल स्थविरवाद से पृथक् हुए भिक्षुओं ने धर्मवचनों का स्वसम्मत पृथक् अर्थ ख्यापित कर दिया, और सर्वसम्मत मूलसङ्गह को छोड़ कर इन्होंने एक-देशी (एक पक्ष का) पृथक् पृथक् संग्रह बना लिया ॥ ८२ ॥

इन्होंने अपने लिये, सङ्घ के मूल नामों, चिह्नों, परिष्कारों में, यहाँ तक कि अवश्य पालनीय भिक्षुनियमों में भी, उन का प्रकृतिभाव (वास्तविकता) हटाकर अन्य अन्य (स्वाभीष्ट) परिवर्तन कर लिये ॥ ८३ ॥

स्थविरवाद में भी विभाजन– समय आने पर, उस विशुद्ध (मूल) स्थविरवाद में पुनः विभाजन हुआ । इसमें दो शाखाएँ पृथक् हुईं । एक का नाम हुआ– 'महिंसासक', और दूसरी का नाम हुआ–**'वज्जिपुत्तक'** ॥ ८४ ॥

वज्जिपुत्तकों में भी विभाजन– आगे चलकर इन वज्जिपुत्तकों में भी चार भेद हो गये । उनके नाम हैं– १. 'धर्मोत्तरिक', २. 'भद्रयानिक', ३. 'छन्नागारिक' एवं ४. 'सम्मितीय' ॥ ८५ ॥

महिंसासकों में विभाजन– फिर समय पाकर, इन महिंसासक भिक्षुओं में भी दो भेद हो गये । इनमें पहला कहलाया–'सर्वास्तिवाद', और दूसरा 'धर्मगुप्त' नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥ ८६ ॥

सर्वास्तिवाद का विभाजन– यों क्रमशः सर्वास्तिवाद में भी चार भेद हो गये-१. 'सर्वास्तिवादी', २. 'काश्यपीय', ३. 'सांक्रान्तिक' एवं ४. सूत्रवादी । इन में भी उत्तर काल में छोटे-छोटे अन्य भेद होते चले गये ॥ ८७ ॥

यों मूल स्थविरवाद से ही आगे समय-समय पर एकादश (११) भेद हो गये । इन्हें बुद्धोक्त धर्मवचनों का स्वसम्मत... पूर्ववत् (गाथा-सं. ८२, ८३ की तरह) परिवर्तन कर लिये ॥ ८८-८९ ॥

यों, एक समय के अभिन्न (एकत्र=समग्र) वाद (स्थविरवाद) में से समय-समय पर पृथक् होते हुए, अन्त में सत्तरह (१७) वाद भिन्न हो ही गये । यह तो ऐसी ही बात हुई जैसे किसी विशाल वटवृक्ष में से यथासमय अट्ठारह शाखाएँ पृथक् रूप से निकल आयी हों फिर भी वह समग्र रूप से एक वटवृक्ष ही कहलाता हो । इसी तरह उस विशाल स्थविरवाद से ये सत्तरह (१७) वाद पृथक् हुए । फिर भी वह समग्ररूप से भिक्षुसङ्घ ही कहलाया ॥ ९० ॥

अनूनमधिकं चेव केवलं जिनसासनं ।
कण्टका विय रुक्खम्हि निब्बत्ता वादसेसका ॥ ९१ ॥

पठमे वस्ससते नत्थि, दुतिये वस्ससतन्तरे ।
भिन्ना सत्तरसवादा उप्पन्ना[1] जिनसासने ॥ ९२ ॥

[R.34] हेमवतिका राजिगिरिका सिद्धत्था पुब्बापरसेलिका ।
अपरो वाजिरिको[2] छट्ठा उप्पन्ना अपरापरा ॥ ९३ ॥

आचरियवंसभेदो निट्ठितो ॥
चतुत्थो परिच्छेदो निट्ठितो ॥

●

1. उप्पन्नो–इति पि कुहिञ्चि पाठो ।
2. राजगिरिको–इति पाठो रो. पोत्थके उपलब्भति ।

क्योंकि वे सभी अट्ठारह (१८) मतवादी भिक्षु प्रमाण तो बुद्धवचन को ही मानते थे। वे सङ्घ में वाद के आरोपक भिक्षु लोकव्यवहार में उसी तरह लगते हैं जैसे किसी वृक्ष में (जैसे गुलाब में) स्थान स्थान पर काँटे हो। (क्या काँटों के रहने से गुलाब के फूलों की महत्ता कम हो जाती है!) ॥ ९१ ॥

(संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि) भगवान् बुद्ध के महापरिनिर्वाण के बाद, पहले के सौ (१००) वर्षों में सङ्घ में कोई भिन्न (पृथक्) वाद नहीं था। परन्तु इस से आगे के सौ (१००) वर्षों में उस एक (समग्र) ही भिक्षुसङ्घ में सत्तरह (१७) भेद (वाद) उत्पन्न हो गये ॥ ९२ ॥

आगे चलकर (जम्बुद्वीप के) इसी भिक्षुसङ्घ में–१. हैमवतिक, २. राजगृहिक, ३. सिद्धार्थक, ४. पूर्वशैलीय, ५. अपरशैलीय एवं ६. बाजिरीय-ये भेद भी हो गये ॥ ९३ ॥

आचार्यवंशभेद-वर्णन समाप्त ॥

चतुर्थ परिच्छेद समाप्त ॥

(इस चतुर्थ परिच्छेद में वर्णित (१) प्रथम धर्मसंगीति के विषय में महावंस का तृतीय परिच्छेद, (२) द्वितीय धर्मसङ्गीति के विषय में महावंस का चतुर्थ परिच्छेद एवं (३) महासङ्गीति तथा (४) आचार्यवंश-भेद के लिये महावंस का पञ्चम परिच्छेद भी देखें। –अनु०)

५.

पञ्चमो परिच्छेदो

(विनयपरम्परा)

[S.27] अनागते वस्ससते वस्सानट्ठारसानि च ।
उप्पज्जिस्सति सो भिक्खु समणो पटिरूपको ॥ १ ॥

ब्रह्मलोका चवित्वान उप्पज्जिसति मानुसे ।
जच्चो ब्राह्मणगोत्तेन सब्बमन्तान पारगू ॥ २ ॥

तिस्सो ति नाम नामेन पुत्तो मोग्गलिसव्हयो ।
सिग्गवो चण्डवज्जी च पब्बाजेस्सन्ति दारकं ॥ ३ ॥

पब्बजितो तदा तिस्सो परियन्तिं च पापुणि ।
भिन्दित्वा तित्थियवादं पतिट्ठपेस्सति सासनं ॥ ४ ॥

पाटलिपुत्ते तदा राजा असोको नाम नायको ।
अनुसासति सो रज्जं धम्मिको रट्ठवड्ढनो* ॥ ५ ॥

ब्रह्मलोका चवित्वान उप्पन्नो मानुसे भवे ।
जातिया सोळसवस्सो सब्बमन्तान पारगु ॥ ६ ॥

पुच्छामि समणं पञ्हं इमे पञ्हे वियाकर ।
इरुवेदं यजुवेदं सामवेदं निघण्टु[1] पिटु[1] ।
इतिहासं[2] पञ्चमं वेदं[3] उग्गण्हि सो विसारदो[3] ॥ ७ ॥

---

* रो. पोत्थके अयं अधिको पाठो दिस्सति--
सब्बे सत्तसता भिक्खू अनुसासेत्वान् सासनं ।
दस वत्थूनि भिन्दित्वा थेरा ते परिनिब्बुता ॥

1-1 पि निघण्डुं --रो. ।
2. 0 च-रो. ।
3-3 रो.पोत्थके नत्थि ।

पञ्चम परिच्छेद

(विनय-परम्परा)

मोग्गलिपुत्त तिष्य का प्रादुर्भाव– भगवान् बुद्ध के महापरिनिर्वाण के तत्काल बाद प्रथम धर्मसङ्गीति हुई । उसके सौ (१००) वर्ष बाद द्वितीय धर्मसङ्गीति हुई । इस द्वितीय धर्मसङ्गीति के बाद, आगे अट्ठारह वर्ष अधिक एक सौ (११८) वर्ष बीतने पर वे अद्वितीय, अनुपम भिक्षु इस लोक में अवतरित होंगे ॥ १ ॥

ये ब्रह्मलोक से च्युत होकर, मनुष्यलोक में प्रादुर्भूत होंगे । ये जाति (जन्म) से ब्राह्मण तथा सभी मन्त्रों के ज्ञाता होंगे ॥ २ ॥

इनका नाम होगा तिष्य । तथा ये मोग्गलिपुत्र भी कहलायेंगे । सिङ्गव एवं चण्डवज्जी नामके ये दो भिक्षु इस बालक को प्रव्रज्या देंगे ॥ ३ ॥

तब यह तिष्य, प्रव्रजित होकर उस ब्रह्मचर्य (बुद्धधर्म) का अन्तिम सीमा (अर्हत्त्व-प्राप्ति) तक पालन करेगा । और अन्य ब्राह्मण-(तीर्थिक)-वादों का खण्डन करता हुआ शासन (स्थविरवाद) में सिथरता लायगा ॥ ४ ॥

महाराज अशोक– उस समय, पाटलिपुत्र नगर का 'अशोक' नामक राजा होगा, जो धर्मपूर्वक राज्य का शासन करेगा और अपने शुभकृत्यों से राष्ट्र की उन्नति करेगा ॥ ५ ॥

तिष्य की प्रवज्या– तिष्य ब्रह्मलोक से च्युत होकर इस मनुष्यलोक में अवतीर्ण हुए । वे भले ही आयु से सोलह (१६) वर्ष के ही थे, परन्तु वे सभी मन्त्रों (बुद्धवचनों) के ज्ञाता हो चुके थे ॥ ६ ॥

(उन्होंने सिग्गव स्थविर से कहा–) "मैं कुछ प्रश्न पूछना चाहता हूँ, कृपया उनका उत्तर देने का कष्ट करें" । स्थविर क्योंकि १. ऋग्वेद, २. यजुर्वेद, ३. सामवेद, ४. निघण्टु एवं ५. इतिहास, जो कि पञ्चम वेद कहलाता है–सभी कुछ पढ़ चुके थे, अतः वे विशारद (शास्त्रों में कुशल) थे ॥ ७ ॥

[S.28] थेरेन च कतोकासो पञ्हं पुच्छि अनन्तरं[1] ।
परिपक्कञाणं मन्त्वान[2] सिग्गवो एतदब्रवि ॥ ८ ॥

"अहं पि, माणव, पञ्हं पुच्छामि बुद्धदेसितं ।
यदि पि कुसलो पञ्हं ब्याकरोहि यथातथं" ॥ ९ ॥

भासितेन सह पञ्हे "न मे दिट्ठं न मे सुत्तं ।
परियापुणामि तं मन्तं पब्बज्जा मम रुच्चति" ॥ १० ॥

सम्बाधाय धरावासा निक्खमित्वान माणवो ।
अनगारियं सन्तिभावं पब्बज्जि जिनसासने ॥ ११ ॥

सिक्खाभावं[3] गरुचित्तं चण्डवज्जी[4] बहुस्सुतो ।
अनुसासित्थ सामणेरं नवङ्गं सत्थुसासनं ॥ १२ ॥

सिग्गवो नीहरित्वान पब्बज्जापेसि दारकं ।
सुसिक्खितं मन्तधरं चण्डवज्जी[4] बहुस्सुतो ।
नवङ्गं अनुसासेत्वा थेरा ते परिनिब्बुता ॥ ति ॥ १३ ॥

[R.39] चन्दगुत्तस्स द्वे वस्से चतुसट्ठि सिग्गवो तदा ।
अट्ठपञ्ञास वस्सानि पकुण्डकस्स राजिनो ।
उपसम्पन्नो मोग्गलिपुत्तो सिग्गवत्थेरसन्तिके ॥ १४ ॥

तिस्सो मोग्गलिपुत्तो च चण्डवज्जस्स सन्तिके ।
विनयं उग्गहेत्वान विमुत्तो पधिसङ्खये ॥ १५ ॥

सिग्गवो चण्डवज्जी च मोग्गलिपुत्तं महाजुतिं ।
वाचेसुं पिटकं सब्बं उभतो सङ्गहपुण्णकं ॥ १६ ॥

सिग्गवो ञाणसम्पन्नो मोग्गलिपुत्तं महाजुतिं ।
कत्वा विनयपामोक्खं निब्बुतो सो छसत्तति ॥ १७ ॥

---

1. अनन्तरो-रो.।
2. माणवं -रो.।
3. सिक्खाकामं--रो. ।
4. चण्डवज्जो- रो. एवमुपरि पि ।

स्थविर ने उस दारक तिष्य को प्रश्न पूछने की अनुमति दे दी । तिष्य द्वारा किये प्रश्नों की गम्भीरता समझ कर सिग्गव स्थविर समझ गये कि बालक शास्त्रीय ज्ञानसम्पन्न है । तब उन्होंने कहा– ॥ ८ ॥

"माणव! मैं भी तुमसे कुछ पूछना चाहता हूँ । यदि तुम कुशल (चतुर) हो तो मेरे इन प्रश्नों का यथार्थ उत्तर दो" ॥ ९ ॥

तब सिग्गव स्थविर द्वारा प्रश्न-कथन के साथ ही तिष्य दारक के मुख से निकल गया--"यह मन्त्र तो मैंने कभी-कहीं देखा-सुना ही नहीं । मैं इस मन्त्र को ग्रहण करना चाहता हूँ । भले ही इसके लिये मुझे आपसे प्रव्रज्या-दीक्षा ही क्यों न लेनी पड़े" ॥ १० ॥

गृहस्थ में सङ्कट (प्रपञ्च) देखकर, वह माणव गृहस्थ छोड़कर बेघर होकर, शान्तिभाव प्राप्त करने हेतु बुद्ध धर्म में प्रव्रजित हो गया ॥ ११ ॥

इस गम्भीरप्रज्ञ तिष्य को बहुश्रुत चण्डवज्जी स्थविर ने नवाङ्ग शासन (बुद्धवचन) का पूर्ण पारायण कराया ॥ १२ ॥

एवं सिग्गव स्थविर ने उस माणव को गार्हस्थ्य से निकाल कर प्रव्रज्या की दीक्षा दी । और बहुश्रुत चण्डवज्जी स्थविर ने उस सुशिक्षित मन्त्रधर को नवाङ्ग बुद्धवचन की पूर्ण शिक्षा दी । फिर वे दोनों स्थविर परिनिर्वृत हुए ॥ १३ ॥

चन्द्रगुप्त सम्राट् के दो वर्ष शासन करने के बाद सिग्गव स्थविर चौंसठ (६४) वर्ष की आयु के थे । तब प्रकुण्डक राजा के अट्ठावन (५८) वर्ष राज्य करने के बाद, मोग्गलिपुत्र तिष्य ने सिग्गव स्थविर से उपसम्पदा प्राप्त की थी ॥ १४ ॥

इन तिष्य मोग्गलिपुत्र ने चण्डवज्जी स्थविर से समग्र विनय का अध्ययन कर सांसारिक भ्रमजाल से मुक्ति प्राप्त की थी ॥ १५ ॥

सिग्गव एवं चण्डवज्जी– दोनों स्थविरों ने महान् तेजस्वी मोग्गलिपुत्र तिष्य को समग्र त्रिपिटक दो बार पूर्ण रूप से पढ़ाया था ॥ १६ ॥

यों वे ज्ञानी सिग्गव स्थविर उन महान् तेजस्वी मोग्गलिपुत्र तिष्य स्थविर को सङ्घ में विनय का प्रमुख बनाकर छिहत्तर (७६) वर्ष की आयु में परिनिर्वृत हुए ॥ १७ ॥

चन्दगुत्तो रज्जं कारेसि वस्सानि चतुवीसति ।
तस्मिं चुद्दसवस्सम्हि सिग्गवो परिनिब्बुतो ॥ १८ ॥

[S.29] आरञ्ञको धुतवादो अप्पिच्छो कानने रतो ।
सब्बसो सोरतो दन्तो सद्धम्मे पारमीगतो ॥ १९ ॥

पत्तसेनासने रम्मे ओगाहेत्वा महावनं ।
एको अदुतियो सूरो सीहो व गिरिव्हरे* ॥ २० ॥

धम्मासोकस्स[1] छवस्से छसट्ठि मोग्गलिपुत्तो अहू ।
अट्ठचत्तालीस वस्सानि मुटसीवस्स राजिनो ॥ २१ ॥

महिन्दो उपसम्पन्नो मोग्गलिपुत्तस्स सन्तिके ।
उग्गहेसि विनयं च उपालि बुद्धसन्तिके ॥ २२ ॥

[R.40] दासको विनयं सब्बं उपालिथेरसन्तिके ।
उग्गहेत्वान वाचेसि उपज्झायो व सासने ॥ २३ ॥

वाचेसि दासको थेरो विनयं सोणकस्स पि ।
परियापुणित्वा वाचेसि उपज्झायस्स सन्तिके ॥ २४ ॥

सोणको बुद्धिसम्पन्नो धम्मविनयकोविदो ।
वाचेसि विनयं सब्बं सिग्गवस्स अनुप्पदं ॥ २५ ॥

सिग्गवो चण्डवज्जो च सोणकसद्धिविहारिका ।
वाचेसि विनयं थेरो उभो सद्धिविहारिके ॥ २६ ॥

---

* एत्थ रो-पोत्थके अयं अधिक पाठो--
निब्बुते लोकनाथस्स वस्सानि सोळसं अहू ।
समसट्ठि तदा होति वस्सं उपालिपण्डितं ॥
अजातसत्तु चतुवीसं विजयस्स सोळसं अहू ।
दासको उपसम्पन्नो उपालिथेरसन्तिके ॥
चत्तालीसेयेव वस्सानि दासको नाम पण्डितो ।
नागदासे दसवस्से पकुण्डकस्स वीसति ॥
उपसम्पन्नो सोनको थेरो दासकसन्तिके ।
चत्तालीसवस्सो धीरो थेरो सोनकसह्वये ।
कालासोकस्स दसवस्से तम्बपण्णि–अन्तरावासे
वस्सं एकादसं भवे ।
सिग्गवो उपसम्पन्नो सोनकथेरसन्तिके ।
चन्दगुप्तस्स द्वे वस्से चतुसट्ठि सिग्गवो तदा ॥
अट्ठपञ्ञास वस्सानि पकुण्डकस्स राजिनो ।
उपसम्पन्नो मोग्गलिपुत्तो सिग्गवथेरसन्तिके ॥

1. अशोकधम्मस्स--रो. ।

जबकि सम्राट् चन्द्रगुप्त ने चौबीस (२४) वर्ष राज्य किया था । उस के शासन के चौदहवें (१४) वर्ष में सिग्गव का परिनिर्वाण हुआ था ॥ १८ ॥

ये स्थविर आरण्यक धुताङ्ग के अभ्यासी थे । अल्पेच्छ (सन्तोषी) एवं एकान्त-वासप्रिय थे । ये अत्यन्त नम्र, इन्द्रियनिग्रही एवं सद्धर्म के पूर्ण ज्ञाता थे ॥ १९ ॥

ये रम्य एवं एकान्त शयनासन से युक्त घोर (बीहड) जङ्गल में अकेले, किसी दूसरे के साथ नहीं, रहना ही स्वीकार करते थे; जैसे कोई सिंह किसी पर्वत की गुफा में एकाकी रहा करता है ॥ २० ॥

धर्माशोक सम्राट् के छह वर्ष राज्य-शासनकाल में मोग्गलिपुत्र तिष्य छयासठ (६६) वर्ष की आयु के हो गये थे । इधर (लङ्का में) मुटशिव राजा को राज्य करते हुए अड़तालीस (४८) वर्ष व्यतीत हुए थे ॥ २१ ॥

उस समय महेन्द्र मोग्गलिपुत्र तिष्य से उपसम्पन्न हुए थे ।

विनयपरम्परा– उपालि स्थविर ने समग्र विनय साक्षात् भगवान् बुद्ध से ही उद्गृहीत किया था ॥ २२ ॥

इसके बाद उपालि स्थविर के शिष्य दासक ने यह विनय अपने उपाध्याय उपालि स्थविर से अधिगृहीत किया ॥ २३ ॥

दासक स्थविर ने यह विनय सोणक स्थविर को भी उतना ही सब कुछ उद्गृहीत कराया जो उन्होंने अपने उपाध्याय से पढ़ा था ॥ २४ ॥

सोणक स्थविर भी बुद्धिमान् थे, धर्म एवं विनय के पूर्ण ज्ञाता थे । उन्होंने अपने शिष्य सिग्गव को समग्र विनय आनुपूर्वी पढ़ाया था ॥ २५ ॥

सिग्गव एवं चण्डवज्जी–ये दोनों इन्हीं सोणक स्थविर के सहविहारी (शिष्य) थे। इन दोनों ही शिष्यों को सोणक स्थविर ने विनय का वाचन (स्वाध्याय) कराया था ॥ २६ ॥

तिस्सो मोग्गलिपुत्तो च चण्डवज्जस्स सन्तिके ।
विनयं उग्गहेत्वान विमुत्तो उपधिसङ्खये ॥ २७ ॥

मोग्गलिपुत्तो उपज्झायो महिन्दं सद्धिविहारिकं ।
वाचेसि विनयं सब्बं थेरवादं अनूनकं ॥ २८ ॥

परिनिब्बुते सम्बुद्धे उपालिथेरो महाजुति ।
विनयं ताव वाचेसि तिंसवस्सं अनूनकं ॥ २९ ॥

सद्धिविहारिकं थेरं दासकं नाम पण्डितं ।
विनयट्ठाने ठपेत्वान निब्बुतो सो महामति ॥ ३० ॥

दासको सोणकं थेरं सद्धिविहारिं अनुप्पदं ।
कत्वा विनयपामोक्खं चतुसट्ठिम्हि निब्बुतो ॥ ३१ ॥

सोणको छळभिञ्ञाणो सिग्गवं अरियत्रजं ।
विनयट्ठाने ठपेत्वान छसट्ठिम्हि च निब्बुतो ॥ ३२ ॥

सिग्गवो ञाणसम्पन्नो मोग्गलिपुत्तं च दारकं ।
कत्वा विनयपामोक्खं निब्बुतो सो छसत्तति ॥ ३३ ॥

तिस्सो मोग्गलिपुत्तो च महिन्दं सद्धिविहारिकं ।
कत्वा विनयपामोक्खं छासीतिवस्सम्हि निब्बुतो ॥ ३४ ॥

चतुसत्तति उपालि च चतुसट्ठि च दासको ॥
छसट्ठि सोणको थेरो सिग्गवो तु छसत्तति ।
असीति मोग्गलिपुत्तो सब्बेसं उपसम्पदा ॥ ३५ ॥

सब्बकालम्हि पामोक्खो विनये उपालि पण्डितो ।
पञ्ञासं दासको थेरो चतुचत्तारीसं च सोणको ॥ ३६ ॥

पञ्च पञ्ञासवस्सं सिग्गवस्स अट्ठसट्ठि मोग्गलिपुत्तव्हयो ।
उदयो सोळस वस्सानि रज्जं कारेसि खत्तियो ॥ ३७ ॥

तिष्य मोग्गलिपुत्र ने इन्हीं चण्डवज्जी स्थविर से विनय का अध्ययन किया था। इस अध्ययन के बाद ही उनका चित्त भवबन्धन से मुक्त हुआ था ॥ २७ ॥

तथा इन मोग्गलिपुत्र तिष्य ने अपने शिष्य महेन्द्र को समग्र स्थविरवादी विनय का अध्ययन कराया था ॥ २८ ॥

भगवान् बुद्ध के महापरिनिर्वाण प्राप्त करने के बाद भी, महान् तेजस्वी उपालि स्थविर ने निरन्तर तीस (३0) वर्ष तक भिक्षुओं को विनय का स्वाध्याय कराया ॥ २९ ॥

एतदनन्तर, वे (उपालि स्थविर) अपने शिष्य दासक स्थविर को अपना स्थानापन्न बनाकर परिनिर्वृत हुए ॥ ३0 ॥

दासक स्थविर ने अपने शिष्य सोणक स्थविर को समग्र (आनुपूर्वी) विनय का अध्ययन कराकर चौसठ (६४) वर्ष की आयु में परिनिर्वाण प्राप्त किया ॥ ३१ ॥

सोणक स्थविर ने, जो कि छह अभिज्ञाओं से सम्पन्न हो चुके थे, एक श्रेष्ठ वंशज सिग्गव को अपना शिष्य बनाकर उसे सङ्घ में 'विनय-प्रमुख' के पद पर आसीन कर छयासठ (६६) वर्ष की आयु में परिनिर्वाण प्राप्त किया ॥ ३२ ॥

और इन ज्ञानी सिग्गव स्थविर ने मोग्गलिपुत्त तिष्य तरुण को अपना शिष्य बनाकर गुरुमुख से प्राप्त समग्र विनय का स्वाध्याय कराया । तब उन (सिग्गव) ने अपने स्थान पर तिष्य को सङ्घ में 'विनय-प्रधान' पद पर प्रतिष्ठित कर छिहत्तर (७६) वर्ष की आयु में परिनिर्वाण प्राप्त किया ॥ ३३ ॥

इसी तरह इन मोग्गलिपुत्त तिष्य ने भी अपने शिष्य महेन्द्र को विनय का स्वाध्याय कराकर, उसे 'विनय-प्रमुख' पद पर अधिष्ठित कर छयासी (८६) वर्ष की आयु में परिनिर्वाण प्राप्त किया ॥ ३४ ॥

यों, चौहत्तर (७४) वर्ष तक उपालि, चौसठ (६४) वर्ष तक दासक, छयासठ (६६) वर्ष तक सोणक, छिहत्तर (७६) वर्ष तक सिग्गव, एवं अस्सी (८0) वर्ष तक मोग्गलिपुत्र तिष्य भिक्षुसङ्घ में उपसम्पन्न रहे ॥ ३५ ॥

इनमें उपालि स्थविर अपने पूर्ण समय तक सङ्घ में विनय के प्रधान रहे । इनके बाद दासक स्थविर पचास (५0) वर्ष तक, सोणक स्थविर चवालीस (४४) वर्ष तक 'विनयप्रधान' रहे ॥ ३६ ॥

पचपन (५५) वर्ष तक सिग्गव, एवं अड़सठ (६८) वर्ष तक मोग्गलिपुत्र तिष्य 'विनयप्रमुख' रहे ॥ ३७ ॥

छवस्से उदयभद्दम्हि उपालिथेरो निब्बुतो ।
सुसुनागो दसवस्सं रज्जं कारेसि इस्सरो ॥ ३८ ॥

अट्ठवस्से सुसुनागम्हि दासको परिनिब्बुतो ।
[R.41] सुसुनागस्सच्चयेन होन्ति ते दस भातरो ॥ ३९ ॥

सब्बे बावीसति वस्सं रज्जं कारेसुं वंसतो ।
इमेसं छट्ठे वस्सानं सोणको परिनिब्बुतो ॥ ४० ॥

चन्दगुत्तो रज्जं कारेसि वस्सानि चतुवीसति ।
तस्मिं चुद्दसवस्सम्हि सिग्गवो परिनिब्बुतो ॥ ४१ ॥

बिन्दुसारस्स यो पुत्तो धम्मासोको [1] महायसो ।
वस्सानि सत्ततिंसं पि रज्जं कारेसि खत्तियो ॥ ४२ ॥

असोकस्स छवीसति वस्से मोग्गलिपुत्तसव्हयो ।
सासनं जोतयित्वान निब्बुतो आयुसङ्खये ॥ ४३ ॥

चतुसत्ततिवस्सम्हि थेरो उपालिपण्डितो ।
सद्धिविहारिकं थेरं दासकं नाम पण्डितं ॥ ४४ ॥

विनयट्ठाने ठपेत्वान निब्बुतो सो महागणी ।
दासको सोणकं थेरं सद्धिविहारिं अनुप्पदं ॥ ४५ ॥

कत्वा विनयपामोक्खं चतुसट्ठिम्हि निब्बुतो ।
सोणको छळभिञ्ञाणो सिग्गवं अरियत्रजं ॥ ४६ ॥

1. असोकधम्मो--रो. ।

(राजा अजातशत्रु के बाद) राजा उदय ने सोलह (१६) वर्ष तक राज्य किया। इस राजा उदय के शासन के छठे वर्ष में उपालि स्थविर परिनिर्वृत हुए ॥ ३७ ॥

फिर शिशुनाग ने राजा बनकर दस (१०) वर्ष तक राज्य किया ॥ ३८ ॥

इस शिशुनाग के शासनकाल में आठवें वर्ष दासक स्थविर परिनिर्वृत हुए । शिशुनाग के देहावसान के बाद, वे दश भाई क्रमशः राजा बने ॥ ३९ ॥

इन्होंने सब मिलाकर क्रमशः बाईस (२२) वर्ष तक राज्य किया । इनके राज्यकाल में छठे वर्ष सोणक स्थविर परिनिर्वृत हुए ॥ ४० ॥

सम्राट् चन्द्रगुप्त ने चौबीस (२४) वर्ष राज्य किया । इसके शासन के चौदहवें वर्ष में सिग्गव स्थविर परिनिर्वृत हुए ॥ ४१ ॥

राजा बिन्दुसार के पुत्र हुए महान् यशस्वी धर्माशोक । इन्होंने सैतीस (३७) वर्ष तक राज्य किया ॥ ४२ ॥

इस अशोक के राज्यकाल में छब्बीसवें वर्ष मोग्गलिपुत्र तिष्य, शासन को समृद्ध करते हुए, आयुःसमाप्ति के कारण परिनिवृत हो गये ॥ ४३ ॥

विद्वान् महामण्डलीश्वर उपालि स्थविर चौहत्तरवें (७४) वर्ष में अपने शिष्य पण्डित दासक स्थविर को ॥ ४४ ॥

'विनयप्रमुख' पद पर प्रतिष्ठित कर परिनिर्वृत हुए । दासक स्थविर ने अपने शिष्य सोणक स्थविर को, आनुपूर्वी विनय का अध्ययन कराकर सङ्घ का 'विनय-प्रधान' बनाया ॥ ४५ ॥

तथा ये चौसठवें (६४) वर्ष में परिनिर्वृत हो गये । इसी प्रकार षडभिज्ञ सोणक स्थविर ने श्रेष्ठ वंशज अपने शिष्य सिग्गव को ॥ ४६ ॥

विनयट्ठाने ठपेत्वान छसट्ठिम्हि परिनिब्बुतो ।
सिग्गवो ञाणसम्पन्नो मोग्गलिपुत्तं च दारकं ।
कत्वा विनयपामोक्खं निब्बुतो सो छसत्तति ॥ ४७ ॥

तिस्सो मोग्गलिपुत्तो सो महिन्दं सद्धिविहारिकं ।
कत्वा विनयपामोक्खं असीतिवस्सम्हि निब्बुतो ॥ ४८ ॥

वियनपरम्परा निट्ठिता ॥
पञ्चमो परिच्छेदो निट्ठितो ॥
पञ्चमो भाणवारो निट्ठितो ॥

●

विनयप्रमुख पद पर प्रतिष्ठित कर साठवें (६0) वर्ष परिनिर्वाण प्राप्त किया। तथा इन ज्ञानी सिग्गव स्थविर ने अपने तरुण शिष्य मोग्गलिपुत्र तिष्य को विनयप्रमुख पद पर प्रतिष्ठित कर छियत्तर (७६) वर्ष में परिनिर्वाण प्राप्त किया ॥ ४७ ॥

इसी तरह, ये मोग्गलिपुत्र तिष्य स्थविर भी अपने सहविहारी (शिष्य) महेन्द्र को सङ्घ के विनयप्रमुख पद पर प्रतिष्ठित कर अस्सी (८0) वर्ष की आयु में परिनिर्वृत हो गये ॥ ४८ ॥

विनयपरम्परा-वर्णन समाप्त ॥
पञ्चम परिच्छेद समाप्त ॥
पञ्चम भाणवार भी समाप्त ॥

(इस कथा का अधिक विस्तार जानने के लिये 'महावंस' का पञ्चम परिच्छेद भी देखें–अनु. ।।)

●

६.

छट्ठो परिच्छेदो

(धम्मासोको)

द्वे सतानि च वस्सानि अट्ठारसाधिकानि च ।
सम्बुद्धे परिनिब्बुते अभिसित्तो पियदस्सनो ।। १ ।।

आगता राजइद्धियो अभिसित्ते पियदस्सने ।
फरति पुञ्ञतेजं च उद्धं अधो च योजनं ।। २ ।।

जम्बुदीपे महारज्जे बलचक्के पवत्तति[1] ।
अनोतत्तो दहो नाम[2] हिमवा पब्बतमुद्धनि ।। ३ ।।

सब्बोसधेन संयुत्ता सोळसमपि कुम्भियो ।
तदा देवसिकं निच्चं देवा अभिहरन्ति ते ।। ४ ।।

[R. 42] नागलतादन्तकट्ठं सुगन्धं पब्बतेय्यकं ।
मुदुसिनिद्धं मधुरं रसवन्तं मनोरमं ।
तदा देवसिकं निच्चं देवताभिहरन्ति ते ।। ५ ।।

आमलकं ओसधं च सुगन्धं पब्बतेय्यकं ।
मुदु सिनिद्धं रसवन्तं महाभूतेहुपट्ठितं ।
तदा देवसिकं निच्चं देवताभिहरन्ति ते ।। ६ ।।

दिब्बपानं दिब्बपक्कञ्च [3] रसवन्तं सुगन्धकं ।
तदा देवसिकं निच्चं देवताभिहरन्ति ते ।। ७ ।।

---

1. पवत्तति वसो--सी.।
2. रो. पोत्थके नत्थि ।
3. अम्बपक्कं च--रो. ।

षष्ठ परिच्छेद

(सम्राट् धर्माशोक)

भगवान् बुद्ध के महापरिनिर्वाण के दो सौ अट्ठारह (२१८) वर्ष बाद, प्रियदर्शी अशोक राज्यसिंहासन पर अभिषिक्त (आरूढ) हुए ॥ १ ॥

अशोक की विशिष्ट शक्तियाँ– इस अशोक प्रियदर्शी के राज्याभिषिक्त होते ही, सभी राज्यशक्तियाँ इसको अनायास उपलब्ध हो गयीं । तथा इसका पुण्यप्रताप समग्र पृथ्वी पर ऊपर-नीचे एक एक योजन ꠸ फैल गया ॥ २ ॥

समग्र जम्बुद्वीप पर इसके सैनिक शासन का नियन्त्रण हो जाने के बाद, हिमालय के शिखर पर स्थित अनवतप्त दह (मानसरोवर) से ॥ ३ ॥

कुछ देवता लोग सोलह (१६) कुम्भी जल, जिसमें सभी जीवनदायी ओषधियों का रस सम्पृक्त रहता था, नित्य (प्रतिदिन) लाने लगे ॥ ४ ॥

इसी तरह अन्य देवता लोग पर्वतस्थित, सुगन्धित, मृदु, श्लक्ष्ण (चिकना), मधुररससम्पन्न, रसयुक्त, देखने में सुन्दर, नागलता का दन्तकाष्ठ (दतुअन) नित्य प्रति लाने लगे ॥ ५ ॥

इसी तरह, अन्य महाप्राणों द्वारा लाया गया औषधमय, सुगन्धित, पर्वतों में उत्पन्न, मृदु, स्निग्ध, रसयुक्त, आमलक (आँवले) देवतागण उसके प्रासाद में प्रतिदिन पहुँचाते थे ॥ ६ ॥

इसी तरह, देवतालोग दिव्य पान एवं दिव्य खाद्य-भोज्य पदार्थ, जो कि रसमय एवं दिव्य सुगन्धयुक्त होता था, प्रतिदिन उसके प्रासाद में लाते थे ॥ ७ ॥

छद्दन्तदहा[1] पञ्चवण्णं पापुरणनिवासनं ।
तदा देवसिकं निच्चं देवताभिहरन्ति ते ॥ ८ ॥

सीसनहानगन्धचुण्णं तथा चानुविलेपनं ।
मुदुकं पारुपत्थाय[2] सुमनदुस्सं असुत्तकं ॥ ९ ॥

महारहं अञ्जनं च सब्बं तं नागलोकतो ।
तदा देवसिकं निच्चं नागराजा हरन्ति ते ॥ १० ॥

उच्छुयट्ठिं पूगमन्तं पीतकं हत्थपुञ्छनं ।
तदा देवसिकं निच्चं देवताभिहरन्ति ते ॥ ११ ॥

नव वाहसहस्सानि सुवा हरन्ति सालियो ।
ते[3] साली नित्थुसकणे[3] उन्दूरेहि विसोधिता ॥
मक्खिका मधुकं करुं अच्छा कूटम्हि कोटयुं ॥ १२ ॥

[S.32] सकुणा सुवग्गजाता करवीका मधुरस्सरा ।
असोकपुञ्जतेजेन सदा सावेन्ति मानुसे ॥ १३ ॥

कप्पायुको महानागो चतुबुद्धपरिचारको ।
सुवण्णसङ्खलिकाबद्धो पुञ्जतेजेन आगतो ॥ १४ ॥

पूजेसि रत्तमालेहि पियदस्सी महायसो ।
विपाको पिण्डपातस्स पटिलद्धो सुदस्सनो ॥ १५ ॥

चन्दंगुत्तस्सायं नत्ता बिन्दुसारस्स अत्रजो ।
राजपुत्तो तदा आसि उज्जेनिकरमोलिनो ॥ १६ ॥

1-1 छन्द दहतो व –रो. ।
2. पारुपत्ताय–रो. ।
3-3 रो. नत्थि ।

इसी प्रकार, छद्दन्तदह से पाँच रङ्गों वाला परिधान (पहनने का) वस्त्र भी देवतालोग प्रतिदिन उसके यहाँ पहुँचाते थे ॥ ८ ॥

तथा स्नान करते समय शिर तथा शरीर में लगाने का गन्धमय चूर्ण और उबटन (अनुविलेपन); एवं पहनने के लिये कोमल फूलों से बने अत एव सूत्रविहीन वस्त्र भी ये देवता लोग उस राजा के लिये प्रतिदिन लाते थे ॥ ९ ॥

इसी तरह, नागराजा नागलोक से उसके लिये महार्घ अञ्जन अत्यधिक मात्रा में पहुँचाते थे ॥ १० ॥

इसी प्रकार, कुछ देवताओं का दैनिक कृत्य था– ईंख की पौरियाँ, सुपारी, एवं पीले रंग का हाथ पोंछने का वस्त्र (रुमाल) उसके यहाँ प्रतिदिन पहुँचाना ॥ ११ ॥

इसी तरह उसके भोजनालय के लिये, सूअे (शुक पक्षी) नौ हजार (९000) वाह (मापविशेष) का शालिधान (चावल) प्रतिदिन एकत्र करते थे जो कि तुष और कण (खुद्दी) से रहित होता था, और चूहों (उन्दुर=मूषक) द्वारा साफ किया जाता था। मधुमक्खियाँ उसके लिये प्रतिदिन मधु का संग्रह करती थीं। एवं भालू (रींछ) उसके कारखानों में हथौड़ा चलाने का कार्य करते थे ॥ १२ ॥

इसी तरह मधुर स्वर वाले एवं अच्छी जाति के कोयल पक्षी (करवीक) उस राजा के पुण्य प्रभाव से मधुर स्वर वाले मनुष्यों की वाणी में माङ्गलिक शब्द बोलते-सुनाते रहते थे ॥ १३ ॥

इसी तरह, कल्पपर्यन्त आयुवाला, अतएव अतीत काल के चार बुद्धों का साक्षात् दर्शन किया हुआ महानाग भी सोने जंजीर (शृङ्खला) से बन्धा हुआ, अशोक के पुण्य प्रताप से कभी वहाँ (उसके प्रासाद में) आया ॥ १४ ॥

उस महायशस्वी, प्रियदर्शी एवं सुदर्शन राजा ने उस महानाग की लाल माला-पुष्पों से पूजा की। उसे उस पूजा का फल यह मिला कि उसका भोजनगृह सदा अक्षय (अटूट) रहने लगा ॥ १५ ॥

अशोक की सन्ततियाँ– चन्द्रगुप्त के नाती (पौत्र) एवं बिन्दुसार के पुत्र अशोक जब राजपुत्र ही थे, तब पिता ने उनको उज्जयिनी नगरी का शासक बना दिया था ॥ १६ ॥

अनुपुब्बेन गच्छन्तो वेदिस्सनगरं गतो।
तत्रापि च सेट्ठिधीता 'देवी' नामा ति विस्सुता।
तस्स संवासमन्वाय अजायि पुत्तमुत्तमं ॥ १७ ॥

महिन्दो सङ्घमित्ता च पब्बज्जं समरोचयुं।
[R.43] उभो पि पब्बजित्वान भिन्दिंसु भवबन्धनं ॥ १८ ॥

असोको रज्जं कारेसि पाटलिपुत्ते पुरुत्तमे।
अभिसित्तो तीणि वस्सानि पसन्नो बुद्धसासने ॥ १९ ॥

यदा च परिनिब्बायि सम्बुद्धो उपवत्तने।
यदा च महिन्दो जातो मोरियकुलसम्भवो।
एत्थन्तरे यं गणितं वस्सं भवति कित्तकं ? ॥ २० ॥

द्वे वस्ससतानि होन्ति चतुवस्सं पनुत्तरि।
समन्तरम्हि सो जातो महिन्दो असोकत्रजो ॥ २१ ॥

महिन्ददसवस्सम्हि पिता भाते अघातयि।
जम्बुदीपं नुसासन्तो चतुवस्सं अतिक्कमि ॥ २२ ॥

हन्त्वा एकसते भाते वंसं कत्वान एकतो।
महिन्दचुद्दसमे वस्से असोकं अभिसिञ्चयुं ॥ २३ ॥

असोकधम्मो भिसित्तो पटिलद्धा च इद्धियो।
महातेजो पुञ्ञवन्तो दीपेकचक्कवत्ति सो ॥ २४ ॥

परिपुण्णवीसवस्सम्हि पियदस्साभिसिञ्चयुं।
पासण्डं परिगण्हन्तो तीणि वस्सं अतिक्कमि ॥ २५ ॥

द्वासट्ठि दिट्ठिगतिका पासण्डा छन्नवुत्तिका।
सस्सत-उच्छेदमूला सब्बे द्वीहि पतिट्ठिता ॥ २६ ॥

क्रमशः वहाँ जाते हुए इस अशोक ने (मार्ग में) विदिशा नगरी में विश्राम (पड़ाव) किया। उसी समय वहाँ के एक प्रमुख श्रेष्ठी की 'देवी' नाम की लड़की से उसका प्रेम हो गया। उससे संवास होने पर उसको यथासमय दो सन्तानें हुई ॥ १७ ॥

एक पुत्र, जिसका नाम हुआ, **महेन्द्र** एवं एक पुत्री, जिसका नाम हुआ **सङ्घमित्रा**। उन दोनों ने ही अन्त में (यथासमय) प्रव्रज्या में अपनी अभिरुचि दिखायी। और दोनों ही प्रव्रजित होकर सांसारिक बंन्धनों से मुक्ति पा गये ॥ १८ ॥

अन्त में अशोक पाटलिपुत्र के राजसिंहासन पर अभिषिक्त हुआ। उसे राज्य करते हुए तीन वर्ष बीत चुके थे, इसके बाद उसे बुद्ध-धर्म के प्रति श्रद्धा हुई ॥ १९ ॥

महेन्द्र की उत्पत्ति का काल-निर्धारण– अब यहाँ प्रश्न उठता है कि जिस समय भगवान् बुद्ध मल्लों के शालवन में परिनिर्वृत हुए और जब महेन्द्र का मौर्य वंश में जन्म हुआ– इन दोनों के कालक्रम में कितना अन्तर था? ॥ २० ॥

भगवान् बुद्ध के महापरिनिर्वाण के बाद दो सौ चार (२०४) वर्ष बीते थे कि अशोक के पुत्र महेन्द्र का जन्म हुआ ॥ २१ ॥

महेन्द्र को उत्पन्न हुए दश वर्ष बीत चुके थे जब इस के पिता अशोक ने अपने सभी भाईयों की हत्या कर राज्य-सिंहासनारूढ़ होकर चार वर्ष बिताये ॥ २२ ॥

यों, अपने एक सौ भाइयों की हत्या कर राजवंश का एकमात्र उत्तराधिकारी बनकर अशोक ने अपना राज्याभिषेक कराया। उस समय महेन्द्र चौदह (१४) वर्ष का हुआ था ॥ २३ ॥

यों यह महान् तेजस्वी, पुण्यवान्, समग्र द्वीप का एकच्छत्र चक्रवर्ती राजा धर्माशोक राज्याभिषिक्त होते ही अनेक प्रकार की ऋद्धियों से सम्पन्न हो गया ॥ २४ ॥

जब बीस वर्ष पूर्ण हुए (?) इस राजा प्रियदर्शी का अभिषेक हुआ। राजा ने पाषण्डियों का मत स्वीकार कर तीन वर्ष बिताये ॥ २५ ॥

राजा द्वारा तीर्थिकों के धर्म की मीमांसा– उस समय समाज में बासठ (६२) दृष्टिवादी मतों के अनुयायी पाषण्डी भी थे, दो भागों में विभक्त अन्य छयानवे (९६) पाषण्डवादी भी थे जो या तो शाश्वतवादी थे या उच्छेदवादी ॥ २६ ॥

निगण्ठा चेलका चेति इतरा परिब्बाजका।
इतरा ब्राह्मणा ति च अञ्ञे च पुथुलद्धिका ॥ २७ ॥

[S. 33] नीयन्ति सस्सतुच्छेदे सम्मूळहे हीनदिट्ठिके ।
इतो बहिद्धा पासण्डे तित्थिये नानादिट्ठिके ॥ २८ ॥

सारासारं गवेसन्तो पुथुलद्धी निमन्तयि ।
तित्थिगणे निमन्तित्वा पवेसेत्वा निवेसनं ।
महादानं पदत्वान पञ्हं पुच्छि अनुत्तरं ॥ २९ ॥

पञ्हं पुट्ठा न सक्कोन्ति विस्सज्जेतुं सका बला ।
अम्बं पुट्ठा[1] लबुजं[2] वा ब्याकरिंसु अपञ्ञका ॥ ३० ॥

अणुमत्तं पि सब्बेसं अलं ते पुन देसनं ।
भिन्दित्वा सब्बपासण्डे[3] हरित्वा पुथुलद्धिके ॥ ३१ ॥

[R. 44] इति राजा विचिन्तेसि--"अञ्ञे पि के लभामसे ।
ये लोके अरहन्तो च अरहत्तमग्गं च पस्सन्ति? ॥ ३२ ॥

संविज्जन्ति इमे लोके नयिमं लोकं असुञ्ञतं ।
कदाहं सप्पुरिसानं दस्सनं उपसङ्कमे? ॥ ३३ ॥

तस्स सुभासितं सुत्वा रज्जं देमि सजीवितं" ।
इति राजा विचिन्तेन्तो दक्खिणेय्यं न पस्सति ॥ ३४ ॥

निच्चं गवेसति राजा सीलवन्ते सुपेसले ।
चङ्कमं तम्हि पासादे पेक्खमानो बहुज्जने ।
रथिया पिण्डाय चरन्तं निग्रोधं समणमद्दस ॥ ३५ ॥

---

1. पुट्ठं–रो. ।
2. लबुजं–रो. ।
3. –पासण्डं–रो. ।

कुछ निगण्ठ (जैन मतानुयायी) थे तो कुछ अचेलक (निर्वस्त्र, नग्न) थे । कुछ परिव्राजक थे तो कुछ कर्मकाण्डी ब्राह्मण । इनसे अतिरिक्त साधारण बुद्धि वाले, जो सरलता से समझाये (बहकाये) जा सकें, संन्यासी भी बहुत अधिक संख्या में मिलते थे ॥ २७ ॥

इन हीनदृष्टिवालों में कुछ कभी शाश्वतवाद की तरफ तो कभी उच्छेदवाद की तरफ झुके रहते थे । इनके अतिरिक्त ऐसे लोग नाना दृष्टि (मत) वाले तीर्थिक पाषण्डियों की तरफ ही झुके हुए बहुलता से मिलते थे ॥ २८ ॥

राजा अशोक ने इन बहुलता से उपलब्ध कुछ पाषण्डियों व तीर्थिकों को अपने प्रासाद में बुलाकर, भवन में बैठाकर, उन्हें भोजन कराकर उनके वादों (मतों) के विषय में सूक्ष्म एवं गहनतम प्रश्न किये, जिनका वे तीर्थिक कोई उत्तर नहीं दे पाये ॥ २९ ॥

राजा द्वारा प्रश्न पूछे जाने पर वे अपनी बुद्धि से कुछ भी उचित उत्तर न दे पाये । अपितु वे निर्बुद्धि 'आम' के विषय में पूछने पर 'कटहल' उत्तर देने लगते! धर्मोपदेश करना तो वे अणुमात्र भी नहीं जानते थे । अतः राजा ने उन सभी पाषण्डियों को अपने प्रासाद से निकाल बाहर किया ॥ ३०-३१ ॥

उन सबको बाहर निकाल कर राजा ने सोचा– "अब हमें ऐसे श्रमण कहाँ मिलें जो ज्ञानी हों, जिन्होंने ज्ञानमार्ग को साक्षात् देख लिया हो! ॥ ३२ ॥

"जो इस लोक की निःसारता को देखकर इस संसार-चक्र में फंसने के लिये उत्साह नहीं दिखाते– ऐसे सत्पुरुषों का दर्शन कब कर पाऊँगा! ॥ ३३ ॥

"उन का सदुपदेश सुनकर उसके बदले में मैं अपना समग्र राज्य उन्हें समर्पित कर दूँगा" । राजा यों सोचता हुआ भी, इस दान के योग्य किसी को भी कहीं नहीं देख पाया ॥ ३४ ॥

न्यग्रोध श्रमण– फिर भी राजा ऐसे शीलवान्, सन्मार्गगामी श्रमण को खोजने के लिये अपने राजप्रासाद के बरामदे या छत पर घूमते हुए राजमार्ग पर आते-जाते बहुत लोगों पर निरन्तर दृष्टि रखता था । एक दिन राजा ने सड़क (रथ्या) पर भिक्षा के लिये जाते हुए न्यग्रोध श्रमण को देखा ॥ ३५ ॥

पासादिकं अभिक्कन्तं पटिक्कन्तं विलोकितं ।
उक्खित्तचक्खुसम्पन्नं अरहन्तं सन्तमानसं ॥ ३६ ॥

उत्तमदमथप्पत्तं दन्तं गुत्तं सुरक्खितं ।
कुलगणे असंसट्ठं नभे चन्दं व निम्मलं ॥ ३७ ॥

केसरिं व असन्तासं अग्गिक्खन्धं व तेजितं ।
गरुं दुरासदं धीरं सन्तचित्तं समाहितं ॥ ३८ ॥

खीणासवं सब्बकिलेससोधितं पुरिसुत्तमं ।
चारुविहारसम्पन्नं सम्पस्सि[1] समणुत्तमं ॥ ३९ ॥

सब्बगुणागतं[2] निग्रोधं पुब्बसहायं विचिन्तयि ।
पुब्बे सुचिण्णकुसलं अरियमग्गफले ठितं ।
रथिया पिण्डा चरन्तं[3] पस्सित्वा यो विचिन्तयि[3]॥ ४० ॥

बुद्धो लोके अरहा जिनसावको[4] ,
लोकुत्तरे मग्गफले पतिट्ठितो[5] ।
मोक्खं च निब्बानगतो असंसयं,
अञ्ञतरो एस थेरो गरुत्तमो[6]" ॥ ४१ ॥

सो पञ्चपीतिपसादं पटिलभि,
उळारं पामोज्जमनप्पसादितो ।
निधिं व लद्धा अधनो पमोदितो,
इद्धो मनोइच्छितं व सक्कोपमो ॥ ४२ ॥

---

1. सम्पस्स–रो. ।
2. सब्बगुगणतं–रो. ।
3-3 मुनिं मोनेय्यवुस्सति । जिगिंसमानो स धीरो चिन्तयि ।।–रो. ।
4. च–रो. ।
5. सावको–रो. ।
6. ठितो–रो. ।

उस का रूप श्रद्धोत्पादक एवं तेजस्वी था, उस का पदक्रमण, उस का मार्ग में अवलोकन, आँखें खुली रखते हुए भी उन्हें एक सीमा तक ही देखने के लिये प्रेरित करना, उसका ज्ञान, उसका शान्त चित्त ॥ ३६ ॥

उत्तम इन्द्रियनिग्रह से युक्त, दान्त, गुप्त, सुरक्षित, कुललक्षणों से असंसृष्ट (रहित या गृहस्थों से असम्पृक्त), ऐसा लग रहा था मानो आकाश में निर्मल चन्द्रमा शोभित हो रहा हो ॥ ३७ ॥

वह मार्ग में चलता हुआ सिंह की तरह निर्भीक, अग्निज्वाला की तरह तेजस्वी, गौरवयुक्त, कठिनाई से पकड़ में आने योग्य, धैर्यवान्, शान्तचित्त, एवं स्थिरबुद्धि लग रहा था ॥ ३८ ॥

वह श्रमण क्षीणास्रव (निर्विकार), सर्वक्लेशरहित (सुखी) पुरुषोत्तम, चारों ब्रह्मविहार समाधियों से सम्पन्न दिखायी दे रहा था ॥ ३९ ॥

ऐसे सर्वगुणसम्पन्न उस न्यग्रोध भिक्षु को राजा स्नेहवश अपने पूर्व जन्म का कोई साथी समझने लगा। पूर्व जन्मों में पुण्यकर्म-फलों का संग्राहक, आर्य मार्ग फल में प्रतिष्ठित, सड़क पर जाते हुए इस भिक्षु को देखकर उस राजा ने सोचा— ॥ ४0 ॥

"ज्ञानी, अर्हत्, लोकोत्तर मार्गफल में प्रतिष्ठित, मोक्ष तथा निर्वाण की प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील यह बुद्ध का कोई शिष्य महान् स्थविर होकर लोक में विचरण कर रहा है" ॥ ४१ ॥

वह राजा, यह सोचकर, उस स्थविर के प्रति प्रीति आदि पाँच गुणों से सम्पन्न हुआ एवं उसने स्वचित्त को अत्यधिक प्रमोद एवं हर्ष से ऐसे युक्त कर लिया जैसे किसी निर्धन को गड़ा हुआ खजाना मिल गया हो या इन्द्र की तरह मनोवाञ्छित फल प्राप्त हो गया हो ॥ ४२ ॥

[R. 45] आमन्तयी अञ्ञतरेकमच्चं,
"हन्द भिक्खन्तं तरमानरूपं ।
नयेहि पासादिकं सन्तवुत्तिं,
नागो व यन्तं रथिया कुमारं " *॥ ४३ ॥

राजा पसादविपुलं पटिलभि ,
उदग्गहट्ठो मनसा भिचिन्तयि,
"निस्संसयं खो[1] उत्तमधम्मपत्तो,
अदिट्ठपुब्बो अयं पुरिसुत्तमो" ॥ ४४ ॥

वीमंसमानो पुनदेवमब्रवी ,
"सुपञ्ञत्तं आसनमेत्थ सन्थतं[2] ।
निसीदसि, पबजित,[3] त्वमासने[3] ।
मया अनुञ्ञातं तया[4] भिपत्थितं" ॥ ४५ ॥

आदाय रञ्ञो वचनं पदक्खिणं ,
हत्थे[5] गहेत्वा अभिरुय्ह आसनं[6] ।
निसीदि पल्लङ्कवरे असन्तासो ,
सक्को व देवराजा पण्डुकम्बले ॥ ४६ ॥

विचिन्तयि राजा--"यमग्गदारको,
निच्चलो असन्तासि च अत्थि" नु तं ॥
दिस्वा राजा तं तरुणं कुमारकं,
अरियवत्तपरिहारकं वरं ॥ ४७ ॥

सुसिक्खितं धम्मविनयकोविदं,
[7]असन्तासं सन्तगुणाधिवासित्तं[7] ।
सुपारुताकप्पधरं जिनत्रजं ,
पसन्नचित्तो पुनदेवमब्रवी ॥ ४८ ॥

---

* असन्तासं सन्तगुणाधिवासितं ।–रो. अधिकपाठो ।
1. रो. नत्थि ।
2. पत्थतं--रो.
3.3 पब्बजितत्थं, आसने–रो. ।
4. तस्सा--रो. ।
5. रो. न दिस्सति ।
6. आसने--रो. ।
7.7 दिस्वा राजा तरुणं कुमारकं--रो.

तब राजा ने तत्काल किसी अधिकारी को बुलाया और आदेश दिया--"अरे, देखो! नीचे सड़क पर भिक्षा के लिये शीघ्रता से जा रहे उस भिक्षु को सम्मान-पूर्वक यहाँ ले आओ जो शान्तवृत्ति है एवं जिसकी दृष्टि जनहित में कृपापूर्ण है तथा जिसकी गति हाथी की तरह गम्भीर है" ॥ ४३ ॥

राजा इस के बाद इस श्रमण के प्रति अत्यधिक श्रद्धालु हो गया । यों उसने प्रसन्न एवं प्रहृष्टचित्त होकर उस श्रमण के विषय में पुनः यह सोचा– "यह श्रेष्ठ पुरुष अवश्य ही किसी उत्तम धर्म को अधिगत कर चुका है, जिसकी साधारण जन कल्पना भी नहीं कर पाते" ॥ ४४ ॥

यों उस श्रमण के विषय में मीमांसा करते हुए, राजा ने (श्रमण के आने पर श्रमण से) कहा-- "भो प्रव्रजित! यह आसन सुव्यवस्थित रूप से बिछा हुआ है । आप, चाहें तो, इस आसन पर विराजें । यह आसन मेरी आज्ञा से आपके लिये ही बिछाया गया है" ॥ ४५ ॥

राजा की बात मानकर उस श्रमण ने राजा के दाहिने हाथ का सहारा लेकर, वह आसन ग्रहण किया । वे उस आसन पर विराजमान होकर ऐसे ही शोभित हुए मानो साक्षात् इन्द्र अपने पाण्डुकम्बल शिला-आसन पर विराजे हों ॥ ४६ ॥

इस तरह (विराजमान उस श्रमण को देखकर) राजा ने सोचा--"यह तरुण भिक्षु अवश्य ही श्रेष्ठ है, निश्चल एवं निर्भीक है ।" उसे देखकर राजा ने उस तरुण भिक्षु को कोई आर्य (श्रेष्ठ) व्रत का उत्तम धारक मान लिया ॥ ४७ ॥

उस (राजा) ने उस (श्रमण) के विषय में अपने मन में यह धारणा बना ली– "यह अवश्य सुशिक्षित है, धर्म और उसके अनुशासन (विनय) का जाननेवाला है, निर्भीक है, शान्त (या सन्त=श्रमण के) गुणों से सम्पन्न है, शरीर को सम्यक् प्रकार से ढके हुए है, श्रमणोचित आवश्यक नियमों का पालन करने वाला है, किसी उत्तम शास्ता का शिष्य है ।" यों उसके विषय में प्रसन्नचित्त होकर राजा ने फिर कहा– ॥ ४८ ॥

[S.35] "देसेहि धम्मं तव सिक्खितं मम ,
त्वमेव सत्था, अनुसासितं तया ।
करोमि तुय्हं वचनं, महामुनि !
अनुसासतु[1] देसनं[2] मं, सुणोम"[2] ॥ ४९ ॥

सुत्वान रञ्ञो वचनं सुतेजितं,
नवङ्गसत्थे पटिसम्भिधट्ठितो[3] ।
[R. 46] विलोकयी तेपिटकं महारहं,
तमद्दस अप्पमादसुदेसनं ॥ ५० ॥

"अप्पमादो अमतपदं पमादो मच्चुनो पदं ।
अप्पमत्ता न मीयन्ति ये पमत्ता यथा मता" ॥ ५१ ॥

निग्रोधधीरं अनुमोदयन्तं,
राजा विजानीय तमग्गहेतुं ।
ये केचि सब्बञ्ञू बुद्धदेसिता,
सब्बेसं धम्मानं इमस्स मूलका ॥ ५२ ॥

"अज्जेव तुम्हे सरणं उपेमि,
बुद्धं च धम्मं च सरणं च सङ्घं ।
सपुत्तदारो सहञातकज्जनो ,
उपासकत्तं पटिवेदयामि तं ॥ ५३ ॥
सपुत्तदारो सरणे पतिट्ठितो ,
निग्रोधकल्याणमित्तस्स आगमा ।
"पूजेमि चतुरो सतसहस्सरूपियं ,
अट्ठट्ठकं निच्चभत्तं च थेरं" ॥ ५४ ॥

"तेविज्जा इद्धिपत्ता च चेतोपरियकोविदा ।
खीणासवा अरहन्ता[4] बहू बुद्धस्स सावका" ॥ ५५ ॥

---

1. अनुसास--रो.
2.2 मं सुणोम देसनं--रो. ।
3. पटिसम्भिदट्ठितो--रो. ।
4. अरहन्तो--रो. ।

"आप अपने ज्ञान का मुझे भी उपदेश कीजिये । आज से आप ही मेरे शास्ता हैं । आपकी शिक्षा प्राप्त कर मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँगा । आप मुझे उपदेश करें, मैं उसको श्रद्धापूर्वक सुनूँगा" ॥ ४९ ॥

राजा को उपदेश–राजा के संवेगयुक्त वचन सुनकर श्रमण ने नौ (९) अङ्गों वाले बुद्धवचनों में भी मीमांसा करते हुए समग्र गम्भीर ज्ञान से पूर्ण त्रिपिटक का अवलोकन किया तो उन्होंने इस राजा को **अप्पमादसुत्त** का उपदेश करना उचित समझा । तथा उन्होंने यों उपदेश करना प्रारम्भ किया–॥ ५० ॥

"सभी इन्द्रियों को प्रमादरहित (विषयासम्पृक्त) रखना ही अमृत (निर्वाण=-मोक्ष) की तरफ ले जानेवाला मार्ग है । तथा (इसके विपरीत) इन्द्रियों को विषयोपभोग में लगाये रखना (=प्रमाद) मृत्यु (नरक) की तरफ पहुँचाने वाला मार्ग है । इसी लिये जो पुरुष अप्रमत्त हैं वे कभी मृत्यु (नरकयोनि) के पास नहीं जाते; परन्तु (इसके विपरीत) जो प्रमत्त (इन्द्रियविषयासक्त) हैं उन्हें तो आप सामान्यतः प्राण धारण किये हुए दिखायी देने पर भी मृत ही समझिये" ॥ ५१ ॥

राजा ने न्यग्रोध श्रमण के इस धर्मोपदेश का अनुमोदन करते हुए उस श्रमण का श्रेष्ठ होने का कारण समझ लिया कि जो कुछ भी सर्वज्ञ बुद्ध द्वारा उपदिष्ट वचन हैं वे ही इन श्रमणों के धर्माचरण के मूल (प्रधान) हेतु हैं ॥ ५२ ॥

राजा की सङ्घ में श्रद्धा– यह सोच कर राजा ने न्यग्रोध श्रमण से निवेदन किया–"भन्ते! आज से मैं आपकी शरण में आ गया हूँ । बुद्ध, धर्म एवं सङ्घ की शरण में आ गया हूँ । मैं अपने पुत्र, स्त्री, नाती एवं सम्बन्धिजनों सहित आप का पूर्णतः उपासकत्व स्वीकार करता हूँ ॥ ५३ ॥

यों वह राजा पुत्र, स्त्री एवं सम्बन्धी जनों सहित उस कल्याणमित्र निग्रोध श्रमण की शरण में आकर उनसे फिर बोला--"मैं आप श्रमण की चार लाख (४,००,०००) रजतमुद्राओं से पूजा (अर्चना) करता हूँ तथा साथ ही प्रतिदिन आठ भिक्षुओं को भोजनदान का सङ्कल्प करता हूँ" ॥ ५४ ॥

(श्रमण बोले–"राजन्!) भगवान बुद्ध के बहुत से (अगणित) श्रावक (शिष्य) हैं जो समग्र त्रिपिटक के ज्ञाता है । ऋद्धिबलसम्पन्न है, दूसरे के चित्त के आशय (भाव) को जानने वाले हैं, क्षीणास्रव (निर्विकार) एवं ज्ञानी हो चुके हैं । (अतः आप द्वारा प्रदत्त ये आठ भोजनदान भिक्षुसङ्घ को समर्पित करता हूँ) ॥ ५५ ॥

थेरं अवोच पुनदेव राजा,
"इच्छामि सङ्घरतनस्स दस्सनं ।
समागमं सन्निपतन्ति यावता,
अभिवादयामेत्थ[1] सुणामि धम्मं" ॥ ५६ ॥

'"समागता सट्ठिसहस्सभिक्खू,
दूता च रञ्ञो परिवेदयिंसु ।
सङ्घो महासन्निपाते सुतिट्ठो,
गच्छाहि [2] त्वं इच्छसि सङ्घदस्सनं" ॥ ५७ ॥

[S. 36] दूतस्स वचनं सुत्वा असोकधम्मो महीपति ।
आमन्तयि ञातिसङ्घमित्तामच्चे च बन्धवे ॥ ५८ ॥

"दक्खिणदानं दस्साम महासङ्घसमागमे ।
करोम वेय्यावतिकं यथासत्तिं तथाबलं ॥ ५९ ॥

"मण्डपं आसनं उदकं उपट्ठानं दानभोजनं ।
पटियादेन्तु मे खिप्पं दानारहं अनुच्छविं [3]॥ ६० ॥

"सूपेय्यभत्तकारा च सुचि यागु सुसङ्खता ।
पटियादेन्तु मे खिप्पं मनुञ्ञं भोजनं सुचिं ॥ ६१ ॥

"महादानं च दस्सामि भिक्खुसङ्घे गुणुत्तमे ।
नगरे[4] भेरियो वज्जन्तु व वीथियो[5] सम्मज्जन्तु ते ॥ ६२ ॥

"विकिरन्तु वालुकं सेतं पुप्फं च पञ्चवण्णकं ।
मालग्घियं तोरणं च कदली पुण्णघटं सुभं ॥ ६३ ॥

"उतुक्कमपरं थूपं ठपयन्तु तहिं तहिं ।
वत्थेहि च धजं कत्वा बन्धयन्तु तहिं तहिं" ॥ ६४ ॥

1. अभिवादयामि--रो.
2. गच्छसि--रो. ।
3. अनुच्छवं--रो. ।
4. नगरम्हि--रो. ।
5. वीथि--रो. ।

राजा ने तब श्रमण से पुनः निवेदन किय।--"भन्ते! मैं ऐसे गुणी भिक्षुसङ्घ का दर्शन करना चाहता हूँ । उनके यहाँ पधारने पर हम उन्हें प्रणाम करेंगे तथा उनसे धर्मोपदेश भी सुनेंगे" ॥ ५६ ॥

कुछ ही समय में वहाँ (पाटलिपुत्र में) साठ हजार (६0,000) भिक्षु एकत्र हो गये । दूतों ने आकर राजा को यह सूचित किया–"देव! भिक्षुसङ्घ विशाल समूह के रूप में यहाँ आकर ठहरा हुआ है । यदि आप चाहें तो उनके दर्शन हेतु पधारें" ॥ ५७ ।

सङ्घपूजा की व्यवस्था--दूतों की बात सुनकर राजा अशोक ने अपने सभी सम्बन्धियों तथा मित्रों एवं अधिकारियों और बान्धवों को एकत्र किया ॥ ५८ ॥

और यह आदेश दिया--" विशाल भिक्षुसङ्घ इस पाटलिपुत्र में एकत्र हुआ है । इस अवसर पर हम उन्हें दक्षिणा एवं दान करेंगे एवं यथाशक्ति, यथाबल उनकी सेवा-पूजा करेंगे ॥ ५९ ॥

"अतः इस शुभकार्य के लिये मण्डप, आसन, पवित्र जल, पूजा-सामग्री, दान-भोजन की शीघ्र ही ऐसी व्यवस्था करो जो दान के योग्य हो और उनकी शोभा के अनुरूप हो ॥ ६0 ॥

"इसी तरह सूप, सरल भोजन-सामग्री, एवं सुसंस्कृत यवागू की शीघ्र ही व्यवस्था करो, साथ ही शुद्ध एवं रुचिकर भोजन की भी ॥ ६१ ॥

"उस श्रेष्ठ गुणसम्पन्न भिक्षुसङ्घ को हम महादान (भोजनदान) भी देंगे । अतः नगर में भेरियाँ (दुन्दुभियाँ) बजवा दो, नगर के मार्गों को समलंकृत करवा दो ॥ ६२ ॥

"सभी मार्गों पर श्वेत बालू बिखरा (बिछा) दो, और पाँच रङ्ग के फूल भी उन मार्गों में बिछवा दो । स्थान-स्थान पर मूल्यवान् मालाएँ एवं तोरण सजा दो, पवित्र केले के खम्भे एवं जलपूर्ण घट-पंक्ति भी यथास्थान रखवा दो ॥ ६३ ॥

"ऋतुक्रम के अनुकूल जहाँ तहाँ स्तूप स्थापित कर दो । और रंग-विरंगे वस्त्रों की ध्वजाएँ जहाँ तहाँ मार्गों में बँन्धवा दो ॥ ६४ ॥

"मालादामसमायुत्ता सोभयन्तु इमं पुरं।
खत्तिया ब्राह्मणा वेस्सा सुद्दा अञ्ञकुलासु च ॥ ६५ ॥

"वत्थं आभरणं पुप्फं नानालङ्कारभूसितं[1]।
आदाय दीपं जलमानं गच्छन्तु सङ्घदस्सनं ॥ ६६ ॥

"सब्बं च तालावचरं[2] नानाकुला व[3] सिक्खिता।
वज्जन्तु वग्गुसवनीया [4]सुसिरा मद्दलानि च[4]॥ ६७ ॥

"लङ्कारकामदा चेव सोत्थिया नटनाटका।
सब्बे सङ्घं उपयन्तु हासयन्तु समागतं ॥ ६८ ॥

"पुप्फं च अनेकविधं पुण्णघटं[5] च अनेकधा।
वण्णकं चेव करोन्तु पूजं अनेकरासियो ॥ ६९ ॥

"नगरस्स पटिहारमन्तरे,
दानं सब्बं पटियन्तु पत्थितं।
पूजं समादाय[6] रट्ठवासिका,
रत्तिं दिवं नियामे असेसतो"* ॥ ७० ॥

[S.37] तं रत्तिया अच्चयेन भत्तं सकनिवेसने।
पणीतरससम्पन्नं पटियादेत्वान खत्तियो ॥ ७१ ॥

सामच्चे सपरिवारे आणापेसि महायसो।
[R. 48] "गन्धमाला पुप्फकूटं पुप्फछत्तधजं बहुं ॥ ७२ ॥

"दिवा दीपं जलमानं अभिहरन्तु महाजना।
यावता मया आणत्ता तावता अभिहरन्तु ते ॥ ७३ ॥

---

1. नानालङ्कारभूसिता--रो.।
2. गन्धब्बा--रो.।
3. रो. पोत्थके-नत्थि।
4.4 सस्सरा गच्छन्तु अग्गवरं सङ्घदस्सनं--रो.।
5. पुण्णकं--रो.।
6. सब्बं दिवसं--रो.।
* करोन्तु सङ्घाधिकारस्स आरभि--रो. अधिकपाठो।

"इस तरह इस नगर को मालापंक्तियाँ लटकाकर भली भाँति सजा दो । सभी क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य एवं शूद्र तथा ऐसे ही अन्य कुलों में उत्पन्न पुरुष भी वस्त्र, माला, आभरण आदि से भली प्रकार सज-धज कर जलते दीपक हाथ में लेकर सङ्घ के दर्शन हेतु चलें ॥ ६५-६६ ॥

"उस समय, अनेक मण्डलियों द्वारा बजाये जाने वाले तथा सभी वाद्यसमूह सहनाई (सुसिर) एवं ढोल भी कर्णमधुर ध्वनि से बजाये जायँ ॥ ६७ ॥

"हमारे नगर के वासी सभी आभूषणों के व्यापारी, श्रोत्रिय (वेदपाठी) ब्राह्मण, नट एवं नर्तक इस अवसर पर सङ्घ के स्वागत (अगवानी) के लिये एकत्र हों तथा उस भिक्षुसङ्घ को अपनी उपस्थिति से प्रसन्न करें ॥ ६८ ॥

"तरह-तरह के फूल, चित्र-विचित्र रंगों से रंगे हुए जल से भरे घड़े तथा पूजा की नानाविध सामग्री यथास्थान रखवा दी जाय ॥ ६९ ॥

"नगर के सभी मुख्य द्वारों (पटिहार) पर सर्वविध दान-सामग्री पहले से ही रखवा दी जाय । और इस नगर का रहने वाला प्रत्येक पुरुष अपनी तरफ से सङ्घ की सेवा-पूजा हेतु रात-दिन निरन्तर सन्नद्ध रहे" ॥ ७० ॥

उस रात्रि के व्यतीत होने पर, राजा ने अपने प्रासाद में रुचिकर खाद्य-सामग्री तय्यार करायी ॥ ७१ ॥

उस महायशस्वी ने अपने सभी अमात्यों एवं परिवार वालों को पुनः आदेश दिया–"गन्ध द्रव्य, माला, पुष्प राशि पुष्पछत्र एवं नाना प्रकार की रंग-विरंगी ध्वजाएँ ॥ ७२ ॥

"सभी नागरिक दिन में जलते हुए दीप लेकर निकलें, तथा साथ ही मैने जो पहले आज्ञा दी है तदनुसार, वे सभी सामग्रियाँ साथ रखें ॥ ७३ ॥

"इमम्हि नगरे सब्बे नेगमा च चतुद्दिसा ।
सब्बेव राजपरिसा सयोग्गबलवाहना ॥ ७४ ॥

"सब्बे मं अनुगच्छन्तु भिक्खुसङ्घस्स दस्सनं" ।
महता राजानुभावेन निय्यासि राजकुञ्जरो ॥ ७५ ॥

सक्को व नन्दनुय्यानं एवं सो हि महीपति ।
गन्त्वा राजा तरमानो भिक्खुसङ्घस्स सन्तिके ॥ ७६ ॥

अभिवादेत्वान सम्मोदि वेदजातो कतञ्जलि ।
आरोचयि भिक्खुसङ्घं "ममत्थायानुकम्पतु ॥ ७७ ॥

याव भिक्खू अनुप्पत्ते सब्बे अन्तो निवेसने" ।
सङ्घस्स पितरं थेरं पत्तं आदाय खत्तियो ॥ ७८ ॥

पूजमानो बहुपुप्फेहि पाविसि नगरं वरं ।
निवेसनं पवेसेत्वा निसीदापेत्वान आसने ॥ ७९ ॥

यागुं नानाविधं खज्जं भोजनं च महारहं ।
अदासि पयतपाणि यावदत्थं यदिच्छकं ॥ ८० ॥

भुत्तावि भिक्खुसङ्घस्स ओनीतपत्तपाणिनो ।
एकमेकस्स भिक्खुनो अदासि युगसाटकं ॥ ८१ ॥

पादसम्मञ्जनं तेलं छत्तं चापि उपाहनं ।
सब्बं समणपरिक्खारं अदासि फाणितं मधुं ॥ ८२ ॥

परिवारेत्वान निसीदि धम्मासोको[1] महीपति ।
निसज्ज राजा पवारेसि भिक्खुसङ्घस्स पच्चयं ॥ ८३ ॥

यावता भिक्खू इच्छन्ति ताव देमि यदिच्छकं ।
सन्तपेत्वान[2] सक्कच्चं[2] सम्पवारेत्वान पच्चये ॥ ८४ ॥

---

1. असोकधम्मो – रो. ।
2-2. सम्पवारेत्वा परिक्खारेन – रो. ।

"इस तरह, इस नगर के वासी जितने भी सब तरफ नागरिक हैं, सभी राज-परिषदों के पार्षद, तथा मेरी सारी सेना ॥ ७४ ॥

"भिक्षुसङ्घ के दर्शनहेतु मेरा ही अनुगमन करे" । यों बड़ी भारी राजकीय सज-धज (समारोह) के साथ वह सम्राट् (भिक्षुसङ्घ के दर्शनहेतु निकला। ॥ ७५ ॥

दर्शनहेतु जाता हुआ वह राजा उसी तरह शोभित हो रहा था मानो देवराज इन्द्र नन्दनवन जा रहा हो । यों राजा भिक्षुसङ्घ के पास शीघ्रता से गया ॥ ७६ ॥

वहाँ जाकर, प्रणाम कर-कुशल-मङ्गल पूछ कर, प्रसन्न होता हुआ हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगा--"मेरे लिये आप अनुकम्पा करें ॥ ७७ ॥

"कि आप जितने भी भिक्षु यहाँ आये हैं वे सब मेरे महल में पधार कर भोजन करें" । तब सङ्घ की स्वीकृति के बाद राजा, सम्मान-प्रदर्शन के लिये सङ्घ स्थविर का पात्र अपने हाथ में लेकर ॥ ७८ ॥

पुष्प-वर्षा से उस सङ्घ की पूजा करता हुआ सङ्घ को नगर में ले गया । वहाँ अपने प्रासाद में ले जाकर बिछे आसनों पर भिक्षुओं को बैठा कर ॥ ७९ ॥

यागू एवं तरह तरह के रुचिकर भोजन स्वयं अपने हाथ से परोस कर भिक्षु जितना चाहें उतना देता रहा ॥ ८० ॥

यों, भोजन कर चुकने पर, भिक्षुसङ्घ द्वारा पात्रों से हाथ हटा लेने पर एक एक भिक्षु को दो दो चीवर देने लगा ॥ ८१ ॥

साथ में, पैरों में लगाने के लिये तैल, (वर्षा-धूप से रक्षा के लिये) छत्ता, पैरों में जूतियाँ, इसी तरह अन्य श्रमणोपयोगी वस्तुएँ एवं मधु और फाणित भी भिक्षुओं को दिया ॥ ८२ ॥

तदनन्तर, वह राजा धर्माशोक अपनी परिषद् के साथ भिक्षुसङ्घ को परिवृत कर बैठ गया । बैठकर राजा ने भिक्षुसङ्घ को प्रत्यय (भेषज-) दान किया ॥ ८३ ॥

वह राजा भिक्षुओं से पूछ-पूछ कर सबको यथेच्छ प्रत्ययदान कर रहा था । यों उसने उनको पूर्णतः सन्तृप्त करते हुए प्रत्ययदान किया ॥ ८४ ॥

ततो पुच्छि सुगम्भीरं धम्मक्खन्धं सुदेसितं ।
"अत्थि, भन्ते, परिच्छेदो देसितादिच्चबन्धुना ॥ ८५ ॥

[S.38] नामं लिङ्गं विभत्तिं च कोट्ठासं चापि सङ्खतं ।
एत्तकं व धम्मक्खन्धानं[1] गणनं अत्थि पवेदिय" ॥ ८६ ॥

"अत्थि, राज, गणित्वान देसितादिच्चबन्धुना ।
सुविभत्तं सुपञ्ञत्तं सुनिदिट्ठं सुदेसितं ॥ ८७ ॥

[R.49] सहेतुं अत्थसम्पन्नं खलितं नत्थि सुभासितं ।
सतिपट्ठानं सम्मप्पधानं इद्धिपादं च इन्द्रियं ॥ ८८ ॥

बलं बोज्झङ्गं मग्गङ्गं सुविभत्तं सुदेसितं ।
सत्ततिंसप्पभेदं च बोधिपक्खियमुत्तमं ॥ ८९ ॥

लोकुत्तरं धम्मवरं नवङ्गं सत्थुसासनं ।
वित्थारितं सुविभत्तं देसेसि दिपदुत्तमं ॥ ९० ॥

चतुरासीतिसहस्सानि धम्मक्खन्धं अनूनकं ।
पाणिनं[2] अनुकम्पाय देसितादिच्च बन्धुना ॥ ९१ ॥

अमतुत्तमं वरधम्मं संसारपरिमोचनं ।
सब्बदुक्खक्खयं मग्गं देसेसि अमतोसधं"[3] ॥ ९२ ॥

सुत्वान वचनं राजा भिक्खुसङ्घस्स भासितं ।
पामोज्जहासबहुलो वेदजातो[4] नरासभो ।
सराजिकापरिसाय इमं वाक्यं उदाहरि ॥ ९३ ॥

"चतुरासीतिसहस्सानि परिपुण्णं अनूनकं ।
देसितं बुद्धसेट्ठस्स धम्मक्खन्धं महारहं ॥ ९४ ॥

---

1. धम्मक्खन्धं - रो. ।
2. पाणानं- रो. ।
3. अमतोगधं – सी. ।
4. देवजातो – रो. ।

फिर उसने सङ्घ से प्रश्न किया--"भन्ते! भगवान् ने यह जो इतना लम्बा-चौड़ा धर्मस्कन्ध उपदिष्ट किया है क्या इसका आदित्यबन्धु (भगवान्) ने कहीं कुछ विभाजन किया है? ॥ ८५ ॥

"उन्होंने इसका कोई नाम, लिङ्ग, विभक्ति, कोट्ठास (विवरण) बताया है कि इतना ही धर्मस्कन्ध है--ऐसी इसकी कोई गणना बतायी है?" ॥ ८६ ॥

भिक्षु बोले--"हाँ, राजन्! उन भगवान् ने इसका सम्यक्तया उपदेश करते हुए इसकी गणना करके ही सुविभक्त, सुप्रज्ञप्त, सुनिर्दिष्ट एवं सूपदिष्ट रूप से ॥ ८७ ॥

"सब कुछ हेतुसहित एवं अर्थयुक्त कहा है । इस सुभाषित में कुछ भी स्वलित (छूटा) नहीं है । इसमें स्मृतिप्रस्थान, सम्यक्प्रधान, ऋद्धिपाद, इन्द्रिय ॥ ८८ ॥

"बल, बोध्यङ्ग एवं मार्गाङ्ग सब कुछ सुविभक्त एवं सूपदिष्ट है । इसी तरह उत्तम सैंतीस (३७) बोधिपक्षीय धर्मों का (भी विशद वर्णन है) ॥ ८९ ॥

"इस तरह इस लोकोत्तर एवं श्रेष्ठ धर्म के बोधक नौ (९) अङ्गों वाले बुद्धशासन (बुद्धवचन) का उस नरश्रेष्ठ ने विस्तृत एवं सुविभक्त उपदेश किया है ॥ ९० ॥

"इस तरह उस आदित्यबन्धु भगवान् बुद्ध ने इस बुद्धवचन को चौरासी हजार (८४०००) धर्मस्कन्धों में विभक्त कर प्राणियों पर अनुकम्पा हेतु उपदेश किया है ॥ ९१ ॥

"यह धर्म अमृत से उत्तम है, श्रेष्ठ है, संसार से अनायास ही मुक्ति दिलाने वाला है । सभी दुःखों के क्षयकर्ता मार्ग का बोधक है । यह सभी भवरोगों की अमृततुल्य औषध है" ॥ ९२ ॥

विहारनिर्माण–

राजा ने भिक्षुसङ्घ के कहे हुए ये वचन सुन कर, प्रमोद (हर्ष) युक्त हास्य मिश्रित सुख का अनुभव करते हुए अपनी परिषद् के सम्मुख ये वचन कहे ॥ ९३ ॥

"भगवान् ने चौरासी हजार (८४,०००) धर्मस्कन्ध कहे हैं तो मैं भी इन स्कन्धों की स्मृति-रक्षा के लिये एक एक धर्मस्कन्ध के नाम पर एक-एक विहार बनाता हुआ यह चौरासी हजार (८४,०००) संख्या पूर्ण करूँगा ॥ ९४ ॥

चतुरासीति सहस्सानि आरामे कारयामहं।
एकेकधम्मक्खन्धस्स एकेकारामं पूजयं" ॥ ९५ ॥

छन्नवुतिकोटिधनं विस्सज्जेत्वान खत्तियो।
तमेव दिवसं राजा आणापेसि च तावदे ॥ ९६ ॥

तस्मिं काले[1] जम्बुदीपे नगरं चतुरासीतियो।
एकेकनगरट्ठाने पच्चेकारामं कारयि ॥ ९७ ॥

अन्तो तीणि च वस्सानि विहारं कत्वान खत्तियो।
परिनिट्ठिते आरामे पूजं सत्ताह कारयि ॥ ९८ ॥

धम्मासोकवण्णनं निट्ठितां ॥
छट्ठो परिच्छेदो निट्ठितो ॥
भाणवारो छट्ठमो ॥

---

1. समये – रो.।

"भगवान् ने चौरासी हजार (८४,०००) धर्मस्कन्ध कहे हैं तो मैं भी इन स्कन्धों की स्मृति-रक्षा के लिये एक एक धर्मस्कन्ध के नाम पर एक-एक विहार बनाता हुआ यह चौरासी हजार (८४,०००) संख्या पूर्ण करूँगा ॥ ९५ ॥

राजा ने इस वृहत्तम कार्य के सम्पादनहेतु छियानवे करोड़ (९६,००,००,०००) मुद्राओं का एक पृथक् कोष स्थापित कर दिया । और उक्त निर्माणहेतु उसी दिन राजाज्ञा भी प्रसारित करा दी ॥ ९६ ॥

उस समग्र जम्बुद्वीप में चौरासी (८४) प्रसिद्ध नगर थे । अतः उनमें से प्रत्येक नगर में एक एक विहार बनवाया ॥ ९७ ॥

बाद में, तीन वर्ष में यह निर्माणकार्य पूर्णतः सम्पन्न कराकर, विहारों के निर्मित हो जाने के बाद, इनके सम्मान में पूजा-सप्ताह मनाया ॥ ९८ ॥

सम्राट अशोक की धर्मश्रद्धा का वर्णन समाप्त ।

छठा परिच्छेद समाप्त ॥
छठा भाणवार भी समाप्त ॥

●

(विस्तार के लिये 'महावंश' का पञ्चम परिच्छेद भी देखें–अनु० ।)

७.

सत्तमो परिच्छेदो

(ततियसद्धम्मसङ्गहो)

[S.39] महासमागमो होति जम्बुदीपे समन्ततो ।
भिक्खू असीति कोटियो भिक्खुनी छन्नवुति सहस्सियो ॥ १ ॥

भिक्खू च भिक्खुनियो च छळभिञ्ञा बहुतरा ।
भिक्खू इद्धानुभावेन समं कत्वा महीतलं ॥ २ ॥

लोकविवरणं कत्वा दस्सेसुं पूजये महे ।
असोकारामे ठितो राजा जम्बुदीपं अवेक्खति ॥ ३ ॥

भिक्खुइद्धानुभावेन असोको सब्बत्थ पस्सति ।
[R.50] अद्दस विहारं सब्बं सब्बत्थ महियं कतं ॥ ४ ॥

धजं उस्सापितं पुप्फं तोरणं च मालग्घियं ।
कदली पुण्णघटं चेव नानापुप्फसमोहितं ॥ ५ ॥

अद्दस दीपमण्डलं विभूसन्तं चतुद्दिसं ।
पमोदितो हट्ठमनो पेक्खन्तो वत्तते महे ॥ ६ ॥

समागते भिक्खुसङ्घे भिक्खुनी च समागते ।
महादानं च पञ्ञत्तं दीयमाने वनिब्बके ॥ ७ ॥

चतुरासीतिसहस्सानि विहारे दिस्वान पूजिते ।
असोको पि अत्तमनो भिक्खुसङ्घं पवेदयि ॥ ८ ॥

"अहं च, भन्ते, दायादो सत्थु बुद्धस्स सासने ।
बहु मय्हं परिच्चागो सासने सारवदिनो ? ॥ ९ ॥

छन्नवुति कोटियो च विस्सज्जेत्वा महाधनं ।
चतुरासीति सहस्सानि आरामा कारिता मया ॥ १० ॥

सातवाँ परिच्छेद

(तृतीय सद्धर्मसंग्रह)

जम्बूद्वीप में चारों तरफ से आये हुए भिक्षुओं का एक विशाल समागम (समारोह) हुआ, जिसमें अस्सी करोड़ (८0, 00, 00, 000) भिक्षु एवं छयानवें हजार (९६, 000) भिक्षुणियाँ एकत्र हुईं ॥ १ ॥

इनमें बहुत से भिक्षु एवं भिक्षुणियाँ छह अभिज्ञाओं से युक्त विशिष्ट ज्ञान से सम्पन्न थीं । अतः, भिक्षुओं ने अपने ऋद्धिबल से सम्पूर्ण पृथवी तल को देखा ॥ २ ॥

उन्होंने लोक की समीक्षा करते हुए उस समारोह के लिये उचित (योग्य) स्थान खोजा । अन्त में उन्होंने यही निर्णय किया-"अशोकाराम में बैठा हुआ राजा अशोक समग्र जम्बुद्वीप पर दृष्टि रख सकेगा" ॥ ३ ॥

तब भिक्षुओं के ऋद्धिबल के प्रभाव से -"अशोकाराम में ही बैठा हुआ भी राजा (अशोक) सर्वत्र दृष्टि रखने लगा, वह जम्बूद्वीप में बने सभी विहारों का, वहाँ बैठा हुआ ही, अवलोकन करता रहा है" ॥ ४ ॥

चारों तरह फहरायी गयी ध्वजाओं, फूलों, तोरणों, बन्धी हुई मालाओं, केले के खम्भों, जलपूर्ण घटों एवं नाना प्रकार के पुष्पों से आवृत ॥ ५ ॥

अलङ्कृत समग्र द्वीपमण्डल को देखते हुए प्रसन्नचित्त राजा उस महोत्सव के विषय में ही चिन्तन कर रहे थे ॥ ६ ॥

भिक्षुसङ्घ एवं भिक्षुणीसङ्घ के एकत्र होने पर महादान का आयोजन किया गया, भिक्षुओं को दान- सामग्री दी गयी ॥ ७ ॥

उन नवनिर्मित विहारों में विधिवत् होते हुए पूजा-महोत्सवों को सम्पन्न होते देखकर, राजा अशोक ने भिक्षुसङ्घ से निवेदन (प्रश्न) किया ॥ ८ ॥

"भन्ते! क्या मैं बुद्धशासन का दायाद (फल-प्रापक) बनने की स्थिति में आ गया हूँ । क्योंकि, भन्ते! मैने शासन की वृद्धि हेतु इन चौरासी हजार (८४,000) विहारों के निर्माण में बहुत अधिक धन का त्याग किया है?॥ ९ ॥

"मैने छयानवै करोड़ (९६, 00,00,000) मुद्राएँ खर्च कर इन चौरासी हजार (८४, 000) विहारों का निर्माण कराया है ॥ १0 ॥

"पूजाय धम्मक्खन्धस्स बुद्धसेट्ठस्स देसिते ।
चत्तारि सतसहस्सानि देवसिकं पवत्तयि ॥ ११ ॥

"एकं च चेतियं पूजं एकं निग्रोधसव्हयं ।
एकं च धम्मकथिकानं एकं गिलानपच्चयं ॥ १२ ॥

"दीयति देवसिकं निच्चं महागङ्गा व ओदनं ।
अञ्ञो कोचि परिच्चागो भिय्यो मय्हं न विज्जति ॥ १३ ॥

"सद्धा मय्हं दळहतरा तस्मा दायादो सासने" ।
सुत्वान वचनं रञ्ञो धम्मासोकस्स[1] भासितं ॥ १४ ॥

पण्डितो सुतसम्पन्नो निपुणत्थविनिच्छयो[2] ।
सङ्घस्स तेसु विहारं अनुग्गहत्थाय सासनं ॥ १५ ॥

अनागते च अद्धाने पवत्तिं ञत्वा[3] विचक्खणो ।
व्याकासि मोग्गलिपुत्तो धम्मासोकेन[4] पुच्छितं[4] ॥ १६ ॥

[S.40] "पच्चयदायको नाम सासने पटिबाहिरो ।
यस्स पुत्तं वा धीतरं वा उरस्मि जातमन्वयं ॥ १७ ॥

पब्बाजेसि चजेत्वान सो वे दायादो सासने" ।
[R.51] सुत्वान वचनं राजा धम्मासोको[5] महीपति ॥ १८ ॥

महिन्दकुमारं पुत्तं सङ्घमित्तं च धीतरं ।
उभो आमन्तयि राजा "दायादो होमि सासने" ॥ १९ ॥

सुत्वान पितुनो वाक्यं उभो पुत्ताधिवासयुं ।
"सुट्ठु, देव, सम्पटिच्छाम करोम वचनं तव ॥ २० ॥

---

1. असोकधम्मस्स- रो. ।
2. निपुणत्थ- रो. ।
3. सुत्वा- रो. ।
4-4. असोकधम्मपुच्छितं- रो. ।
5. असोकधम्मो- रो. ।

"इस के अतिरिक्त मैं इस उत्तम बुद्ध द्वारा उपदिष्ट इस धर्मस्कन्ध के सम्मान (पूजा) में प्रतिदिन चार लाख (४,००,०००) मुद्राएँ दान करता हूँ ॥ ११ ॥

"इसके अतिरिक्त मैं प्रतिदिन चैत्यपूजा के लिये पृथक्, न्यग्रोध (महावोधि) पूजा के लिये पृथक्, धर्मोपदेशकों के लिये पृथक् तथा रोगी भिक्षुओं के लिये औषधदान हेतु पृथक् व्यवस्था करता हूँ ॥ १२ ॥

"इन सबकें अतिरिक्त भिक्षुओं को निरन्तर भोजनदान तो मेरे यहाँ उसी तरह होता रहता है जैसे महागङ्गा से निरन्तर जल प्रवाहित होता है। अब क्या मेरे लिये कोई ऐसा परित्याग (दान) अवशिष्ट रह गया है जिसे मैने न किया हो ? ॥ १३ ॥

"मेरी बुद्धशासन में अत्यधिक श्रद्धा है, अतः मैं शासन का 'सर्वोत्तम दायाद' होने का अधिकारी हूँ?" अशोक राजा के कहे ये वचन सुन कर ॥ १४ ॥

पण्डित, श्रुतसम्पन्न, सन्दिग्ध बातों का दो टूक निर्णय करने में समर्थ, सङ्घ तथा शासन की वृद्धि के लिये उसके द्वारा निर्मित विहारों पर विचार कर ॥१५॥

तथा उसके द्वारा शासन की उन्नति हेतु तथा उसके द्वारा भविष्य में किये जाने वाले कार्यों पर विचार कर, बुद्धिमान् मोग्गलिपुत्र तिष्य स्थविर ने राजा अशोक द्वारा पूछे गये प्रश्नों का उत्तर देते हुए कहा– ॥ १६ ॥

"राजन्! विगत इतिहास का अवलोकन किया जाय तो सङ्घ के लिये ऐसे प्रत्यय-दाता तो बहुत मिल जायँगे, अतः इससे (इतने से कार्य से) किसी को 'सङ्घ का दायाद' बनने का अधिकार नहीं मिल जाता। हाँ, जो सङ्घ के लिये अपने प्रिय औरस पुत्र या पुत्री को भी दान में दे देता है वही पुरुष शासन का दायाद होने का वास्तविक अधिकारी है" ॥ १७ ॥

महेन्द्र की प्रव्रज्या– राजा ने स्थविर का यह उत्तर सुनकर अपने पुत्र महेन्द्र एवं पुत्री सङ्घमित्रा से पूछा–"पुत्रो! मैं 'सङ्घ का दायाद' होना चाहता हूँ" ॥ १८-१९ ॥

राजा के ये वचन सुनकर उन दोनों (पुत्र-पुत्रियोंने) अपनी स्वीकृति दे दी। और कहा–"बहुत अच्छा है, देव! अपनी तरफ से हम आपकी इच्छा पूर्ण कर आप के कार्य में सहायक बनेंगे ॥ २० ॥

पब्बाजेसि[1] च नो खिप्पं दायादो होहि[2] सासने" ।
परिपुण्णवीसतिवस्सो महिन्दो असोकत्रजो ॥ २१ ॥

सङ्घमित्ता च जातिया वस्सं अट्ठारसं भवे ।
छब्बस्सम्हि असोकस्स उभो पब्बजिता पजा ॥ २२ ॥

तथेव उपसम्पन्नो महिन्दो दीपजोतको ।
सङ्घमित्ता तदायेव सिक्खायो व समादियि ॥ २३ ॥

अहु मोग्गलिपुत्तो व थेरवादो महागणी ।
चतुपञ्ञासवस्सम्हि धम्मासोको अभिसित्तो ॥ २४ ॥

असोकस्साभिसित्ततो छसट्ठि मोग्गलिसव्हयो ।
ततो महिन्दो पब्बजितो मोग्गलिपुत्तस्स सन्तिके ।
पब्बाजेसि महादेवो मज्झन्तो उपसम्पदे ॥ २५ ॥

इमे ते नायका तीणि महिन्दस्सानुकम्पका ।
मोग्गलिपुत्तो उपज्झायो महिन्दं दीपजोतकं ॥ २६ ॥

वाचेसि पिटकं सब्बं अत्थं धम्मं च केवलं ।
असोकस्स दसवस्सम्हि महिन्दो चतुवस्सिको ॥ २७ ॥

सब्बं सुतपरियत्तिं गणिपाचरियो[3] अहू ।
सुदेसितं सुविभत्तं उभोसङ्गहसुत्तकं ॥ २८ ॥

महिन्दो थेरवादकं उग्गहेत्वान धारयि ।
विनीतो मोग्गलिपुत्तो महिन्दं असोकअत्रजं ॥ २९ ॥

तिस्सो विज्जा छळभिञ्ञा चतुरो पटिसम्भिदा ।
तिस्सो मोग्गलिपुत्तो च महिन्दं सद्धिविहारिकं ।
41] आगमपिटकं सब्बं सिक्खापेसि निरन्तरं ॥ ३० ॥

---

1. पब्बाजेहि- रो. ।
2. होति- सी.।
3. गणुपाचरियो-सी. ।

"आप हमें तत्काल (शीघ्र ही) प्रव्रज्या दीक्षा दिलावें, और इस प्रकार आप 'सङ्घ के दायाद' बनने के अधिकारी हों ।" उस समय अशोक का पुत्र महेन्द्र (२०) वर्ष का था ॥ २१ ॥

और उसकी पुत्री सङ्घमित्रा अठारह (१८) वर्ष की थी । जब राजा को राज्य-भिषिक्त हुए छह (६) वर्ष बीत चुके थे, तब इन दोनों की प्रव्रज्या हुई ॥ २२ ॥

भविष्य में द्वीप की उन्नति में सहायक महेन्द्र प्रव्रजित होने के समय ही उपसम्पन्न हो गये, परन्तु सङ्घमित्रा, सङ्घ के कठोर नियमों के कारण, उसी समय उपसम्पन्न तो न हो सकी परन्तु उसने शील आदि शिक्षाओं का अभ्यास प्रारम्भ कर दिया ॥ २३ ॥

ये स्थविरवादी, महामण्डलेश्वर मोग्गलिपुत्र तिष्य जब चौवन (५४) वर्ष के थे, उसी समय अशोक का (राज्य) अभिषेक हुआ था ॥ २४ ॥

सम्राट् अशोक के राज्याभिषेक से छह वर्ष बाद जब मोग्गलिपुत्र तिष्य स्थविर साठ (६0) वर्ष के हो गये तब महेन्द्र ने इन्हीं स्थविर के सान्निध्य में प्रव्रज्या-दीक्षा प्राप्त की । महादेव स्थविर ने महेन्द्र को प्रव्रज्या-दीक्षा दी ॥ २५ ॥

महेन्द्र की शिक्षा– इन्हीं दोनों सङ्घनायकों (स्थविरों) ने महेन्द्र पर अनुकम्पा करते हुए उसे तीनों पिटकों की शिक्षा दी । मोग्गलिपुत्र तिष्य ही उस द्वीपद्योतक महेन्द्र के उपाध्याय बने ॥ २६ ॥

उन्होंने ही उसको समग्र पिटक, अर्थ एवं धर्म के साथ, पढाया । अशोक को शासन करते जब दश (१०) वर्ष हो चुके थे तब महेन्द्र चार (४) वर्ष के ही हुए थे । (भिक्षु-परम्परा में भिक्षुओं की आयु प्रव्रज्या-काल से गिनी जाती है।) ॥२७॥

इसी अवस्था (चार वर्ष) में ही श्रवणयोग्य सभी धर्म–वचन सुनकर उन्हें ग्रहणकर, वे सङ्घ में गणी (समूह का नायक) एवं प्राचार्य हो गये । इन्होंने दोनों (विनय एवं सूत्र) संग्रहों को सुदेशित एवं सुविभक्त रूप से ग्रहण कर लिया ॥ २८ ॥

यों, उस अशोकपुत्र महेन्द्र ने समग्र स्थविरवाद (के शास्त्र) को मोग्गलिपुत्र तिष्य से पढ़कर ग्रहण कर लिया ॥ २९ ॥

ये मोग्गलिपुत्र तिष्य अपने शिष्य महेन्द्र को तीनों विद्याएँ, छह अभिज्ञाएँ, चारों प्रतिसंविदाएँ, साथ ही आगम (शास्त्र) के सभी पिटक निरन्तर सिखाते रहते थे ॥ ३० ॥

तीणि वस्सम्हि निग्रोधो चतुवस्सम्हि भातरो ।
छब्बस्सम्हि पब्बजितो महिन्दो असोकत्रजो ॥ ३१ ॥

कोन्तिपुत्ता उभो थेरा तिस्सो चापि सुमित्तको ।
अट्ठवस्सम्हि सोकस्स परिनिब्बिंसु महिद्धिका ॥ ३२ ॥

इमे कुमारा पब्बजिता उभो थेरा च निब्बुता ।
[R.52] उपासकत्तं देसिंसु खत्तिया ब्राह्मणा बहू ॥ ३३ ॥

महालाभो च सक्कारो उप्पज्जि बुद्धसासने ।
पहीणलाभसक्कारा तित्थिया पुथुलद्धिका ॥ ३४ ॥

पण्डरङ्गा जटिला च निगण्ठाचेलकादिका ।
अट्ठंसु सत्तवस्सानि अहोसि वग्गुपोसथो ॥ ३५ ॥

अरिया पेसला लज्जी[1] न पविसन्ति उपोसथं ।
सम्पत्ते च वस्ससते वस्सं छत्तिंससतानि च ॥ ३६ ॥

सट्ठि भिक्खुसहस्सानि असोकारामे वसिंसु ते ।
आजीविका अञ्ञलद्धिका नाना दूसेन्ति सासनं ॥ ३७ ॥

सब्बे कासाववसना[2] दूसेन्ति जिनसासनं ।
भिक्खुसहस्सपरिवुतो छळभिञ्ञो महिद्धिको[*] ॥ ३८ ॥

[S.42] मोग्गलिपुत्तो महापञ्ञो परवादप्पमद्दनो ।
थेरवादं दळहं कत्वा सङ्गहं ततियं कतो ॥ ३९ ॥

मद्दित्वा नानावादानि नीहरित्वा अलज्जिनो[3] ।
सासनं जोतयित्वान कथावत्थुं पकासयि ॥ ४० ॥

---

1. लज्जि- सी. ।
2. कासायवसना- रो. ।
*. मोग्गलिपुत्तो गणपामोक्खो अकासि धम्मसङ्गहं- रो.पोत्थके अधिकपाठो ।
3. ० बहू- रो. ।

यों, अशोक के शासनकाल के तीन (३) वर्ष बीतने पर न्यग्रोध, चार वर्ष बीतने पर सम्राट अशोक का भाई तथा छह (६) वर्ष बीतने पर अशोक का पुत्र महेन्द्र प्रव्रजित हुआ था ॥ ३१ ॥

ऋद्धिसम्पन्न कुन्तीपुत्र तिष्य स्थविर एवं सुमित्र—ये दोनों अशोक के शासनकाल के आठवें वर्ष में परिनिवृत हुए ॥ ३२ ॥

इन कुमारों की प्रव्रज्या एवं उन स्थविरों के परिनिर्वाण के समय बहुत से नागरिक क्षत्रिय एवं ब्राह्मण एकत्र हुए जिन्होंने धर्म का उपासकत्व स्वीकार किया ॥ ३३ ॥

सङ्घ में सङ्कट—(राज्य का संरक्षण मिलने के कारण) उस समय सङ्घ को राजा एवं नागरिकों की तरफ से बहुत अधिक लाभ एवं सत्कार मिलने लगा । अतः अन्य तीर्थिक जन पहले प्राप्त होने वाले लाभ सत्कारों से वञ्चित होने लगे ॥ ३४ ॥

तब बहुत से पाण्डुरङ्ग-मतानुयायी (वैष्णव) एवं जटिल (शैव), निगण्ठ (जैन), अचेलक (नग्न) आदि तीर्थिक लाभसत्कार की प्राप्तिहेतु सङ्घ में भिक्षु बन कर प्रविष्ट हो गये । अन्त में स्थिति यह आ गयी कि सङ्घ का नियमित उपोसथ भी सात (७) वर्ष तक नहीं हो पाया ॥ ३५ ॥

ती॰र्थकों की बहुलता हो जाने के कारण आर्य, सदाचारी, धर्म का सङ्कोच (लज्जा) करने वाले भिक्षु उपोसथ में निर्भय होकर नहीं आ पाते थे । अन्त में, भगवान् के महापरिनिर्वाण के दो सौ छत्तीस वर्ष (२३६) बाद ऐसी स्थिति आ गयी कि आजीवक आदि अन्य मतानुयायी साठ हजार (६0, 000) तीर्थिकजन भिक्षुवेष धारण कर अशोकाराम में आकर रहने लगे । वे सङ्घ को नाना प्रकार से दूषित करने लगे ॥ ३६-३७ ॥

ये सभी काषाय वस्त्र धारण कर बुद्ध-शासन को दूषित करने लगे । तब हजार (१000) भिक्षुओं से परिवृत, षडभिज्ञ एवं ऋद्धिसम्पन्न ॥ ३८ ॥

महाप्राज्ञ, एवं परमतविध्वंसक स्थविर मोग्गलिपुत्र तिष्य ने स्थविरवाद मत को पुनः सुदृढ कर तृतीय धर्मसङ्गीति का सफल आयोजन किया ॥ ३९ ॥

उसी के माध्यम से उन्होंने अन्य तीर्थिकों के मतवाद का खण्डन कर, उन निर्लज्जों का सङ्घ से निष्कासन कर, शासन को पुनः पूर्ववत् जनता में सम्मान दिलाते हुए स्वरचित **कथावत्थुप्रकरण** नामक अभिनव ग्रन्थ का भी उस धर्मसङ्गीति के अवसर पर प्रकाशन (प्रचार) किया ॥ ४0 ॥

तस्य मोग्गलिपुत्तस्स महिन्दो सद्धिविहारिको ।
उपज्झायस्स सन्तिके सद्धम्मं परियापुणि ॥ ४१ ॥

निकाये पञ्च वाचेसि सत्त चेव पकरणे ।
उभतो विभङ्गं विनयं परिवारं च खन्धकं ।
उग्गहि वीरो निपुणो उपज्झायस्स सन्तिके ॥ "ति ॥ ४२ ॥

निक्खन्ते दुतिये वस्ससते वस्सानि छत्तिंसति ।
पुन भेदो अजायित्थ थेरवादानमुत्तमो ॥ ४३ ॥

पाटलिपुत्तनगरम्हि रज्जं कारेसि खत्तियो ।
धम्मासोको महाराजा पसन्नो बुद्धसासने ॥ ४४ ॥

महादानं पवत्तेसि सङ्घे गणिवरुत्तमे ।
चत्तारि सतसहस्सानि एकाहेनेव निस्सजि ॥ ४५ ॥

चेतियस्स यजा एकं धम्मस्स सवनस्स च ।
गिलानानं च पच्चयं एकं सङ्घस्स निस्सजि ॥ ४६ ॥

तित्थिया ळाभं दिस्वान सक्कारं च महारहं ।
सट्ठिमत्तसहस्सानि थेय्यसंवासका अहू ॥ ४७ ॥

असोकारामविहाऱम्हि पातिमोक्खो परिच्छिजि ।
कारापेन्तो पातिमोक्खं अमच्चो अरिये घातयि ॥ ४८ ॥

[R.53] तित्थिये निग्गहत्थाय बहू बुद्धस्स सावका ।
सट्ठिमत्तसहस्सानि जिनपुत्ता समागता ॥ ४९ ॥

[S.43] एतस्मिं सन्निपातम्हि थेरो मोग्गलिअत्रजो ।
सत्थुकप्पो महानागो पठव्या नत्थि ईदिसो ॥ ५० ॥

अरियानं घातितं कम्मं राजा थेरं अपुच्छथ ।
पाटिहीरं करित्वान रञ्ञो कङ्खं विनोदयि ॥ ५१ ॥

ऐसे उस मोग्गलिपुत्र तिष्य स्थविर का वह महेन्द्र शिष्य था । उस का उपाध्याय बन कर स्थविर ने उसको समग्र सद्धर्म (त्रिपिटक) का ज्ञान दिया ॥ ४१ ॥

उन्होंने उसको दीघनिकाय आदि पाँचों निकाय एवं धातुकथा, कथावत्थु आदि अभिधर्म के सातों प्रकरणग्रन्थ पढाये । भिक्षुप्रातिमोक्ष एवं भिक्षुणीप्रतिमोक्ष, परिवार एवं खन्धक (महावग्ग, चुल्लवग्ग) का अध्ययन कराया । उस धीर एवं कुशल शिष्य ने इन सबका उद्ग्रहण किया ॥ ४२ ॥

तृतीय धर्मसङ्गीति का विस्तृत वर्णन—भगवान के महापरिनिर्वाण से दो सौ छत्तीस वर्ष बीत जाने के बाद इन स्थविरवादियों में फिर एक घोर मतभेद उत्पन्न हो गया ॥ ४३ ॥

उस समय पाटलिपुत्र नगर पर महाराज धर्माशोक राज्य करते थे । जो कि बुद्धशासन में अत्यन्त श्रद्धालु थे ॥ ४४ ॥

उन्होंने मण्डलीश्वरों सहित सङ्घ के लिये महादान का आयोजन किया । उस अवसर पर चार लाख (४,००,०००) मुद्राएँ एक ही दिन में खर्च कर दीं ॥ ४५ ॥

इसी तरह उस (राजा) ने चैत्यपूजा के अवसर पर उक्त मुद्रा का एक भाग, धर्मश्रवण के समय एक भाग, तथा रोगी भिक्षुओं को औषधदान के लिये एक भाग निकाला ॥ ४६ ॥

अन्य तीर्थिक लोग सङ्घ का यह महान् लाभ और सत्कार देख कर उसी के लोभ में स्तेयसंवासक बनकर (चौरी से काषाय वस्त्र पहनकर) साठ हजार (६०,०००) की सङ्ख्या में सङ्घ में प्रविष्ट हो गये ॥ ४७ ॥

इस कारण, अशोकारामविहार में उपोसथ (प्रातिमोक्षपाठ) की परम्परा छिन्न भिन्न हो गयी । उक्त परम्परा को पुनः सञ्चालित करने के लिये अशोकाराम भेजे गये एक मूर्ख अमात्य ने कुछ भिक्षुओं को मार डाला ॥ ४८ ॥

इस घटना से दुःखी होकर साठ हजार (६०,०००) स्थविरवादी भिक्षु एकत्र हुए ॥ ४९ ॥

इस सम्मेलन में मोग्गलिपुत्र तिष्य भी सम्मिलित हुए, जो कि ज्ञान एवं ध्यान में शास्ता के ही सदृश से थे, महान् श्रमण भी थे । पृथ्वी पर उस समय इन जैसा कोई अन्य श्रमण नहीं था ॥ ५० ॥

अपने अमात्य द्वारा की गयी भिक्षु-हत्या के विषय में राजा द्वारा पूछने पर कि इस का फल किसको भोगना पड़ेगा? उन मोग्गलिपुत्र तिष्य ने एक चमत्कार (प्रातिहार्य) दिखाते हुए राजा के सन्देह का निराकरण किया ॥ ५१ ॥

थेरस्स सन्तिके राजा उग्गहेत्वान सासनं ।
थेय्यसंवासभिक्खुनो नासेति लिङ्गनासनं ॥ ५२ ॥

तित्थिया सकवादेन पब्बजित्वा अनादरा ।
बुद्धवचनं भिन्दिंसु विसुद्धकञ्चनं इव ॥ ५३ ॥

सब्बे पि ते भिन्नवादा विलोमा थेरवादतो ।
तेसं च निग्गहत्थाय सकवादविबोधनं ॥ ५४ ॥

देसेसि थेरो अभिधम्मं कथावत्थुप्पकरणं* ।
सकवादसोधनत्थाय सासनं दीघकालिकं ॥ ५५ ॥

अरहन्तानं सहस्सं उच्चिनित्वान नायको ।
वरं वरं गहेत्वान अकासि धम्मसङ्गहं ॥ ५७ ॥

असोकारामविहारम्हि धम्मराजेन कारिते ।
नवमासेहि निट्ठासि ततियो सङ्गहो अयं ॥ ति ॥ ५८ ॥

ततियसद्धम्मसङ्गहो निट्ठितो ॥।

सत्तमो परिच्छेदो निट्ठितो ॥

भाणवारो सत्तमो निट्ठितो ॥

●

---

* निग्गहो ईदिसो नत्थि परवादप्पमद्दनं ।
देसेत्वा थेरो अभिधम्मं कथावत्थुप्पकरणं ॥ - रो. पोत्थके अधिकपाठो ।

राजा ने स्थविर से शासन को शुद्ध करने का उपाय पूछ कर उन स्तेय-संवासक भिक्षुओं के वस्त्रादि भिक्षुचिह्न छीन कर उन्हें सङ्घ से निष्कासित कर दिया ॥ ५२ ॥

क्योंकि ये तीर्थिक अपने ही मत से प्रव्रजित होकर भगवान् बुद्ध के प्रति अनादर भाव के कारण उनके वचनों की उसी तरह निन्दा करने लगे थे जैसे कोई मूर्ख शुद्ध सुवर्ण की निन्दा कर रहा हो ॥ ५३ ॥

वे सभी तीर्थिक भिन्न भिन्न मतों के अनुयायी थे, बुद्ध-शासन के विरोधी थे, अतः उनके निग्रह के लिये अपने मत (स्थविरवाद) की पुष्टि अत्यावश्यक हो गयी थी ॥ ५४ ॥

उसी भिक्षुसन्निपात में मोग्गलिपुत्र तिष्य स्थविर ने अभिधर्म विषय पर स्वरचित **कथावत्थुप्रकरण** भी सुनाया जो अपने मत की परिपुष्टि एवं शासन की चिर स्थिति के लिये अतिमहत्त्वपूर्ण था ॥ ५५ ॥

उन महास्थविर ने उस समय के विशाल भिक्षुसङ्घ में से अच्छे अच्छे विद्वान् एक हजार (१,०००) भिक्षुओं का चयन कर उनके साथ बैठकर यह धर्मसङ्गायन सम्पन्न किया था ॥ ५७ ॥

यह तृतीय सङ्गीति (पाटलिपुत्र के) अशोकाराम विहार में, महाराज धर्माशोक के संरक्षण में नौ (९) मास की अवधि में निष्पन्न हुई ॥ ५८ ॥

तृतीय सद्धर्मसंग्रह वर्णन समाप्त ॥

सप्तम परिच्छेद समाप्त ॥

सप्तम भाणवार समाप्त ॥

(इस कथा का विस्तार महावंस के पञ्चम परिच्छेद में देखें–अनु.)

८.

अट्ठमो परिच्छेदो

(नानादेसधम्मप्पसादो)

मोग्गलिपुत्तो दीघदस्सी सासनस्स अनागते ।
पच्चन्तम्हि पतिट्ठानं दिस्वा दिब्बेन चक्खुना ॥ १ ॥

मज्झन्तकादयो थेरे पाहेसि अत्तपञ्चमे ।
सासनस्स पतिट्ठाय पच्चन्ते सत्तवुद्धिया ॥ २ ॥

पच्चन्तकानं देसानं अनुकम्पाय पाणिनं ।
पभातुका बलप्पत्ता देसेथ धम्ममुत्तमं ॥ ३ ॥

[S.44] गन्त्वा गन्धारविसयं मज्झन्तिको महा इसि ।
कुपितं नागं पसादेत्वा मोचेसि बन्धना बहू ॥ ४ ॥

गन्त्वान रट्ठं महिसं महादेवो महिद्धिको ।
चोदित्वा निरयदुःक्खेन मोचेसि बन्धना बहू ॥ ५ ॥

[R.54] अथापरो रक्खितो पि विकुब्बनेसु कोविदो ।
वेहासं अब्भुग्गन्त्वान देसेसि अनमतग्गियं ॥ ६ ॥

योनकधम्मरक्खितत्थेरो नाम महामति ।
अग्गिक्खन्धोपमसुत्तकथाय अपरन्तकं[1] ॥ ७ ॥

महाधम्मरक्खितत्थेरो महारट्ठं पसादयि ।
नारदकस्सपजातककथाय च महिद्धिको ॥ ८ ॥

---

1. ० पसादयि- रो. ।

आठवाँ परिच्छेद

(विविध देशों में धर्म के प्रति श्रद्धोत्पाद)

दीर्घदर्शी (दूरदृष्टि) मोग्गलिपुत्र तिष्य स्थविर ने दिव्य चक्षु से भविष्यत् (अनागत) काल में प्रत्यन्त (सीमावर्ती) प्रदेशों में धर्म की हानि को देखते हुए वहाँ अभी से प्राणियों के हित में धर्म-प्रचार हेतु ॥ १-२ ॥

सङ्घ के स्थविरों से कहा- "आप लोग समर्थ हैं, ऋद्धिबलसम्पन्न है, अतः चार-चार भिक्षुओं के साथ स्वयं को पाँचवाँ मानकर (पाँच पाँच की मण्डली में) सीमावर्ती देशों के प्राणियों पर अनुकम्पा (अनुग्रह) करते हुए वहाँ धर्म-प्रचार हेतु प्रस्थान करें " ॥ ३ ॥

महास्थविर का आदेश मानकर, गन्धार देश में महास्थविर मज्झन्तिक गये । वहाँ उन्होंने अपने ऋद्धिबल से, क्रुद्ध नागराज का दमन कर, उसकी धर्म में श्रद्धा उत्पन्न की तथा साथ ही वहाँ के सांसारिक विषयासक्त अनेक प्राणियों को धर्मोपदेश द्वारा भवबन्धन से मुक्त किया ॥ ४ ॥

इसी तरह महान् ऋद्धिबल के स्वामी महादेव स्थविर ने महिषमण्डल (वर्तमान–खानदेश, नर्मदा से दक्षिण) प्रदेश में जाकर वहाँ की धर्मप्राण जनता को, धर्म के प्रति प्रेरित कर, नरक की तरफ जाने से रोक कर, भवबन्धन से मुक्त कराया ॥ ५ ॥

इसी तरह दूसरे रक्षित नामक महास्थविर ने, जो कि विकुर्वणा (ऋद्धिबल) में अद्वितीय थे, आकाशमार्ग से जाकर अनमतग्गियसुत्त का उपदेश किया ।

[यहाँ वस्तुतः 'वेहासं' पाठ न होकर 'वनवासं' पाठ होना चाहिये तब अर्थ होगा- "वनवास (कर्नाटक) प्रदेश में जाकर अनमतग्गियसुत्त का उपदेश किया" । इस तरह इस प्रकरण से 'महावंस' ग्रन्थ में आये इस प्रकरण की समानता बैठेगी] ॥ ६ ॥

अपरान्तक प्रदेश (वर्तमान में महाराष्ट्र) में यवनक धर्मरक्षित को भेजा, उन्होंने वहाँ धर्मजिज्ञासु जनता को अग्निस्कन्धोपम सूत्र का उपदेश किया, जिससे वे धर्म के आचरण में व्यापृत हुए ॥ ७ ॥

इसी तरह, महाधर्मरक्षित को (अवशिष्ट) महाराष्ट्र प्रदेश की तरफ भेजा, जहाँ उस ऋद्धिमान् स्थविर ने **नारदकाश्यप जातक** का उपदेश कर प्राणियों के सांसारिक कष्ट दूर किये ॥ ८ ॥

महारक्खितत्थेरो पि योनकलोकं पसादयि ।
कालकारामसुत्तन्तकथाय च महिद्धिको ॥ ९ ॥

कस्सपगोत्तो[1] यो थेरो मज्झिमो च दुरासदो ।
सहदेवो मूलकदेवो हिमवन्ते[2] यक्खगणं पसादयुं ॥ १० ॥

सुवण्णभूमिं गन्त्वान सोणुत्तरा[3] महिद्धका[3] ।
निद्धमित्वा पिसाचे[4] पि मोचेसि बन्धना बहू ॥ ११ ॥

लङ्कादीपवरं गन्त्वा महिन्दो अत्तपञ्चमो ।
सासनं थावरं कत्वा मोचेसि बन्धना बहू ॥ १२ ॥

नानादेसधम्मप्पसादो नाम अट्ठमो परिच्छेदो ॥
भाणवारो अट्ठमो निट्ठितो ॥

●

1. ० च- रो. ।
2. सी. नत्थि ।
3-3 सोणुत्तरो महिद्धिको- सी. ।
4. पिसाचगणे–रो. ।

यवनक प्रदेश में महारक्षित स्थविर को भेजा गया । वहाँ उन्होंने **कालकारामसुत्त** की कथा का वाचन कर प्राणियों को धर्म के प्रति जागरूक किया ॥ ९ ॥

हिमालय-प्रदेश के यक्षगणों में धर्म के प्रति श्रद्धोत्पाद के लिये अन्य धर्मावलम्बियों द्वारा दुष्प्रधर्ष मध्यम स्थविर को काश्यपगोत्र, सहदेव, एवं मूलकदेव स्थविर साथ देकर भेजा गया ॥ १० ॥

महर्धिक शोण एवं उत्तर स्थविरों ने सुवर्णभूमि (वर्तमान–वर्मा) जा कर, वहाँ पिशाचों (राक्षसों) का दमन कर अनेक प्राणियों के हृदय में धर्म के प्रति श्रद्धा उत्पन्न कर उन्हें भवबन्धन से छुड़ाने का प्रयास किया ॥ ११ ॥

इसी तरह, महेन्द्र शिविर ने अपने साथ चार अन्य स्थविरों को लेकर शासन की स्थिरता हेतु लङ्का द्वीप में जाकर वहाँ ऐसी प्रबल रीति से धर्म-प्रचार किया कि वहाँ की समग्र जनता ही धर्मसरोवर में पुण्यस्नान करने लगी । उसके प्रभाव से उनमें से अनेक ने अपने को भवबन्धनमुक्त कर लिया ॥ १२ ॥

नानादेशों में श्रद्धोत्पादवर्णन नामक
अष्टम परिच्छेद समाप्त ॥

(यही कथा महावंस के द्वादश परिच्छेद में बहुत विस्तारपूर्वक कही गयी है-अनु.)

●

९.

नवमो परिच्छेदो

(विजयागमनं)

लङ्कादीपो अयं अहु सीहेन सीहला इति ।
दीपुपप्पत्तिं इमं वंसं सुणाथ वचनं मम ॥ १ ॥

वङ्गराजस्सायं धीता अरञ्ञे वनगोचरा ।
सीहसंवासमन्वाय भातरो जनयी दुवे ॥ २ ॥

सीहबाहु सीवली च कुमारा चारुदस्सना ।
माता च सुसीमा नाम पिता च सीहसव्हयो ॥ ३ ॥

अतिक्कन्ते सोळसवस्से निक्खमित्वा गुहन्तरा ।
मापेसि नगरं तत्थ सीहपुरं वरुत्तमं ॥ ४ ॥

लाळरट्ठे तहिं राजा सीहपुत्तो महब्बलो ।
अनुसासि महारज्जं सीहपुरवरुत्तमे ॥ ५ ॥

[S.49, R.55] बत्तिसं भातरो होन्ति सीहपुत्तस्स अत्रजा ।
विजयो च सुमित्तो च सुभजेट्ठभातरा अहुं ॥ ६ ॥

विजयो[1] सो कुमारो तु[2] पगब्भो [3]चासिकक्खळो[3] ।
करोति विलोपकम्मं अतिकिच्छं सुदारुणं ॥ ७ ॥

समागता जानपदा नेगमा च समागता ।
उपसङ्कम्म राजानं विजयदोसं पकासयुं ॥ ८ ॥

---

1. ० नाम- रो. ।
2. रो. नात्थि ।
3. आसि असिक्खितो- रो. ।

नवम परिच्छेद

(विजय का लङ्का में आगमन)

यह लङ्का द्वीप 'सिंह' नाम की प्रधानता के कारण 'सीहल' इस नाम से भी लोक में विख्यात हो गया । अतः अब इस द्वीप की उत्पत्ति, इस द्वीप पर राज्य करने वाले राजाओं के वंश-वर्णन की कथा सुनिये, जिसे मैं कहने जा रहा हूँ ॥ १ ॥

वन में जाती हुई, वङ्गराज की किसी कन्या (सुसीम) ने सिंह के साथ सहवास करके दो सन्तानें पैदा कीं ॥ २ ॥

राजा सिंहबाहु– उन में कुमार का नाम था 'सिंहबाहु' एवं कुमारी का नाम था 'सीवली' । दोनों ही दीखने में सुन्दर थे । इनकी माता का नाम था 'सुसीमा' और पिता का नाम था 'सिंह' ॥ ३ ॥

सोलह (१६) वर्ष बाद उन लोगों नें उस सिंह की गुफा से निकलकर लाडराष्ट्र (प्रदेश) में जाकर वहाँ एक नगर 'सिंहपुर' नाम से बसाया ॥ ४ ॥

उस श्रेष्ठ सिंहपुर में उस महाबली सिंहपुत्र (सिंहबाहु) ने अपना राज्य स्थापित किया ॥ ५ ॥

उस सिंहपुत्र के बत्तीस (३२) सन्तानें हुईं । ये सभी पुत्र थे । विजय और सुमित्र उन बत्तीसों में योग्य एवं ज्येष्ठ थे ॥ ६ ॥

विजयकुमार– उनमें भी ज्येष्ठ विजयकुमार प्रगल्भ (चतुर) परन्तु कर्कश स्वभाव वाला था । वह अपने दुष्कृत्यों से सामान्य नागरिकों को बहुत अधिक कष्ट देता था ॥ ७ ॥

तब वे उस दुष्ट विजय से त्रस्त नागरिक राजा के पास गये और उनसे विजय द्वारा दिये कष्टों का निवेदन किया ॥ ८ ॥

तेसं तं[1] वचनं सुत्वा[2] राजा कुपितमानसो ।
आणापेसि अमच्चानं "कुमारं नीहरथ इमं ॥ ९ ॥

परिचारिका इमे सब्बे पुत्तदारा च बन्धवा ।
दासिदासकम्मकरे नीहरन्तु जनपदा" ॥ १० ॥

ततो तं नीहरित्वान विसुं कत्वान बन्धवे ।
आरोपेत्वान ते नावं वुय्हित्थ अण्णवे तदा ॥ ११ ॥

"पक्कमन्तु यथाकामं होन्तु सब्बे अदस्सनं ।
रट्ठे जनपदे वासं मा पुन आगमिच्छथा" ॥ ति" ॥ १२ ॥

कुमारो[3] आरुळ्ह नावा गता दीपं अदस्सनं[4] ।
नामधेय्यं तदा आसि नग्गदीपं ति वुच्चति ॥ १३ ॥

महिलानं आरुळ्ह नावा गता दीपं अवस्सकं ।
नामधेय्यं तदा आसि महिलारट्ठं ति वुच्चति ॥ १४ ॥

पुरिसानं आरुळ्ह नावा उपलवन्ता[5] च[5] सागरं ।
विप्पनट्ठा दिसामूळ्हं गता सुप्पारपट्टनं ॥ १५ ॥

ओरोहित्वान सुप्पारं सत्तसतं च ते तदा ।
विपुलं सक्कारसम्मानं अकंसु ते सुप्पारका ॥ १६ ॥

तेसु सक्करियमानेसु विजयो च सहायका ।
सब्बे लुद्दानि कम्मानि कुरुमाना नबुज्झका ॥ १७ ॥

पाणं अदिन्नं परदारं मुसावादं च पेसुनं ।
अनाचारं च दुस्सील्यं आचरन्ति सुदारुणं ॥ १८ ॥

कक्खळं फरुसं[6] घोरं कम्मं कत्वा सुदारुणं ।
उज्झायेत्वान मन्तिंसु "खिप्पं घातेम धुत्तके" ॥ १९ ॥

---

1. रो. नत्थि ।
2. सुत्वान- रो. ।
3. कुमारानं- रो. ।
4. अवस्सकं- रो. ।
5. अपिलवन्ता व- रो. ।
6. फलसं- री. ।

राजा ने उन नागरिकों की व्यथा-कथा सुनकर विजय पर क्रुद्ध होते हुए अपने अधिकारियों को आदेश दिया कि "इस विजयकुमार को राज्य से बाहर निकाल दो । साथ ही उसके बन्धु-बान्धव, साथी-सहायक, स्त्री-पुत्र–सभी को देश से बहिष्कृत कर दो" ॥ ९-१० ॥

जम्बुद्वीप से निष्कासन– तब अधिकारियों ने उनको नगर से निकाल कर, उन को बाँध कर नाव में डाल कर नाव को समुद्र में छोड़ दिया ॥ ११ ॥

और कह दिया–'तुम जिधर चाहो उधर भाग जाओ । यहाँ कभी अपना मुख न दिखाना, न यहाँ आने की इच्छा ही करना "॥ १२ ॥

तब वह विजयकुमार अपने साथियों के साथ उस नाव पर ही बैठा हुआ ऐसे दूर द्वीप में चला गया जिसका नाम था 'नग्नद्वीप' ॥ १३ ॥

और उनकी महिलाएँ जिस नाव पर बैठ कर जिस द्वीप में पहुँची उस द्वीप का नाम पड़ा–'महिलाराष्ट्र' ॥ १४ ॥

वे पुरुष पुनः नाव से जाते हुए समुद्र में रास्ता भूल गये और शूर्पारक बन्दरगाह पहुँच गये ॥ १५ ॥

वे सात सौ आदमी शूर्पारक बन्दरगाह (जम्बुद्वीप का पश्चिमी तट) पर उतर गये । वहाँ शूर्पारकवासियों ने उनका बहुत स्वागत-सत्कार किया ॥ १६ ॥

उनका इतना स्वागत-सत्कार किये जाने पर भी, वे विजय एवं उनके साथी, वहाँ (शूर्पारक में) भी वही लूट-पाट आदि कुकृत्य बिना सोचे समझे करने लगे ॥ १७ ॥

वहाँ भी उन्होंने जीवहत्या, चौरी, परस्त्रीगमन, असत्य-भाषण, चुगलखोरी, आदि अनाचार एवं दौःशील्य (कुकर्म) करना प्रारम्भ कर दिया ॥ १८ ॥

उनके इन रूक्ष, कर्कश घोर दारुण कर्मों से उद्विग्न एवं त्रस्त होकर वहाँ के मूल निवासियों ने विचार किया कि "इन दुष्टों को तो तत्काल मार डालाना चाहिये" ॥ १९ ॥

ओजदीपो वरदीपो मण्डदीपो ति वा अहू ।
लङ्कादीपो च पण्णत्ति तम्बपण्णी ति जायति ॥ २० ॥

[R.56] परिनिब्बानसमये सम्बुद्धो[1] दिपदुत्तमो[2] ।
सीहबाहुस्सायं पुत्तो विजयो नाम खत्तियो ॥ २१ ॥

[S.50] लङ्कादीपं अनुप्पत्तो जहेत्वा जम्बुदीपकं ।
ब्याकासि बुद्धसेट्ठो सो राजा हेस्सति खत्तियो ॥ २२ ॥

ततो आमन्तयि[3] सत्था सक्कं देवानमिस्सरं ।
"लङ्कादीपस्स उस्सुक्कं मा पमज्जथ, कोसिय!" ॥ २३ ॥

सम्बुद्धस्स वचो सुत्वा देवराजा सुजम्पति ।
उप्पलवण्णस्स आचिक्खि दीपं आरक्खकारणं ॥ २४ ॥

सक्कस्स वचनं सुत्वा देवपुत्तो महिद्धिको ।
लङ्कादीपस्स आरक्खं सपरिसो पच्चुपट्ठाति ॥ २५ ॥

तयो मासे वसित्वान विजयो भारुकच्छके ।
उज्झायेत्वा जनकायं तमेव नावमारुहि ॥ २६ ॥

आरोहित्वा सकं नावं उप्लवन्ता[4] च[4] सागरं ।
उक्खित्ता वातवेगेन नदीमूळहा महाजना ॥ २७ ॥
लङ्कादीपमुपागम्म ओरोहित्वा थले ठिता ।
पतिट्ठिता धरणितले अतिजिघच्छता भवे [5] ॥ २८ ॥

पिपासिता किलन्ता च[6] पदसा गमनं अका[7] ।
उभो पाणीहि जन्नूहि योगं कत्वान[8] भूमियं[8] ॥ २९ ॥

---

1. सम्बुद्धे- रो. ।
2. दिपदुत्तमे- रो. ।
3. आमन्तयी- सी. ।
1.4.पिलवन्ता- रो. ।
5. हवे- रो. ।
6. व-सी. ।
7. जायति- रो. ।
8. कत्वा पुथुवियं - रो. ।

विजय का लङ्का में पहुँचना– तब वे (विजय आदि) वहाँ (शूर्पारक) से भाग कर ताम्रपर्णी बन्दरगाह (वर्तमान–जाफना) द्वीप पहुँचे जो समय समय पर ओजद्वीप, 'वरदीप', 'मण्डदीप' या 'लङ्काद्वीप' कहलाता रहा ॥ २० ॥

विजय के लिये भगवान् की भविष्यवाणी–महापरिनिर्वाण के समय, पुरुषश्रेष्ठ भगवान् सम्यक्सम्बुद्ध ने भविष्यवाणी की थी कि "यह सिंहबाहु का पुत्र विजयकुमार क्षत्रिय ॥ २१ ॥

जम्बुद्वीप छोड़ कर लङ्काद्वीप पहुँचकर अवश्य ही एक दिन वहाँ का राजा बनेगा" ॥ २२ ॥

तब उन्होंने देवराज इन्द्र से कहा–"लङ्काद्वीप के इस उत्साह (-वर्धन) में आप की तरफ से कोई भूल न होने पावे" ॥ २३ ॥

भगवान् के वचन सुनकर स्वर्गाधिपति देवराज इन्द्र ने तत्काल उत्पलवर्ण (श्यामवर्ण विष्णु) देवता को आदेश दिया कि वह द्वीप की रक्षा में कटिबद्ध रहे ॥ २४ ॥

तब देवराज इन्द्र की आज्ञा मानकर वह उत्पलवर्ण देवता अपने साथियों के साथ लङ्का द्वीप की रक्षा में जुट गया ॥ २५ ॥

उधर भरुकच्छ में तीन मास रहकर वह विजयकुमार वहाँ की जनता द्वारा उत्त्रस्त किये जाने पर फिर से आगे की यात्रा के लिये चल पड़ा ॥ २६ ॥

तब वे सभी अपनी नाव पर चढ़कर सागर पार करते हुए वायुवेग की तीव्रता से समुद्र से नदी की तरफ फेंक दिये गये । यों, विवशतः वे लङ्का द्वीप में आकर नाव से उतर कर भूमि (जमीन) पर बैठे । जब वे भूमि पर उतरे तो उन्हें बहुत भूख लगी थी ॥ २७-२८ ॥

इसी प्रकार वे प्यासे भी थे । अतः वे भूख-प्यास के कारण पैरों से चलने में असमर्थ हो चुके थे । वे अपने हाथ-पैरों के सहारे से आगे खिसकने लगे ॥ २९ ॥

मज्झे वुट्ठाय ठत्वान पाणी पस्सन्ति सोभणा ।
सुरत्तं पंसु भूमिभागे हत्थपाणिम्हि मक्खिते ॥ ३० ॥

नामधेय्यं तदा आसि तम्बपण्णीति तं अहू ।
पठमं नगरं तम्बपण्णि लङ्कादीपवरुत्तमे ॥ ३१ ॥

विजयो तहिं वसन्तो इस्सरियं अनुसासि सो ।
विजयो विजितो वा[1] पि स नामं अनुरकेन[1] च ॥ ३२ ॥

[S.50] अच्चुतगामि उपतिस्सो पठमं सो इधागतो ।
आकिण्णा नरनारीहि खत्तिया[2] च[2] समागता ॥ ३३ ॥

तहिं तहिं दिसाभागे नगरं मापेसि खत्तियो ।
[R.57] तम्बपण्णि दक्खिणतो नदीतीरे वरुत्तमे ॥ ३४ ॥

विजयेन मापितं नगरं समन्ता पुटभेदनं ।
विजितो विजितं मापेसि सो उरुवेलं मापयी ।
नक्खत्तनामको' मच्चो मापेसि अनुराधपुरं ॥ ३५ ॥
अच्चुतगामियो नाम उज्जेनिं तत्थ मापयि ।
उपतिस्सो उपतिस्सं नगरं सुविभत्तन्तरापणं ॥ ३६ ॥

इद्धं फीतं सुवित्थारं रमणीयं मनोरमं ।
लङ्कादीपव्हये रम्मे तम्बपण्णिम्हि इस्सरो ॥ ३७ ॥

विजयो नाम नामेन पठमं रज्जमकारयि[3] ।
आगते सत्तवस्सम्हि आकिण्णो जनपदो अहू ॥ ३८ ॥

अट्ठतिंसति वस्सानि रज्जं कारेसि खत्तियो ।
सम्बुद्धे नवमे मासे यक्खसेनं विधंसितं ॥ ३९ ॥

सम्बुद्धे पञ्चमे वस्से नागानं दमयी जिनो ।
सम्बुद्धे . अट्ठमे वस्से समापत्ति समापयि ॥ ४० ॥

1-1 च सो नावं अनुरक्खेन- रो. ।
2-2 बहू सब्बे- रो. ।
3. प्रकारयी-सी. ।

ताम्रपर्णी–बीच में विश्रामहेतु ठहरकर जब उन्होंने वालुकामय भूमि में पड़े अपने हाथों को रंगा हुआ देखा ॥ ३० ॥

तो उन्होंने उस स्थान का नाम 'ताम्रपर्णी' बोलना प्रारम्भ कर दिया । इस तरह उस लङ्का द्वीप में वह ताम्रपर्णी पहला नगर था ॥ ३१ ॥

जहाँ विजय ने वास करते हुए स्वामित्व (ऐश्वर्य) पूर्वक शासन किया । विजय कुमार ने अपने इस विजित (अधिकृत) देश का नाम अपने ही नाम पर विजितपुर रखा ॥ ३२ ॥

यहाँ सर्वप्रथम उतरनेवाले उस विजय के समूह में एक आदमी उपतिष्य भी था । उसके साथ ही उसके कुछ नर-नारी भी उतरे ॥ ३३ ॥

नगर-निर्माण– उन क्षत्रियों ने उस दिशाभाग में पृथक् पृथक् नगर बसाये । ताम्रमपर्णी नगर के दक्षिण में नदी के रम्य तट पर ॥ ३४ ॥

विजय ने नया नगर बसाया । उसके चारों तरफ प्राकार (परकोटा) बनवाया । विजित ने इसी नाम से नगर बसाया तथा नक्षत्र नामक अमात्य ने अनुराधपुर नगर बसाया ॥ ३५ ॥

वहाँ अच्युतगामी ने उज्जयिनीनगर बसाया । तथा उपतिष्य पुरोहित ने अच्छी तरह सुविभक्त कर उपतिष्यनगर बसाया ॥ ३६ ॥

इस तरह समृद्ध, धन-धान्यसम्पन्न, सुविस्तृत, रमणीय, मनोहर लङ्काद्वीप पर वह विजय प्रथम राजा बना ॥ ३७ ॥

आगामी सात वर्षों में वह जनपद जनाकीर्ण हो गया ॥ ३८ ॥

राजा विजय ने यहाँ लङ्का द्वीप पर अड़तीस (३८) वर्ष तक राज्य किया । भगवान् बुद्ध ने भी सम्बोधि-प्राप्ति के नौ (९) मास बाद यहाँ आ कर यक्षदमन किया था ॥ ३९ ॥

भगवान् बुद्ध ने बोधि-प्राप्ति के बाद पुनः पाँचवें (५) वर्ष में आकर यहां नागों का दमन किया था और आठवें (८) वर्ष में तीसरी बार यहाँ आकर समाधिसमापन्न हुए थे ॥ ४० ॥

इमानि तीणि ठानानि इधागमि तथागतो ।
सम्बुद्धे पच्छिमे वस्से विजयो इधमागतो ॥ ४१ ॥

मनुस्सावासं अकारयि सम्बुद्धो दिपदुत्तमो ।
अनुपादिसेसाय बुद्धो[1] निब्बुतो उपधिसङ्ख्ये ॥ ४२ ॥

परिनिब्बुतम्हि सम्बुद्धे धम्मराजे पभङ्करे ।
अड्ढतिंसति वस्सानि रज्जं कारयि खत्तियो ॥ ४३ ॥

दूतं पाहेसि सीहपुरं सुमित्तव्हयस्स सन्तिके ।
"लहुं आगच्छ तुम्हेको लङ्कादीपवरुत्तमं ॥ ४४ ॥

नत्थि कोचि ममच्चये इमं रज्जानुसासको ।
निय्यादेमि इमं दीपं ममं कतपरक्कमं" ॥ ४५ ॥

नवमो परिच्छेदो निट्ठितो ॥
भाणवारो नवमो निट्ठितो ॥

●

1. सम्बुद्धो–रो.।

लङ्का में ये तीन स्थान हैं जहाँ भगवान् भी अपने समय में आ चुके है । सम्बुद्ध के अन्तिम (परिनिर्वाण) वर्ष में राजा विजय इस लङ्का द्वीप में आये थे ॥ ४१ ॥

नरश्रेष्ठ भगवान् बुद्ध ने ही इस लङ्का द्वीप में मनुष्यों का आवास प्रारम्भ कराया था । यह कार्य करके ही भगवान् इस संसार से परिनिवृत्त हुए थे ॥ ४२ ॥

भगवान् के महापरिनिर्वाण के बाद राजा विजय ने यहाँ अड़तीस (३८) वर्ष राज्य किया ॥ ४३ ॥

सुमित्र के पास दूत-प्रेषण– राजा विजय ने अपनी अन्तिम (वृद्ध) अवस्था में अपने छोटे भाई सुमित्र के पास जम्बुद्वीप के सिंहपुर में एक दूत भेजा । और उससे कहलाया कि "तुम में से कोई एक शीघ्र ही लङ्का चला आवे ॥ ४४ ॥

ताकि मैं उसे राज्य-भार सौंप सकूँ ; क्योंकि यह राज्य मैने अपने पराक्रम से अर्जित किया है, अतः ऐसा न हो कि कोई दूसरा इस पर नियन्त्रण कर ले" ॥ ४५ ॥

नवम परिच्छेद समाप्त ॥

नवम भाणवार समाप्त ॥

●

(इस कथा के विस्तार के लिये '**महावंस**' का षष्ठ एवं सप्तम परिच्छेद देखें–अनु-1)

१0.

दसमो परिच्छेदो

(पण्डुकाभयराजुप्पत्ति)

[S. 52] पण्डुसक्कस्सायं धीता कच्चाना नाम खत्तिया ।
वंसानुरक्खनत्थाय[1] जम्बुदीपा इधागता ॥ १ ॥

अभिसित्ता खत्तियाभिसेकेन पण्डुवासमहेसिया ।
तस्सा संवासमन्वाय जायिसुं एकादसत्रजा ॥ २ ॥

अभयो तिस्सो च उत्तियो[2] तिस्सो असेलपञ्चमो ।
[R.58] विभातो रामो च सीवो मत्तो मत्तकलेन च ॥ ३ ॥

तेसं कनिट्ठधीता तु चित्ता नामा ति विस्सुता ।
रञ्जति जने दिट्ठे उम्मादचित्ता ति वुच्चति ॥ ४ ॥

सङ्घाभिसेकवस्सेन आगमि उपतिस्सगामके ।
परिपुण्णतिंसवस्सानि रज्जं आकरयि[3] खत्तियो ।
अमितोदनस्स नत्ता ते अहेसुं सत्त साकिया ॥ ५ ॥

रामो तिस्सो अनुराधो च महालि दीघावु रोहिणी ।
गामणी सत्तमो तेसं लोकनाथस्स वंसजा ॥ ६ ॥

पण्डुवासस्स अत्रजो अभयो नाम खत्तियो ।
वीसति चेव वस्सानि रज्जं कारेसि तावदे ॥ ७ ॥

---

1. कुलवंसा॰-रो॰ ।
2. उत्ति च-रो. ।
3. कारेसी-रो. ।

दशम परिच्छेद

(पण्डुकाभयराजा की उत्पत्ति)

राजा पाण्डुकाभय--वंश की परम्परा को सुरक्षित रखने हेतु जम्बुद्वीप (भारत) से यहाँ आयी पाण्डुशाक्य की पुत्री कच्चाना (कात्यायनी) नाम की क्षत्रियाणी को ॥ १ ॥

पाण्डुवास ने क्षत्रियों की पद्धति से अपनी महारानी के पद पर नियुक्त किया। दोनों के संवास से उनको ग्यारह (११) सन्तानें हुईं। (जिन में दश पुत्र थे और एक कन्या) ॥ २ ॥

उन (सन्तानों) के नाम क्रमशः ये थे; जैसे– १. अभय, २. तिष्य (प्रथम), ३. उत्तिय, ४. तिष्य (द्वितीय), ५. असेल, ६. विभात, ७. राम, ८. शिव, ९. मत्त एवं १०. मत्तकल। तथा ११. चित्ता नाम से प्रसिद्ध कन्या थी ॥ ३ ॥

यह कन्या इतनी रूपवती थी कि इसे देखने वाले का चित्त यह तत्काल अपनी ओर आकृष्ट (मुग्ध) कर लेती थी ॥ ४ ॥

वह राजा अपने राज्याभिषेक वाले वर्ष से ही उपतिष्य ग्राम को अपनी राजधानी बना कर वहीं से अपने अधीन समग्र राज्य का शासन करने लगा। यों उस राजा ने पूरे तीस (३०) वर्ष तक वहाँ राज्य किया ॥ ५ ॥

अमितोदन शाक्य के सात नाती थे। जैसे– १.राम, २. तिष्य, ३. अनुराध, ४. महालि, ५. दीर्घायु, ६. रोहिणी एवं ७ ग्रामणी। ये सातों ही भगवान् (बुद्ध) के वंशज (कुलोत्पन्न) थे ॥ ६ ॥

इस पाण्डुवास के पुत्र अभय क्षत्रिय ने यहाँ निरन्तर बीस (२०) वर्ष तक राज्य किया ॥ ७ ॥

दीघावुस्सत्रजो धीरो गामणि पण्डितो च सो[1]।
पण्डुवासं उपट्ठन्तो चित्तकञ्ञाय संवसि ॥ ८ ॥

तस्स संवासमन्वाय अजायि पण्डुसव्हयो।
अत्तानं अनुरक्खन्तो अवसि द्वारमण्डले ॥ ९ ॥

दसमो परिच्छेदो निट्ठितो ॥
भाणवारो दसमो निट्ठितो ॥

●

1. यो–री: ।

इसी बीच उक्त दीर्घायु के पुत्र ग्रामणी ने, जो कि अत्यधिक धीर-वीर एवं कुशल था, पण्डुवास की सेवा में रहते हुए उसकी चित्ता कन्या में अनुराग कर लिया ॥ ८ ॥

इसी अनुराग के बढते-बढते उन दोनों का संवास हो गया । उस संवास के कारण उनको पाण्डु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । वह (पुत्र) अपनी रक्षा के लिये बारह वर्ष राजप्रासाद के द्वारमण्डल में रहा ॥ ९ ॥

दसवाँ परिच्छेद समाप्त ॥
दसवां भाणवार भी समाप्त ॥

(इस संक्षिप्त कथा का विस्तार महावंश के अष्टम एवं नवम परिच्छेद में भी देखें-अनु. ।)

●

११.

एकादसमो परिच्छेदो

(राजाभिसेककण्डो)

[S. 53] अभयस्स वीसतिवस्से पकुण्डस्स वीसति अहु ।
सत्ततिंसवस्सो जातिया अभिसित्तो पकुण्डको ॥ १ ॥

अभयस्स वीसतिवस्से चोरो आसि पकुण्डको ॥ २ ॥

सत्तरसम्हि वस्सम्हि हन्त्वान सत्त मातुले ।
अभिसित्तो राजाभिसेकेन नगरे अनुराधपुरे ॥ ३ ॥

अतिक्कन्ते[1] दसवस्सम्हि सट्ठिवस्समनागते ।
ठपेसि गामसीमायो अभयानि गाळहं कारयि[2] ॥ ४ ॥

उभतो परिभुञ्जित्वा यक्खमानुसकानि च ।
अनूनानि सत्तति वस्सानि पकुण्डो रज्जमकारयि ॥ ५ ॥

पकुण्डस्स च अत्रजो मुठसीवो नाम खत्तियो ।
इस्सरो तम्बपण्णिम्हि सट्ठिवस्सं अकारयि ॥ ६ ॥

मुठसीवस्स अत्रजा अथञ्ञे दस भातुका ।
अभयो तिस्सो नागो च उत्ति मुत्ताभयेन च ॥ ७ ॥

[R. 53] मित्तो सिवो असेलो च तिस्सो किरेन ते दस ।
अनुलादेवी सीवली च मुठसीवस्स धीतरो ॥ ८ ॥

अजातसत्तु अट्ठमे वस्से विजयो इध मागतो ।
उदयस्स चुद्दसवस्सम्हि विजयो कालं कतो तदा ॥ ९ ॥

---

1. अभिक्कन्ते–सी. ।
2. कारयी-सी. ।

ग्यारहवाँ परिच्छेद

(राजा देवानाम्प्रिय तिष्य का अभिषेक)

राजा प्रकुण्डक--राजा अभय के बीस (२०) वर्ष तक शासनकाल के बाद पकुण्डक[1] जन्मतः बीस वर्ष का ही हुआ था ! अन्त में, यह पकुण्डक सैंतीस वर्ष की आयु में राज्याभिषिक्त हुआ ॥ १ ॥

अभय के शासन-काल के बीसवें वर्ष में यह प्रकुण्डक चौर (विद्रोही) बन गया ॥ २ ॥

सत्तरह (१७) वर्ष बाद, इस प्रकुण्डक ने अपने सात मामाओं को मार कर अनुराधपुर में अपना राज्याभिषेक कराया ॥ ३ ॥

इस (प्रकुण्डक) ने अपने शासन के दश वर्ष व्यतीत होने पर, आगामी साठ (६०) वर्षों में अपने राज्य के ग्रामों की सीमाएँ दृढ़ता से बाँधी ॥ ४ ॥

इस पकुण्डक ने दैविक एवं ऐहलौकिक (मानुषिक)--दोनों ही प्रकार के भोगों को भोगते हुए सत्तर (७०) वर्ष से अधिक समय तक राज्य किया ॥ ५ ॥

राजा मुटशिव--प्रकुण्डक के पुत्र मुटशिव ने ताम्रपर्णी का राजा बनकर वहाँ साठ (६०) वर्ष तक राज्य किया ॥ ६ ॥

इसी राजा मुटशिव के पुत्र दश भाई थे--१.अभय, २.तिष्य, ३.नाग, ४. उत्तिय, ५ मुक्त, ६ अभय, ७.मित्र, ८.शिव, ९.अशैल एवं १0 तिष्य । इसी मुटशिव को दो (२) पुत्रियाँ भी थी--१.अनुला देवी, और २. सीवली ॥ ७--८ ॥

लङ्काद्वीप के राजाओं का जम्बुद्वीप के राजाओं से सामयिक तुलनाक्रम--अजातशत्रु के राज्यकाल के आठवें(८) वर्ष में राजा विजय इस लङ्काद्वीप में आये थे । तथा उस अजातशत्रु के पुत्र उदयभद्र के राज्यकाल के चौदहवें (१४) वर्ष में उस (विजय) का देहावसान हुआ ॥ ९ ॥

---

1. महावंस में इस राजा का नाम 'पाण्डुकाभय' आया है ।

उदयस्स सोळसे वस्से पण्डुवासमभिसिञ्चयि ।
विजयस्स पण्डुवासस्स उभो राजानमन्तरे ॥ १० ॥

संवच्छरं तदा आसि तम्बपण्णि अराजिका ।
नागदासस्सेकवीसे[1] पण्डुवासो तदागतो ॥ ११ ॥

नागदासे[2] ठितेयेव अभयो प्यभिसिञ्चयि [2]।
एतेसं[3] सत्तरसे व वस्सानि चतुवीसति ॥ १२ ॥

[S. 54] चन्दगुत्ते चुद्दसे[4] वस्से गतो पण्डुकसव्हयो ।
चन्दगुत्तस्स चुद्दसवस्से मुटसीवमभिसिञ्चयि ॥ १३ ॥

असोकाभिसित्ततो सत्तरसवस्से[5] उपागते[5] ।
[6]मुटसीवो च्चयं पत्तो तस्मिं चेव च हायने[6] ॥ १४ ॥

हेमन्ते दुतिये मासे साळिहनक्खत्तमुत्तमे ।
देवानम्पियो[7] भिसिञ्चि[7] तम्बपण्णिम्हि इस्सरो ॥ १५ ॥

छातपब्बतपादम्हि वेळुयट्ठि ततो अहू ।
सेता रजतयट्ठी च लता कञ्चनसन्निभा ॥ १६ ॥

नीलं पीतं लोहितकं ओदातं च पभस्सरं ।
कालकं होति सस्सरीकं पुप्फसण्ठानतादिसं ॥ १७ ॥

तथापि पुप्फयट्ठि सा दिजयट्ठि तथेव[8] ते ।
दिजा यत्थ यथावण्णा एवं तत्थ वनप्पदे[9]॥ १८ ॥

[R.60] हया गजा रथा पत्ता आमलका वलयमुद्दिका ।
ककुधसदिसा नाम एते अट्ठ तदा मुत्ता ॥ १९ ॥

---

1. एकवीसं नागदासो–रो.
2.-2 अभयं पि नागदासस्स एकाभिसेकं सिञ्चयुं–रो. ।
3. रो. न दिस्सति ।
4. ०च. रो. ।
5.-5 सत्तरसवस्सो–अहु मुटसीवो तदागतो–रो. ।
6.-6 तम्हि सत्तरसे वस्से छमासे च अनागते-रो. ।
7.-7 अभिसित्तो देवानम्पियो-रो. ।
8. तथे-रो. ।
9. चतुप्पदे-रो. ।

उदय के सोलहवें (१६) वर्ष के शासन में पण्डुवास राजा का अभिषेक हुआ। यों विजय एवं पाण्डुवास--दोनों राजाओं के मध्य ॥ १० ॥

यह ताम्रपर्णी राज्य एक वर्ष तक विना राजा के ही रहा। (बिम्बिसार की परम्परा में हुए) राजा नागदास के शासनकाल के इक्कीसवें (२१) वर्ष में पण्डुवास (विजय के भाई सुमित्र का पुत्र) जम्बुद्वीप से लङ्काद्वीप आया ॥ ११ ॥

नागदास के शासनकाल के सत्तरहवें (१७) वर्ष में ही अभय का राज्याभिषेक हुआ। इसने चौबीस (२४) वर्ष राज्य किया ॥ १२ ॥

चन्द्रगुप्त के शासनकाल के चौदहवें वर्ष के शासनकाल में पाण्डुक का देहावसान हुआ। तथा इसी चन्द्रगुप्त के शासनकाल के चौदहवें वर्ष में ही मुटशिव का राज्याभिषेक हुआ ॥ १३ ॥

अशोक के राज्यकाल के सत्तरह (१७) वर्ष बीतने पर मुटशिव का देहावसान हुआ ॥ १४ ॥

देवानाम्प्रिय तिष्य–तथा उसी वर्ष हेमन्त ऋतु के दूसरे मास में उत्तर आषाढ़ नक्षत्र में देवानाम्प्रिय तिष्य का ताम्रपर्णी में राज्याभिषेक हुआ ॥ १५ ॥

उसका शासन काल इतना ऋद्धिसम्पन्न था कि उसी समय, छात पर्वत के नीचे वाले प्रदेश में **बेणुयष्टि** पैदा हुई। फिर एक श्वेतवर्णा **रजतयष्टि**, जो कि सुनहरे रंग की थी, पैदा हुई ॥ १६ ॥

फिर एक **पुष्पयष्टि** भी पैदा हुई जिस में नीले, पीले, लाल, श्वेत एवं चमकीले (प्रभास्वर) काले, शोभासम्पन्न फूलों के गुच्छे लगे हुए थे ॥ १७ ॥

फिर भी,वह पुष्पयष्टि 'द्विजयष्टि' कहलाती थी। क्योंकि जिस समय जिस वर्ण के द्विज पैदा होते थे उसी वर्ण की वह द्विजयष्टि भी होती थी ॥ १८ ॥

साथ ही (उसके शासनकाल में) हाथी, घोड़े, रथ, पदाति, आँवला, कङ्कण, अंगूठी एवं ककुध (पाकड़) फल के समान मोटे मोती भी –यों आठ प्रकार के पैदा हुए ॥ १९ ॥

उप्पन्ने देवानम्पिये तस्साभिसेकतेजसा ।
तयो मणी आहरिंसु मलया च जनपदा ॥ २० ॥

तयो यट्ठी छातपादा अट्ठ मुत्ता समुद्दका ।
मणियो मलया जाता राजारहा महाजना ।
देवानम्पियपुञ्ञेन अन्तो सत्ताहमाहरुं ॥ २१ ॥

दिस्वान राजा रतनं महग्घं च महारहं ।
असमं अतुलं रतनं अच्छरियं पि दुल्लभं ॥ २२ ॥

पसन्नचित्तो गिरमब्भुदीरयि,
"अहं सुजातो कुलिको[1] नरिस्सरो[2] ।
सुचिण्णकम्मस्स ममेदिसं फलं,
बहू[3] सहस्सादिक[4] सम्पदागमुं ॥ २३ ॥

[S.55] "मया[5] सुलद्धं कतपुञ्ञसम्पदं,
भवे समत्थो लभितुं च को नु खो ।
भवप्पतिट्ठं रतनत्तयं विना,
न जीवितुं मे मनसानुबन्धनं[5] ॥ २४ ॥

"माता पिता च भाता वा ञातिमित्ता सखा च मे ?"
इति राजा विचिन्तेन्तो असोकं खत्तियं सरि ॥ २५ ॥

देवानम्पियतिस्सो च धम्मासोको नराभिभू ।
अदिट्ठसहाया उभो कल्याणा दळहभत्तिका ॥ २६ ॥

"अत्थि मे पियसहायो जम्बुदीपस्स इस्सरो ।
असोकधम्मो महापुञ्ञो सखा पाणसमो मम ॥ २७ ॥

---

1. कुलिनो-रो. ।
2. नरग्गो-रो. ।
3. रतनं.-रो. ।
4. सतहस्सजातिकं-रो. ।
5.-5 लद्धं मम पुञ्ञकम्मसम्भवं । को मे अरहति रतनानं अभिहारं सम्पटिच्छितुं ।।-रो.

देवानाम्प्रिय तिष्य के राज्याधिरोहण के बाद ही उसके पुण्य प्रताप से मलय (पर्वत) प्रदेश में तीन अमूल्य मणियाँ निकलीं ॥ २० ॥

छातपर्वत के मूल में, तीन यष्टियाँ और समुद्र से आठ प्रकार के मोती भी निकले । इन, पर्वत प्रदेश में उत्पन्न, राजाओं के पास ही रहने योग्य मणि आदि को वहाँ के रहने वाले नागरिकों ने देवानाम्प्रिय तिष्य के पास पहुँचा दिया ॥ २१ ॥

इन महँगे अमूल्य, अनुपम एवं अतुलनीय अत एव दुर्लभ रत्नों को देख कर राजा आश्चर्यचकित रह गया ॥ २२ ॥

इन्हें देखकर प्रसन्नचित्त राजा ने यह कहा--"मैं अच्छी जाति एवं कुल में उत्पन्न होकर राजा बना हूँ । मेरे पूर्वजन्म के कर्मों के पुण्य का ही यह फल है कि मुझे यह अयाचित दुर्लभ एवं अनमोल सम्पदा उपलब्ध हुई है ॥ २३ ॥

"यह जो मैने पूर्वजन्मों के पुण्य फल से अमूल्य सम्पदा प्राप्ति की है इसे इस संसार में मैं ही प्राप्त कर सकता था । किसी दूसरे को इस का मिलना असम्भव था। यह संसार में रहने का एक आलम्बन है । इस के विना कौन जीवित रह सकता है ! यह तो मेरे हृदय में स्थान बना बैठी है" ॥ २४ ॥

तब राजा देवानाम्प्रिय तिष्य को अपने माता-पिता, भाई, नाती, रिश्तेदार (सम्बन्धी) मित्र सभी के विषय में सोचते हुए महाराज धर्माशोक का स्मरण हो आया ॥ २५ ॥

ये दोनों राजा–देवानाम्प्रिय तिष्य एवं महाराज धर्माशोक, दोनों परस्पर मित्र थे, सहायक थे, एक-दूसरे का हित चाहते थे । यद्यपि इन दोनों में से किसी ने भी एक दूसरे को नहीं देखा था ॥ २६ ॥

तब राजा देवानाम्प्रिय तिष्य ने सोचा--"जम्बुद्वीप का अधिपति, महापुण्यवान् महाराज धर्माशोक मेरा प्रिय मित्र है, यह मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय है ॥ २७ ॥

"सो मे[1] अरहति[1] रतनानं अभिहारं पटिच्छितुं [2]।
अहं पि दातुं अरहामि अग्गं सासनसम्पदं[3] ॥ २८ ॥

"उट्ठेहि, कत्तार, तरमानो आदाय रतनं इमं।
जम्बुदीपव्हयं गन्त्वा नगरं पुप्फनामकं।
अग्गरतनं पयच्छेहि असोकं मम सहायकं" ॥ २९ ॥

[R.61] महाअरिट्ठो सालो च ब्राह्मणो परन्तपब्बतो।
पुत्तो तिस्सो च गणको [4]पाहेसि चतुरो इमे[4] ॥ ३० ॥

पभस्सरमणि तयो अट्ठ मुत्तावरानि च।
पतोदयट्ठित्तयं चेतं सङ्खरतनमुत्तमं ॥ ३१ ॥

बहुरतनं परिवारेन पाहेसि देवानम्पियो।
अमच्चं सेनापतिं अरिट्ठं सालं च परंचपब्बतं ॥ ३२ ॥

पुत्तं तिस्सगणकं च हत्थे पाहेसि खत्तियो।
छत्तं चामरसङ्खं च वेठनं कण्णभूसनं ॥ ३३ ॥

गङ्गोदकं च भिङ्कारं सङ्खं च सिविकेन च।
नन्दियावट्टं वड्ढमानं राजाभिसेके पेसिता ॥ ३४ ॥

अधोवितं वत्थयुगं अग्गं च हत्थपुञ्छनं।
हरिचन्दनं महग्घं अरुणवण्णमत्तिकं ॥ ३५ ॥

हरीतकं आमलकं इमं सासनं पि पेसयि।
"बुद्धो दक्खिणेय्यानग्गो धम्मो अग्गो विरागिनं ॥ ३६ ॥

[S.56] सङ्घो च पुञ्ञक्खेत्तग्गो तीणि अग्गा सदेवके।
इमं चाहं नमस्सामि उत्तमत्थाय खत्तियो" ॥ ३७ ॥

1.-1 रभति-सी.।
2. सम्पटिच्छितुं-रो.।
3. सासनं धनं-रो.।
4.-4 इमे चतुरो दूते पाहेसि देवानम्पियो-रो.।

वही इन अमूल्य रत्नों का उपहार पाने योग्य हैं, मैं भी उसे ही यह सब कुछ दे सकता हूँ; क्योंकि वह धर्म के प्रति अत्यन्त श्रद्धालु है" ॥ २८ ॥

तब उसने अपने उच्चतम अधिकारी मन्त्री को तत्काल आज्ञा दी--" अरे अधिकारिन्! तुम शीघ्रता से इस रत्नराशि को ले जाकर जम्बुद्वीप के पुष्पपुर (पाटलिपुंत्र) में मेरे मित्र राजा धर्माशोक की सेवा में उपहारस्वरूप (भेंट में) दे आओ" ॥ २९ ॥

एतदनन्तर अपने महाअरिष्ट नामक प्रधानमन्त्री, साल ब्राह्मण (पुरोहित) एवं परन्तपर्वत नामक गणक एवं सेनापति--इन चार अधिकारी पुरुषों को ॥ ३० ॥

ये तीन तरह की मणियाँ, आठ बृहदाकार मोती, तीन प्रतोद (चाबुक) के आकार वाली यष्टियाँ, उत्तम रत्न ॥ ३१ ॥

साथ ही अन्य बहुमूल्य रत्नराशि के साथ राजा देवानम्प्रिय तिष्य ने अमात्य सेनापति अरिष्ट, साल, परन्तपर्वत एवं पुत्र तिष्य को गणक के रूप में, उनके हाथ छत्र, चामर,शङ्ख, वेष्टन, कर्णाभूषण ॥ ३२--३३ ॥

पवित्र नदियों का जल, जलपात्र (भृङ्गार), नन्द्यावर्त शङ्ख भिजवाये तथा साथ ही राज्याभिषेक के लिये बधाई सन्देश आदि भिजवाये ॥ ३४ ॥

साथ ही बिना धोये (नवीन) वस्त्रयुगल (धोती जोड़ा), श्रेष्ठ रुमाल (हाथ पोंछना) महँगा हरिचन्दन, लाल मिट्टी ॥ ३५ ॥

हरीतकी एवं माला--ये वस्तुएँ सङ्घ के लिये भिजवायीं । साथ ही उसने यह निवेदन भी किया--"दान देने के लिये 'बुद्ध' ही सर्वश्रेष्ठ है । वैराग्येच्छुकों के लिये बुद्धोपदिष्ट 'धर्म' ही श्रेष्ठ है ॥ ३६ ॥

इसी तरह, पुण्य कर्मों की उत्पादभूमि एकमात्र 'सङ्घ' ही है । ये तीन ही देवताओं सहित इस लोक में सर्वश्रेष्ठ हैं । अतः मैं भी इन तीनों को शुभ फल-प्राप्ति हेतु एवं राजा को भी प्रणाम करता हूँ" ॥ ३७ ॥

पञ्च मासे वसित्वान ते दूता चतुरो जना ।
आदाय ते पण्णाकारं धम्मासोकेन[1] पेसितं ॥ ३८ ॥

वेसाखमासे द्वादसियं[2] जम्बुदीपा इधागता ।
अभिसेकं सपरिवारं धम्मासोकेन[3] पेसितं ॥ ३९ ॥

दुतियं अभिसिञ्चित्थ राजानं देवानम्पियं ।
अभिसित्तो दुतियाभिसेको विसाखमासे उपोसथे ॥ ४० ॥

ततो[4] मासं[4] अतिक्कम्म जेट्ठमासे उपोसथे ।
महिन्दो सत्तमो हुत्वा जम्बुदीपा इधागतो ॥ ४१ ॥

राजाभिसेककण्डो निट्ठितो ॥
एकादसमो परिच्छेदो निट्ठितो ॥
भाणवारो एकादसमो निट्ठितो ॥

●

1. असोकधम्मेन-रो. ।
2. द्वादसपक्खे-रो. ।
3. असोकधम्मेन-रो. ।
4-4. तयो मासे सी., रो. ।

यों वे राजा के दूत के रूप में चारों अधिकारी पाँच मास तक निरन्तर पाटलिपुत्र में ससम्मान रहे । फिर महाराजा धर्माशोक द्वारा बदले में दिये गये उपहारों को लेकर ॥ ३८ ॥

वैशाख मास की द्वादशी तिथि को जम्बुद्वीप से यहाँ (लङ्काद्वीप में) आ गये तथा महाराज धर्माशोक द्वारा प्रेषित अभिषेकराशि से राजा देवानाम्प्रिय तिष्य का पुनः (दुबारा) राज्याभिषेक किया ॥ ३९ ॥

राजा का यह द्वितीय अभिषेक वैशाखमास के उपोसथ (पूर्णिमा) के दिन हुआ ॥ ४० ॥

पुनः इस अभिषेकोत्सव के एक मास बाद, ज्येष्ठ मास के उपोसथ (पूर्णिमा) के दिन पुरुषश्रेष्ठ महेन्द्रस्थविर लङ्का में पधारे ॥ ४१ ॥

राजा का अभिषेक वर्णन समाप्त ॥

एकादशपरिच्छेद समाप्त ॥

एकादश भाणवार भी समाप्त ॥

(इस कथा के विस्तृत एव तुलनात्मक अध्ययन के लिये 'महावंश' ग्रन्थ का एकादश परिच्छेद भी द्रष्टव्य है । –अनु0)

●

१२.

द्वादसमो परिच्छेदो

(महिन्दत्थेरागमनं)

[57; R.62] वालवीजनिमुण्हीसं खग्गं छत्तं च पादुकं ।
वेठनं सारपामङ्गं भिङ्कारं नन्दिवट्टकं ॥ १ ॥

सिविकं[1] गङ्गोदकं सङ्खं वत्थकोटिं अधोविमं[1] ।
सुवण्णपातिं कटच्छुं च महग्घं हत्थपुञ्छनिं ॥ २ ॥

अनोतत्तोदकं काजं उत्तमं हरिचन्दनं ।
अरुणवण्णमत्तिकं अञ्जनं नागमाहटं ॥ ३ ॥

हरीतकं आमलकं महग्घं अमतोसधं ।
सट्ठिवाहसतं सालिं सुगन्धं सुकमाहटं ।
पुञ्ञकम्माभिनिब्बतं पाहेसि सोकसव्हयो ॥ ४ ॥

"अहं बुद्धं च धम्मं च सङ्घं च सरणं गतो ।
उपासकत्तं देसेमि सक्यपुत्तस्स सासने ॥ ५ ॥

इमेसु तीसु वत्थूसु उत्तमे जिनसासने ।
त्वं पि चित्तं पसादेहि, सरणं उपेहि सत्थुनो" ॥ ६ ॥

इमं सम्भावनं कत्वा धम्मासोको[2] महायसो ।
पाहेसि देवानम्पियस्स गतदूतेन ते सह ॥ ७ ॥

असोकारामे पवरे बहू थेरा महिद्धिका ।
लङ्कातलानुकम्पाय महिन्दं एतदब्रवुं ॥ ८ ॥

1.-1 सङ्खं गङ्गोदकं अधोविमं वत्थकोटियं-रो. ।
2. असोकधम्मो-रो. ।

बारहवाँ परिच्छेद

(जम्बुद्वीप से महेन्द्रस्थविर का आगमन)

राजा को उपहार--चँवर, राजमुकुट (उष्णीष), खड्ग, छत्र, चरणपादुका, वेष्टन (कमरपट्टा),सारपामङ्ग (कण्ठहार), जलपात्र, नन्द्यावृत्त शङ्ख ॥ १ ॥

पालकी (शिविका), गङ्गा सहित पवित्र नदियों का जल, बिना धोया (अधौत=नवीन) वस्त्रयुगल (धोती-जोड़ा), (भोजनहेतु) सोने की थाली, चम्मच (कटच्छु), महँगा रुमाल ॥ २ ॥

अनवतप्तदह से लाये गये जल से भरा घड़ा, उत्तम चन्दन, लाल मृत्तिका, नागराज द्वारा प्रेषित अञ्जन का कुछ भाग ॥ ३ ॥

हरीतकी, आमला, अमृता औषध (गिलोय), साठ (६0) वाह (धान का एक्र माप) सुगन्धित एवं शुकों द्वारा लाया गया शालि धान आदि सभी सामग्रियाँ, जो कि उन्हें भी अपने पुण्य कर्मों के प्रभाव से ही मिली थीं, धर्मराज अशोक ने देवानाम्प्रिय तिष्य के पुनः राज्याभिषेक के शुभ अवसर पर भिजवायीं ॥ ४ ॥

राजा को सन्देश--और साथ ही एक महत्वपूर्ण सन्देशपत्र भी राजा के नाम भिजवाया--"मैने बुद्ध, धर्म एवं सङ्घ की शरण ग्रहण कर ली है, मैं शाक्यपुत्र के शासन में उपासक बन गया हूँ ॥ ५ ॥

"आप भी अपने चित्त में उन तीनों के प्रति श्रद्धा उत्पन्न कर लें । तथा उन की शरण ग्रहण कर ले । क्योंकि इन तीनों की शरण में जाना एवं इस धर्म का उपासक बनना ही लोक में सर्वश्रेष्ठ कर्म है" ॥ ६ ॥

यों पूर्ण सम्मान(=सम्भावना) के साथ महान् यशस्वी महाराज अशोक ने उन देवानाम्प्रिय तिष्य के दूतों के साथ वह उपहार-सामग्री भिजवायी[1] ॥ ७ ॥

महेन्द्र को लङ्का जाने हेतु सङ्घ का आदेश--पाटलिपुत्र के श्रेष्ठ अशोकाराम विहार में एकत्र हुए बहुत से ऋद्धिसम्पन्न स्थविरों ने लङ्काद्वीप पर अनुकम्पाहेतु महेन्द्र स्थविर को यों कहा-- ॥ ८ ॥

---

1. इस कथा का विस्तार महावंस ग्रन्थ के एकादश परिच्छेद के अन्त में भी देखें--अनु० ।

"समयो लङ्कादीपम्हि पतिट्ठापेतु सासनं ।
गच्छतु त्वं, महापुञ्ञ, पसादं दीपलङ्कतं" ॥ ९ ॥

पण्डितो सुतसम्पन्नो महिन्दो दीपजोतको ।
सङ्घस्स वचनं सुत्वा सम्पटिच्छि सहग्गणो ॥ १० ॥

एकंसं चीवरं कत्वा पग्गहेत्वान अञ्जलिं ।
अभिवादयित्वा सिरसा गच्छामि दीपलङ्कतं ॥ ११ ॥

महिन्दो नाम नामेन सङ्घत्थेरो तदा अहू ।
इट्टियो उत्तियो थेरा[1] भद्दसालो च सम्बलो ॥ १२ ॥

[R.63] सामणेरो च सुमनो छळभिञ्ञो महिद्धिको ।
इमे पञ्च महाथेरा छळभिञ्ञा महिद्धिका ॥ १३ ॥

[S.58] असोकाराममम्हा निक्खन्ता चरमाना सहग्गणा ।
अनुपुब्बेन चरमाना वेदिसगिरियं गता ।
विहारे वेदिस्सगिरे[2] वसित्वा यावदिच्छकं ॥ १४ ॥

मातरं अनुसासेत्वा सरणसीले उपोसथे ।
पतिट्ठापेसि सद्धम्मे सासने दीपवासिनं ॥ १५ ॥

सायण्हे पटिसल्लाना महिन्दत्थेरो महागणी ।
समयं वा असमयं वा विचिन्तेसि रहोगते ॥ १६ ॥

थेरसङ्कप्पमञ्ञाय सक्को देवानमिस्सरो ।
पातुरहु थेरसम्मुखे सन्तिके अज्झभासथ ॥ १७ ॥

"कालो ते हि, महावीर ! लङ्कादीपप्पसादनं ।
खिप्पं गच्छ! वरदीपं अनुकम्पाय पाणिनं ॥ १८ ॥

"लङ्कादीपवरं गच्छ धम्मं देसेहि पाणिनं ।
पकासय चतुसच्चं सत्ते मोचेहि बन्धना ॥ १९ ॥

1. थेरो-रो. ।
2. वेदिसगिरिम्हि–रो. ।

"महापुण्य! लङ्काद्वीप में बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार का समय आ गया है । अतः आप लङ्का द्वीप जा कर वहाँ के निवासियों में धर्मोपदेश द्वारा धर्म में श्रद्धा उत्पन्न करें" ॥ ९ ॥

पण्डित, शास्त्रमर्मज्ञ, द्वीप में धर्म ज्योति फैलाने वाले उन महेन्द्रस्थविर ने सङ्घ का उक्त आदेश सुनकर अपनी भिक्षुमण्डली के साथ लङ्काद्वीप जाना स्वीकार कर लिया ॥ १० ॥

और सङ्घ के सम्मुख चीवर को एक कन्धे पर करते हुए हाथ जोड़ कर सिर झुकाते हुए प्रणाम कर महेन्द्रस्थविर ने लङ्का-द्वीपगमन की स्वीकृति दी ॥ ११ ॥

महेन्द्र का लङ्का द्वीप को प्रस्थान--उस समय महेन्द्र स्थविर सङ्घ में 'सङ्घ-स्थविर' का पद प्राप्त कर चुके थे तथा इट्टिय, उत्तिय, भद्रशाल एवं सम्बल ॥ १२ ॥

एवं छह अभिज्ञाओं से युक्त, ऋद्धिसम्पन्न सुमन ये पाँचों भिक्षु 'महास्थविर' बन चुके थे ॥ १३ ॥

ये छह स्थविर अशोकारामविहार से निकल कर, साथ-साथ क्रमशः चारिका करते हुए, यथासमय विदिशा नगरी पहुँचे । वहाँ विदिशागिरिविहार मे यथाभीष्ट विश्राम कर ॥ १४ ॥

अपनी माता को धर्मोपदेश कर उन्हें त्रिशरण एवं पञ्चशील में परिनिष्ठित कर तथा द्वीपवासियों की धर्म एवं सङ्घ में श्रद्धातिरेक उत्पन्न कर ॥ १५ ॥

महेन्द्र स्थविर ने सायङ्काल एकान्त समाधि से उठ कर लङ्काद्वीप गमन के औचित्य एवं अनौचित्य पर चिन्तन किया ॥ १६ ॥

तब, देवेन्द्र शक्र, स्थविर का यह सङ्कल्प जान कर, स्थविर के सम्मुख प्रकट हुए, और यों बोले--॥ १७ ॥

"हे महान् शक्तिसम्पन्न! आप के लिये यही उचित अवसर है कि आप लङ्का द्वीप की जनता में धर्म के प्रति श्रद्धोत्पाद हेतु वहाँ पधारें । आप द्वीप के प्राणियों पर अनुकम्पा करने के लिये शीघ्र ही वहाँ पधारे ॥ १८ ॥

"आप लङ्का द्वीप जाइये और वहाँ के प्राणियों को धर्मोपदेश कीजिये । वहाँ भगवदुपदिष्ट आर्यसत्यचतुष्टय का उपदेश कीजिये जिससे वे भवबनन्धन से मुक्त होने में सफल हो सकें ॥ १९ ॥

"सासनं बुद्धजेट्ठस्स लङ्कादीपम्हि जोतय ।
ब्याकतं चसि नागस्स, भिक्खुसङ्घो च सम्मतो ॥ २० ॥

"अहं च वेय्यावतिकं लङ्कादीपस्स चागमे ।
करोमि सब्बकिच्चानि समयो पक्कमितुं तया" ॥ २१ ॥

सक्कस्स वचनं सुत्वा महिन्दो दीपजोतको ।
"भगवता सुब्याकतो भिक्खुसङ्घेन सम्मतो ॥ २२ ॥

"सक्को च मं समायाचि, पतिट्ठिस्सामि सासनं ।
गच्छामहं तम्बपण्णिं, निपुणा तम्बपण्णिका ॥ २३ ॥

"सब्बदुक्खक्खयं मग्गं न सुणन्ति सुभासितं ।
तेसं पकासयिस्सामि गमिस्सं दीपलङ्कतं" ॥ २४ ॥

कालञ्ञू समयञ्ञू च महिन्दो असोकत्रजो ।
गमनं लङ्कातलं ञत्वा आमन्तयि सहग्गणे ॥ २५ ॥

महिन्दो गणपामोक्खो समानुपज्झायके चतु ।
सामणेरो च सुमनो भण्डुको च उपासको ॥ २६ ॥

छन्नं च छळभिञ्ञाणं पकासेसि महिद्धिको ।
[R.64] "आयाम बहुलं अज्ज लङ्कादीपं वरुत्तमं ॥ २७ ॥

[S.59] पसादेम बहुसत्ते पतिट्ठापेस्साम सासनं" ।
"साधू" ति ते पटिस्सुत्वा सब्बे अत्तमना अहू ॥ २८ ॥

गच्छाम, भन्ते, समयो नगे मिस्सकनामके ।
राजा च सो निक्खमति कत्वान मिगवं पुरा ॥ २९ ॥

सक्को तुट्ठो वासविन्दो महिन्दथेरस्स सन्तिके ।
पटिसल्लानगतस्स इदं वचनमब्रवि* ॥ ३० ॥

---

* . एत्थ रो. पोत्थके–"मारिस, त्वं पि भगवता सुब्याकतो" ति आरब्भ "गच्छाम दीपलञ्जकं" ति गज्ज-पज्जमयो बहु पाठो दिस्सति, सो ततो व अवगन्तब्बो ।

"इस तरह आप लङ्काद्वीप में भगवान् बुद्ध की धर्मज्योति प्रज्वलित करें । आप के लङ्कागमन के विषय में भगवान् ने तो पहले ही कह रखा है । अब सङ्घ ने भी इसका अनुमोदन कर दिया है ॥ २० ॥

"मैं भी वहाँ जाने पर आप की सेवा करता रहूँगा । मैं आपके गमन की सब व्यवस्था कर दूँगा । अतः आप का वहाँ पधारने के लिये यही उचित समय है" ॥ २१ ॥

यों देवराज का कथन सुनकर द्वीपद्योतक महेन्द्र स्थविर ने भी सोचा--"मेरा लङ्काद्वीप जाना भगवान् द्वारा भी आज्ञप्त है तथा भिक्षुसङ्घ द्वारा भी अनुमोदित है ॥ २२ ॥

इन्द्र भी अभी इस विषय में मुझको उत्साहित कर गये हैं । अतः मुझे ताम्रपर्णी (लङ्काद्वीप) जाना ही चाहिये । वैसे ताम्रपर्णी के निवासी नागरिक भी सरल हृदय हैं ॥ २३ ॥

वे बुद्धधर्म में उपदिष्ट आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग के उपदेश को न सुनें--ऐसा नहीं है । वह उपदेश तो हितकारक एवं सुखदायक तथा समझने में सरल है । अतः मैं उन्हें लङ्कावासियों को धर्मोपदेश करने के लिये जाऊँगा ही" ॥ २४ ॥

ये अशोक के पुत्र महेन्द्र उचित अवसर और समय के ज्ञाता थे । अतः उन्होंने लङ्कागमन का यही उचित अवसर जान कर अपने गण (साथियों) से कहा--॥ २५ ॥

उसके गण (मण्डली) में ये भिक्षु थे--स्वयं महेन्द्र उस गण के प्रमुख थे उनके चार गुरुभाई तथा श्रामणेर सुमन, उपासक भण्डुक, ये छह लोग थे ॥ २६ ॥

ये सभी (६) षडभिज्ञ एवं ऋद्धिसम्पन्न थे । इन को महेन्द्र ने धर्मोपदेश द्वारा प्रोत्साहित कर अन्त में--"आओ, साथियो! श्रेष्ठ लङ्काद्वीप चला जाय ॥ २७ ॥

वहाँ धर्मोपदेश द्वारा लङ्का की जनता में धर्म के प्रति श्रद्धा बढ़ायेंगे । यों हमारे धर्म की भी अभिवृद्धि होगी"--यह कहा ।

साथियों ने "ठीक है" कह कर गमनहेतु अपनी प्रसन्नता प्रकट की ॥ २८ ॥

इसी समय--"पधारिये, भन्ते! अब लङ्काद्वीप चलने का उचित अवसर आ गया है । उधर लङ्का का राजा भी मिश्रक पर्वत पर मृगया (आखेट) हेतु आयगा" ॥ २९ ॥

समाधि में बैठे महेन्द्र स्थविर को देवराज इन्द्र (=वासव) ने यह बात कही ॥ ३० ॥

[R.65] "वेदिस्सगिरिये रम्मे वसित्वा तिंस रत्तियो ।
कालं च गमनं दानि गच्छाम दीपमुत्तमं" ॥ ३१ ॥

पलीना जम्बुदीपतो हंसराजा व अम्बरे ।
एवमुप्पतिता थेरा निपतिंसु नगुत्तमे ॥ ३२ ॥

पुरतो पुरसेट्ठस्स पब्बते मेघसन्निभे ।
पतिट्ठहिंसु मिस्सककूटम्हि हंसा व नगमुद्धनि ॥ ३३ ॥

महिन्दो नाम नामेन सङ्घत्थेरो तदा अहु ।
इट्टियो उत्तियो थेरो भद्दसालो च सम्बलो ॥ ३४ ॥

सामणेरो च सुमनो भण्डुको च उपासको ।
सब्बे महिद्धिका एते तम्बपण्णिपसादका ॥ ३५ ॥

तत्थ उप्पतितो थेरो हंसराजा व अम्बरे ।
पुरतो पुरसेट्ठस्स पब्बते मेघसन्निभे ॥ ३६ ॥

पतिट्ठितो मिस्सककूटम्हि हंसा व नगमुद्धनि ।
तस्मिं च समये राजा तम्बपण्णिम्हि इस्सरो ॥ ३७ ॥

देवानम्पियतिस्सो सो मुटसीवस्स अत्रजो ।
असोको अभिसित्तो च वस्सं अट्ठारसं अहू ॥ ३८ ॥

तिस्सस्स च अभिसित्ते सत्तमासे अनूनके ।
महिन्दो द्वादसे[1] वस्से[1] जम्बुदीपा इधागतो ॥ ३९ ॥

गिम्हानं पच्छिमे मासे छट्ठे मासे उपासथे ।
महिन्दो गणपामोक्खो मिस्सकगिरिमागतो ॥ ४० ॥

मिगवं निक्खमि राजा मिस्सकगिरिमुपागमि ।
देवो गोकण्णरूपेन राजानं अभिदस्सयि ॥ ४१ ॥

1.-1 द्वादसवस्सो-रो० ।

तब महेन्द्र स्थविर ने सोचा-"इस विदिशागिरि में रहते हुए हमने तीस (३०) रात्रियाँ सुखपूर्वक बितायीं । अब लङ्का चलने का उचित अवसर आ गया है, अतः तत्काल वहाँ चला जाय"॥ ३१ ॥

यों सोच कर वे छहों भिक्षु जम्बुद्वीप में अन्तर्हित (प्रलीन) होकर, आकाश में हंसपक्षी की तरह सरलता से उड़ते हुए उस मिश्रकूट पर्वत पर जा उतरे ॥ ३२ ॥

वह पर्वत नगर के समीप काले (जल वाले) मेघ की तरह शोभायमान था । उसी पर्वत के शिखर पर वे भिक्षु हंस की तरह सरलता से उतर गये ॥ ३३ ॥

वहाँ १. सङ्घस्थविर महेन्द्र, २. इट्टिय, ३. उत्तिय, ४. भद्रशाल, ५. सम्बल- ये पाँच भिक्षु, छठा सुमन श्रामणेर एवं सातवाँ भण्डुक उपासक-ये सात लोग धर्मप्रचार के लिये (भगवान् बुद्ध के बाद) सर्वप्रथम ताम्रपर्णी द्वीप में आये ॥ ३४--३५ ॥

वहाँ स्थविर महेन्द्र (जम्बुद्वीप से) हंसों की तरह आकाश में उड़कर नगर के सम्मुख काले मेघ के समान शोभित मिश्रक पर्वत के शिखर पर हंस पक्षी की तरह ही उतरे ॥ ३६ ॥

महेन्द्र के लङ्का-आगमन का कालसङ्केत--उस समय ताम्रपर्णी पर राजा मुटशिव के पुत्र राजा देवानाम्प्रिय तिष्य राज्य करते थे । यह समय वह था जब राजा धर्माशोक अपने शासन का अट्ठारहवाँ (१८) वर्ष बिता रहे थे ॥ ३७-३८ ॥

और राजा देवानाम्प्रिय तिष्य को, महेन्द्र के लङ्का-आगमन के समय, लङ्का पर शासन करते हुए बारह वर्ष व्यतीत (पूर्ण) करने में केवल सात मास अवशिष्ट थे । उस समय महेन्द्र स्थविर लङ्काद्वीप में पधारे थे ॥ ३९ ॥

(दूसरी तरह, इस काल का संकेत किया जाय तो वह यह है--)
ग्रीष्म ऋतु के छठे मास में या यों कहिये कि वर्ष के छठे उपोसथ के दिन ये महेन्द्र गणप्रमुख मिश्रक गिरि के शिखर पर उतरे थे ॥ ४० ॥

उधर इसी समय राजा देवानाम्प्रिय तिष्य आखेट खेलते हुए मिश्रक पर्वत के पास आ निकले । उस अवसर पर कोई देवता गोकर्ण (नीलगाय, मृगविशेष) के रूप में राजा को दिखायी दिया ॥ ४१ ॥

[R.66, S.60] दिस्वान राजा गोकण्णा तररूपो व पक्कमि ।
पिट्ठितो अनुगच्छन्तो पाविसि पब्बतन्तरं ॥ ४२ ॥

तत्थेव अन्तरधायि यक्खो थेरस्स सम्मुखा ।
निसिन्नं थेरं अदक्खि भीतो राजा अहू तदा ॥ ४३ ॥

"ममेव पस्सतु राजा एको एकं न भायति ।
समागते बलकाये अथो पस्सतु भिक्खूनं" ॥ ४४ ॥

तत्थद्दसं खत्तियभूमिपालं ,
पदुट्ठरूपं मिगवं चरन्तं ।
नामेन तं आलपि खत्तियस्स ,
"आगच्छ तिस्सा" ति तदा अवोच ॥ ४५ ॥

"कोयं कासाववसनो मुण्डो सङ्घाटिपारुतो ।
एको अदुतियो वाचं भासति मं अमानुसिं"* ॥ ४६ ॥

"समणा मयं, महाराज, धम्मराजस्स सावका ।
तमेव अनुकम्पाय जम्बुदीपा इधागता" ॥ ४७ ॥

आवुधं निक्खिपित्वान एकमन्तं उपाविसि ।
निसज्ज राजा सम्मोदि बहुं अत्थूपसंहितं ॥ ४८ ॥

सुत्वा थेरस्स वचनं निक्खिपित्वान आवुधं ।
ततो थेरं उपगन्त्वा सम्मोदित्वा च पाविसि ॥ ४९ ॥

अमच्चबलकायो च अनुपुब्बं समागता ।
परिवारेत्वान अट्ठंसु चत्तारीस सहस्सियो ॥ ५० ॥

दिस्वा निसिन्नथेरानं बलकाये समागते ।
अञ्ञे अत्थि बहू भिक्खू सम्मासम्बुद्धसावका ॥ ५१ ॥

---

* समणो ति मं मनुस्सलोके यं खत्तिय पुच्छसि भूमिपाल–रो. पोत्थके अधिकपाठो ।

राजा ने गोकर्ण (मृग) को देख कर शीघ्रता से उसका पीछा किया । उसका पीछा करते--करते वह राजा पर्वत के ऊपर चला गया ॥ ४२ ॥

वहाँ जाकर वह मृगरूप देवता अन्तर्हित हो गया । उसके बदले में राजा ने स्थविर को वहाँ विराजमान देखा । उन्हें अचानक देखकर राजा भयभीत हो गये ॥ ४३ ॥

स्थविर महेन्द्र यह सोचकर राजा के सामने एकाकी प्रकट हुए थे--"यह राजा अकेला ही एकाकी मुझ को देखे, क्योंकि एक को देखकर कोई अकेला आदमी भयभीत नहीं होता । इसकी सेना के आ जाने पर इसके सामने अन्य भिक्षुओं को भी प्रकट किया जायगा" ॥ ४४ ॥

वहाँ स्थविर ने राजा ने आखेट में रौद्र रूप से मृग का पीछा करते हुए देखा, तब स्थविर ने राजा को उसके नाम से सम्बोधित करते हुए कहा--"आओ, तिष्य! " ॥ ४५ ॥

"यह काषाय वस्त्र धारण किये हुए, शिर मुँडाये हुए, सङ्घाटी (गाती) पहने हुए, अकेले, जिसके साथ में दूसरा कोई भी नहीं है, देवताओं के समान वाणी में मुझसे बात करने वाला कौन है ?" (राजा ने पूछा--) ॥ ४६ ॥

(स्थविर ने उत्तर दिया--)"महाराज ! हम तो श्रमण (सन्त, भिक्षु) हैं, धर्मराज बुद्ध के मत को मानने वाले हैं । आप ही पर कृपा करने हेतु हम जम्बुद्वीप से यहाँ (लङ्का द्वीप में) आये हैं" ॥ ४७ ॥

यह सुन कर राजा अपने आयुध (धनुष्-वाण आदि) एक तरफ फैंक कर एक तरफ बैठ गया । एक तरफ बैठे उसने स्थविर से कुशल-मङ्गल एवं सुख--समाचार पूछा, तथा अन्य आवश्यक प्रासङ्गिक सार्थक बातें कीं ॥ ४८ ॥

स्थविर के वचन सुनकर (राजा) हाथ में लिये आयुध (शस्त्र) भूमि पर फेंक कर,तब स्थविर के पास जा कर उनसे कुशल-मङ्गल पूछ कर एक तरफ बैठ गया ॥ ४९ ॥

इसके कुछ ही क्षण बाद, उस राजा के साथ के सैनिक भी वहाँ आ पहुँचे । वे महास्थविर के चारों ओर बैठ गये, जोकि गणना में चालीस हजार (४०,० ००) थे ॥ ५० ॥

इस तरह, सैनिकों के आ जाने पर, महास्थविर ने अपने गण के अन्य भिक्षुओं को भी प्रकट कर दिया । तब राजा समझ पाया कि स्थविर के साथ अन्य भिक्षु भी हैं ॥ ५१ ॥

तेविज्जा इद्धिप्पत्ता च चेतोपरियकोविदा ।
खीणासवा अरहन्तो बहू बुद्धस्स सावका ॥ ५२ ॥

अम्बोपमेन जानित्वा पण्डितो ति[1] अरिन्दमो ।
देसेसि तत्थ सुत्तन्तं चूळहत्थिपदोपमं[2] ॥ ५३ ॥

सुत्वान तं धम्मवरं सद्धाजातो व बुद्धिमा ।
चत्तारो ससहस्सानि सरणं ते उपागमुं ॥ ५४ ॥

ततो अत्तमनो राजा तुट्ठहट्ठो पमोदितो ।
आमन्तयि भिक्खुसङ्घं गच्छाम नगरं पुरं ॥ ५५ ॥

[R.67] देवानम्पिय[3]राजानं सुब्बतं सबलवाहनं ।
पण्डितं बुद्धिसम्पन्नं खिप्पमेव पसादयि ॥ ५६ ॥

[S.61] सुत्वान रञ्ञो वचनं महिन्दो एतदब्रवि ।
"गच्छसि त्वं, महाराज, वसिस्साम मयं इध "॥ ५७ ॥

उय्योजेत्वान राजानं महिन्दो दीपजोतको ।
आमन्तयि भिक्खुसङ्घं "पब्बाजेस्साम भण्डुकं"॥ ५८ ॥

थेरस्स वचनं सुत्वा सब्बे तुरितमानसा ।
गामसीमं विचिनित्वा पब्बाजेत्वान भण्डुकं ॥ ५९ ॥

उपसम्पदं च तत्थेव अरहत्तं च पापुणि ।
गिरिमुद्धनि ठितो थेरो सारथिं अज्झभासथ ॥ ६० ॥

अलं यानं न कप्पति, पटिक्खित्तं तथागतं ।
उय्योजेत्वान सारथिं थेरो वसी महिद्धिको ॥ ६१ ॥

---

1. पण्डिता'यं-रो. ।
2. हत्थिपदं अनुत्तरं-रो. ।
3. देवानव्हय-रो. ।

(राजा के पूछने पर स्थविर ने उस को बताया) महाराज! (बौद्ध धर्म को मानने वाले) भगवान् बुद्ध के अगणित शिष्य हैं जो त्रैविद्य (त्रिपिटक के पारङ्गत) हैं, ऋद्धिसम्पन्न हैं, स्वचित्त से दूसरे की बात जानने वाले हैं, क्षीणास्रव हैं, ज्ञानी (अर्हत्) हैं ॥ ५२ ॥

तब महास्थविर ने **आम्र की उपमा**[1] से राजा के ज्ञान की तीक्ष्णता की परीक्षा की । एतदनन्तर, राजा को पण्डित जानकर महास्थविर ने राजा को चूळहत्थिपदोपम सुत्त (म॰ नि॰) के आधार पर धर्मोपदेश किया ॥ ५३ ॥

राजा वह उत्तम धर्मोपदेश सुनकर धर्म के प्रति श्रद्धालु होकर अपने चालीस हजार सैनिकों के साथ धर्म की शरण में आ कर उस महास्थविर का उपासक बन गया ॥ ५४ ॥

तब आप्तमना राजा ने सन्तुष्ट एवं प्रमुदित होकर भिक्षुसङ्घ को आमन्त्रित किया कि अब आप लोग नगर में पधारें ॥ ५५ ॥

परन्तु स्थविर ने उस सुव्रती, पण्डित, बुद्धिमान् राजा को उसके सैनिकों सहित अपने उत्तर से इतना सन्तुष्ट कर दिया कि वह स्थविर के प्रति पहले की अपेक्षा अधिक श्रद्धालु हो गया ॥ ५६ ॥

राजा की बात सुन कर महेन्द्र स्थविर ने यह उत्तर दिया--"राजन्! नगर में आप ही जाइये । हम तो यहीं ठहरेंगे" ॥ ५७ ॥

यों राजा को भेजकर, दीपद्योतक महेन्द्र स्थविर ने भिक्षुसङ्घ को बुला कर कहा–"हमें भण्डुक को प्रव्रजित करना है " ॥ ५८ ॥

वह भण्डुक उसी अवसर पर उपसम्पदा प्राप्त कर अर्हत्पद का लाभी हो गया ॥ ५९–६० ॥

(दूसरे दिन प्रातःकाल) पर्वत पर बैठे स्थविर ने (नगर से उन्हें लेने आये) सारथि को यह कहा–"यान पर चलना भिक्षुओं के लिये उचित नहीं है; क्योंकि भगवान् ने उसका निषेध किया है । अतः तुम जाओ । हम आ रहे हैं"॥ ६१ ॥

---

1. यह आम्र का दृष्टान्त महावंस ग्रन्थ के चौदहवें परिच्छेद के इसी प्रकरण में बहुत विस्तार से व्याख्यात है, जिज्ञासु जन वहाँ देखने का कष्ट करें । –अनु॰ ।

गगने हंसराजा व पक्कमिंसु विहायसा ।
ओरोहेत्वान गगना पठवियं सुप्पतिट्ठिता[1] ॥ ६२ ॥

निवासनं निवासेन्ते पारुपेन्ते च चीवरं ।
दिस्वान सारथी तुट्ठो राजानं च पवेदयि ॥ ६३ ॥

पेसेत्वा सारथिं राजा अमच्चे अज्झभासयि[2] ।
"मण्डपं पटियादेथ पुरो[3] अन्तोनिवेसने[3] ॥ ६४ ॥

कुमारा कुमारियो च इत्थागारं च देवियो ।
दस्सनं अभिकङ्खन्ता थेरे पस्सन्तु आगते" ॥ ६५ ॥

सुत्वान रञ्ञो वचनं अमच्चा कुलजातिका ।
अन्तोनिवेसनमज्झे अकंसु दुस्समण्डपं ॥ ६६ ॥

वितानं छादितं वत्थं सुद्धं सेतं सुनिम्मलं ।
धजसङ्खपरिवारं सेतवत्थेहि लङ्कतं ॥ ६७ ॥

विकिण्णवालुका सेता सेतपुप्फसुसण्ठिता ।
अलङ्कतमण्डपा सेता हिमगब्भसमूपमा ॥ ६८ ॥

सब्बसेतेहि वत्थेहि लंकरित्वान मण्डपं ।
अब्भन्तरं समं कत्वा राजानं पटिवेदयुं ॥ ६९ ॥

"परिनिट्ठितं, महाराज, मण्डपं सुकतं सुभं ।
आसनं, देव, जानाहि पब्बजितानुलोमिकं" ॥ ७० ॥

तं खणे सारथी रञ्ञो अनुप्पत्तो पवेदितुं ।
[R.68] "यानं, देव, न कप्पति भिक्खुसङ्घस्स निसीदितुं ॥ ७१ ॥

1. पतिट्ठिता-रो. ।
2. अज्झभासथ-रो. ।
3-3 अन्तोनिवेसने पुरे-रो. ।

फिर महास्थविर अपने ऋद्धिबल से हंस की तरह आकाश में उड़कर राजप्रासाद के पास जा कर पृथ्वी पर उतरे ॥ ६२ ॥

वहाँ वे स्थविर पृथ्वी पर आकर, उनमें से कुछ अपने वस्त्र समेट रहे थे, कुछ वस्त्र पहन रहे थे । सारथि ने उन्हें ऐसा करते हुए देख कर उनका आगमन जान कर सन्तुष्ट हो कर राजा को इन स्थविरों का आगमन सूचित किया ॥ ६३ ॥

तब राजा ने सारथि को भेज कर उसके माध्यम से अमात्यों को आदेश दिया--"अन्तःपुर के मध्य मण्डप लगाओ ॥ ६४ ॥

और कुमार, कुमारियाँ, रनिवास की महिलाएँ, रानियाँ इनमें जो भी स्थविर के दर्शन करना चाहती हों वहाँ आकर उन का दर्शन कर लें " ॥ ६५ ॥

राजा का आदेश सुन कर, उसके उन उच्च कुलोत्पन्न अधिकारियों ने अन्तःपुर के मध्य वस्त्रों का मण्डप सजवाया ॥ ६६ ॥

वह मण्डप ऐसा था जिस पर शुद्ध, श्वेत एवं निर्मल वस्त्र आच्छादित था, जिसके चारों तपफ असङ्ख्य ध्वजाएँ लटकी हुई थीं, वह श्वेत वस्त्रों से अलंकृत था ॥ ६७ ॥

वहाँ मार्ग में सफेद बालू सर्वत्र बिखेर दी गयी थी । श्वेत पुष्प जहाँ तहाँ शोभित हो रहे थे । इस तरह वहाँ की भूमि ऐसी लग रही थी मानों हिम (बर्फ) से ढँकी हुई हो ॥ ६८ ॥

यों उस मण्डप को सर्वथा श्वेत वस्त्रों से अलंकृत कर भूमि को समतल कर अधिकारियों द्वारा राजा को सूचित किया गया ॥ ६९ ॥

"महाराज ! हमने मण्डप तो भली भाँति अलंकृत कर तैयार करवा दिया, अब वहाँ प्रव्रजितों के अनुकूल आसन कैसे विछाये जाँय?--इस विषय में आप आदेश दें " ॥ ७० ॥

इसी समय राजा का सारथि उन्हें यह सूचित करने के लिये आ गया--"देव! भिक्षुसङ्घ को यान पर बैठना भगवान् द्वारा निषिद्ध किया गया है ॥ ७१ ॥

[S.62] अयं अच्छरियं, देव, सब्बे थेरा महिद्धिका ।
पठमं मं उय्योजेत्वा पच्छा हुत्वा पुरा गता ॥ ७२ ॥

उच्चासनमहासयनं भिक्खूनं न च कप्पति ।
भुम्मत्थरणं जानाथ थेरा आगच्छन्ति ते" ।
सारथिस्स वचो सुत्वा राजा पि तुट्ठमानसो ॥ ७३ ॥

पच्चुग्गन्त्वान थेरानं अभिवादेत्वा समोदयि ।
पत्तं गहेत्वा थेरानं सह थेरेहि खत्तियो ॥ ७४ ॥

पूजेन्तो गन्धमालेहि राजद्वारमुपागमि ।
रञ्ञो अन्तेपुरं थेरो पविसित्वान मण्डपं ॥ ७५ ॥

अदस्स भूमिपञ्ञत्तं[1] आसनं दुस्सलङ्कतं[2] ।
निसीदिंसु च पञ्ञत्ते आसने दुस्सपसारिते[3] ॥ ७६ ॥

निसिन्ने उदकं दत्वा यागुं दत्वान खज्जकं ।
पणीतं भोजनं राजा[4] सहत्था सम्पवारयि ॥ ७७ ॥

भुत्ताविभोजनं थेरं ओनीतपत्तपाणिनं ।
आमन्तयि अनुलादेविं सह अन्तोघरे जने ॥ ७८ ॥

"ओकासं जानाथ देवी कालो ते पयिरुपासितुं ।
थेरानं अभिवादेत्वा पूजेत्वा यावदिच्छकं" ॥ ७९ ॥

अनुला नाम सा देवी[5] इत्थी[5]पञ्चसता वता ।
उपसङ्कमित्वा थेरानं अभिवादेत्वा उपाविसि ॥ ८० ॥

---

1. सन्थतं भूमिं-रो। ।
2. दुस्सवारितं-रो. ।
3. दुस्सवारिते-रो. ।
4. रञ्ञो-रो. ।
5.-5 महेसी कञ्ञा-रो. ।

"यह कितने आश्चर्य की बात है,देव! कि इनमें सभी स्थविर ऋद्धिसम्पन्न हैं। देखिये न, उन्होंने मुझको पहले भेजकर, वहाँ से मेरे बाद चलकर भी वे मुझसे पहले ही यहाँ पहुँच गये ॥ ७२ ॥

"देव! ऊँचे या महान् आसन पर बैठना भी इनके यहाँ निषिद्ध है। उन्हें भूमि पर बैठाने की ही व्यवस्था करें। वे स्थविर यहाँ आ चुके हैं"। सारथि के वचन सुन कर राजा और भी अधिक सन्तुष्ट हुआ ॥ ७३ ॥

राजा उन स्थविरों का स्वागत (अगवानी) कर, उन्हें प्रणाम कर, अत्यन्त प्रमुदित हुआ। सम्मान देता हुआ सङ्घस्थविर (महेन्द्र) का पात्र अपने हाथ में लेकर स्थविरों के साथ ॥ ७४ ॥

उनकी गन्धमाल्य से पूजाकर अन्तःपुर के प्रवेशद्वार तक ले आया। फिर वे स्थविर अन्तःपुर के प्रवेशद्वार पर बने हुए मण्डप में प्रविष्ट होकर ॥ ७५ ॥

अच्छे वस्त्र से आच्छादित भूमि में विछे हुए आसन देख कर प्रसन्न हुए और उन बिछे हुए आसनों पर विराजे ॥ ७६ ॥

विराजने पर, उन्हें जल (पात्र) दे कर, यागु एवं रुचिकर भोजन राजा ने अपने हाथ से परोसा ॥ ७७ ॥

भोजन कर चुकने पर स्थविरों को पात्र से हाथ हटाया हुआ जान कर राजा ने अन्तःपुर से अनुला देवी को बुला कर ॥ ७८ ॥

उससे कहा--"देवी! इस समय अवसर है, आप सङ्घ की उपासना कर लें। स्थविरों को प्रणाम कर इनकी यथेष्ट पूजा कर लो" ॥ ७९ ॥

तब अनुला देवी,पाँच सौ महिलाओं के साथ आ कर, स्थविरों को प्रणाम कर एक तरफ बैठ गयी ॥ ८० ॥

तेसं धम्ममदेसेसि पेतवत्थुं भयानकं ।
विमानं सच्चसंयुत्तं पकासेसि महागणी ॥ ८१ ॥

सुत्वान तं धम्मवरं सद्धा जानाहि बुद्धिमा ।
अनुला महेसिया[1] सद्धिं[2] इत्थी[2] पञ्चसता तदा ।
सोतापत्तिफले ठ्ठंसु पठमाभिसमयो अहू ॥ ८२ ॥

द्वादसमो परिच्छेदो निट्ठितो ॥

भाणवारो द्वादसमो निट्ठितो ॥

●

1. महेसी-रो. ।
2-2. सह कञ्ञा-रो. ।

महागणी महास्थविर ने पेतवत्थु, विमानवत्थु एवं सच्चसंयुत्त (संयुत्तनिकाय) के बुद्ध-वचनों के आधार पर धर्मोपदेश किया ॥ ८१ ॥

उस उत्तम धर्मोपदेश को सुनकर उस के प्रभाव से वह अनुलादेवी उन पाँच सौ महिलाओं के साथ ही, स्रोतआपत्तिमार्गफल में प्रतिष्ठित हो गयी । ॥ ८२ ॥

बारहवाँ परिच्छेद पूर्ण ॥
बारहवाँ भाणवार भी पूर्ण ॥

(इस प्रकरण की विस्तृत कथा के लिये महावंस का तेरहवाँ परिच्छेद भी देखें । अनु०–)

●

१३.

तेरसमो परिच्छेदो

[R.69; S.63.] अदिट्ठपुब्बा ते सब्बे जनकाया समागता ।
राजनिवेसनद्वारे महासद्दानुसावयुं ॥ १ ॥

सुत्वा राजा महासद्दं उपसङ्कम्म[1] तं जनं[1]।
"किमत्थाय पुथू सब्बे महासेना समागता"? ॥ २ ॥

"अयं, देव, महासेना सङ्घदस्सनमागता ।
दस्सनं अलभमाना महासद्दं अकंसु ते" ॥ ३ ॥

"अन्तेपुरं सुसम्बाधं जनकायं पतिट्ठितुं ।
हत्थिसालं असम्बाधं थेरं पस्सन्तु ते जना" ॥ ४ ॥

भुत्तावी अनुमोदेत्वा उट्ठहित्वान आसना ।
राजघरा निक्खमित्वा हत्थिसालं उपागमि ॥ ५ ॥

हत्थिसालम्हि पल्लङ्कं पञ्ञापेसुं महारहं ।
निसीदि पल्लङ्कवरे महिन्दो दीपजोतको ।
निसिन्न पल्लङ्कवरे महन्तो गणपुङ्गवो ॥ ६ ॥

कथेसि तत्थ सुत्तन्तं देवदूतं च[2] सत्तकं[2] ।
सुत्वान देवदूतं तं पुब्बकम्मं सुदारुणं ॥ ७ ॥

भीतिं[3] सत्ते पापुणिंसु निरयभयतज्जिता[3]।
ञत्वा भयट्टिते[4] सत्ते चतुसच्चं पकासयि ॥ ८ ॥

1.-1 उपयुत्तमकम्पुरं-रो. ।
2. 2- वरुत्तमं-रो. ।
3.-3 भीता संवेगं आपादं निरयभयतज्जिता-रो. ।
4. भयट्टिते-रो. ।

तेरहवाँ परिच्छेद

(महाविहार-प्रतिग्रहण)

उसी समय राजप्रासाद के द्वार पर आकर पहले कभी न देखा गया विशाल जनसमूह कोलाहल (= महाशब्द) करने लगा ॥ १ ॥

उस कोलाहल को सुनकर राजा ने अपने अधिकारियों से पूछा–"यह कैसा कोलाहल है? ये इतने अधिक लोग यहाँ किस कारण से एकत्र हुए हैं?" ॥ २ ॥

अधिकारियों से बताया–"देव! यह इतना विशाल जनसमूह भिक्षु-सङ्घ के दर्शनहेतु यहाँ एकत्र हो गया है । यह जनसमूह सङ्घ का दर्शन न कर पाने के कारण इतना कोलाहल कर रहा है" ॥ ३ ॥

तब राजा ने कहा–"इतने जनसमूह के लिये यह अन्तःपुर तो कम पड़ेगा, अतः इस जनसमूह से कहो कि हस्तिशाला का स्थान सङ्घ के दर्शनहेतु अनुकूल पड़ेगा; अतः वह हस्तिशाला में पहुँच कर सङ्घ के दर्शनहेतु प्रतीक्षा करे । स्थविर वहीं पधारेंगे ॥"४ ॥

तब वे स्थविर भोजन कर चुकने के बाद, उस भोजन का धर्मोपदेश से अनुमोदन कर, आसन से उठकर, राजप्रसाद से निकल कर हस्तिशाला में पधारे ॥ ५ ॥

हस्तिशाला में जाकर वे दीप-प्रद्योतक महेन्द्र स्थविर विछे हुए सुन्दर आसन पर विराजे ॥ ६ ॥

तब उन्होंने उस जनसमूह को देवदूतसुत्त (म॰ नि॰ ३-३) के माध्यम से धर्मोपदेश किया ॥ ७ ॥

वह धर्मप्राण जनसमूह उस **देवदूतसुत्त** के धर्मवचन में कहे गये देवदूत द्वारा उपभुक्त नरकयोनि के भयप्रद वर्णन को सुन कर अत्यधिक भयभीत हो उठा । तब स्थविर ने उस जनता को भयग्रस्त देखकर उसे चार आर्यसत्यों का उपदेश किया ॥ ८ ॥

परियोसाने सहस्सानं दुतियाभिसमयो अहू ।
हत्थिसालाय[1] निक्खम्म महाजनपुरक्खतो ॥ ९ ॥

तोसयन्तो बहू सत्ते बुद्धो राजगहे यथा ।
नगरम्हि दक्खिणद्वारा[2] निक्खमित्वा महाजना ॥ १० ॥

महानन्दनवनं नाम उय्यानं दक्खिणा पुरे ।
राजुय्यानम्हि पल्लङ्कं पञ्ञापेसुं महारहं ॥ ११ ॥

तत्थ थेरो निसीदित्वा [3]धम्माधम्मेसु कोविदो[3] ।
कथेसि तेसं[4] सुत्तन्तं बालपण्डितमुत्तमं ॥ १२ ॥

तत्थ पाणसहस्सानं धम्माभिसमयो अहू ।
महासमागमो आसि उय्याने नन्दने तदा ॥ १३ ॥

कुलघरणी कुमारी च कुलसुण्ही कुलपुत्तियो ।
[R.70] सङ्करिता तदा हुत्वा थेरं दस्सनमागता ॥ १४ ॥

[S.64] तेहि सद्धिं सम्मोदेन्तो "सायण्हसमयो अहू ।
"इधेव थेरा वसन्तु उय्याने महानन्दने[5] ॥ १५ ॥

अतिसायं गमीयन्ता इतो दूरे गिरिब्बजे" ।
"अच्चासन्नं च गामन्तं विप्पकिण्णमहाजनं ॥ १६ ॥

रत्तिं सद्दो महा होति सक्कसालूपमं इमं ।
पटिसल्लानसारुप्पं अलं गच्छाम पब्बतं" ॥ १७ ॥

"महामेघवनं नाम उय्यानं विचित्तं मम ।
गमनागमनसम्पन्नं नातिदूरे न सन्तिके ॥ १८ ॥

---

1. हत्थिसालम्हा-रो. ।
2. दक्खिणद्वारे-रो. ।
3.-3 कथेसि धम्मं उत्तमं-रो. ।
4. तत्थ-रो.
5. मनन्दने-सी. ।

यह उपदेश सुनने के बाद, हजारों धार्मिक जनों को धर्मलाभ हुआ । तब वह स्थविरगणसमूह हस्तिशाला में एकत्र जनसमूह से पृथक् होकर ॥ ९ ॥

राजाप्रासाद स्थित बहुत से पुरुषों को धर्माशीर्वाद से सन्तुष्ट करते हुए, राजघराने (प्रासाद) से चलकर, नगरके दक्षिण द्वार से निकल कर ॥ १० ॥

नगर से बाहर दक्षिण दिशा में 'महानन्दनवन' नामक राजोद्यान में जाकर महार्घ आसनों पर विराजमान हुआ ॥ ११ ॥

वहाँ बैठ कर भी धर्माधर्मकुशल महास्थविर ने उपस्थित जनसमूह को **बालपण्डितसुत्त** (म॰ नि॰ ३.३) के माध्यम से धर्मोपदेश किया ॥ १२ ॥

इससे उस महानन्दनवन राजोद्यान में उपस्थित जनसमूह में से हजारों प्राणियों को धर्मलाभ हुआ ॥ १३ ॥

उस अवसर पर, भले घरों की पत्नियाँ, कुमारियाँ, बहुएँ तथा पुत्रियाँ– सभी एकत्र होकर (= सङ्करिता) उन स्थविरों का शुभ दर्शन करने के लिये आयी ॥ १४ ॥

उन से धार्मिक संवाद करते हुए, अन्त में, स्थविर ने कहा–"यह सायङ्काल हो गया है, अब हमें चलना चाहिये ।" यह सुनकर राजा ने निवेदन किया– "भन्ते! समय बहुत अधिक हो गया है, अब इतने समय गिरिव्रज कैसे पधारेंगे; क्योंकि वह यहाँ से बहुत दूर है ! अतः आप इसी उद्यान में आवास (रात्रि-विश्राम) करें ॥ १५ ॥

(स्थविर ने कहा–) "नहीं, राजन्! यहाँ से ग्राम बहुत समीप है,अतः रात्रि में भी कोलाहल होता रहेगा । जो कि हमारे समाधि-सुख के अनुकूल नहीं होगा, अतः हम उसी पर्वत पर (एकान्त में) रात्रि-विश्राम हेतु जायँगें। यह स्थान तो इन्द्रभवन के तुल्य है, जहाँ सदा जनसम्मर्द (भीड़) रहता है ॥ १६-१७ ॥

(तब राजा ने कहा–) "तो, भन्ते ! मेरा एक दूसरा 'महामेघवन' नामक उद्यान भी है, जहाँ जाने-आने की पूर्ण सुविधा है, वह नगर से न दूर है, न समीप ही ॥ १८ ॥

अत्थिकानं मनुस्सानं अभिक्कमनसुखागमं ।
अप्पकिण्णं दिवा सद्दो रत्तिं सद्दो न जायति ॥ १९ ॥

पटिसल्लानसारुप्पं पब्बज्जितानुलोमिकं ।
दस्सनछायासम्पन्नं पुप्फफलधरं सुभं ॥ २० ॥

वतिया सुपरिक्खितं द्वारट्टालसुगोपितं ।
राजद्वारं सुविभत्तं उय्याने मे मनोरमे ॥ २१ ॥

सुविभत्ता पोक्खरणी पञ्चन्नं पदुमुप्पलं ।
सीतूदकं सुपतिट्ठं सादुपुप्फभिगन्धियं ॥ २२ ॥

एवं रम्मं ममुय्यानं सह सङ्घस्स फासुकं ।
आवसतु तहिं थेरो ममत्थं[1] अनुकम्पतु" ॥ २३ ॥

सुत्वान रञ्ञो वचनं महिन्दत्थेरो सहग्गणो ।
अमच्चसङ्घपरिब्बूळ्हो अगमा मेघवनं तदा ॥ २४ ॥

आयाचितो नरिन्देन महिन्दत्थेरो महागणी ।
महामेघवनुय्यानं पाविसि युत्तजातिकं ॥ २५ ॥

उय्याने राजवत्थुम्हि अवसि थेरो महागणी ।
दुतिये[2] दिवसे राजा थेरानं समुपागमि[3] ॥ २६ ॥

अभिवादेत्वा सिरसा राजा थेरानमब्रवि ।
"कच्चि[4] सुखं असयित्थ[5] फासु वासो भविस्सति".[6] ॥ २७ ॥

---

1. सञ्छन्नं-रो. ।
2. ०पुन-रो. ।
3. उपागमि-रो. ।
4. ०ते-रो. ।
5. सयित्थ-रो. ।
6. तुय्हं इध-रो. ।

"दर्शन करना चाहने वाले पुरुषों के लिये आने में सुविधाजनक भी है और एकान्त भी; न दिन में कोलाहल होता है, न रात्रि में ही ॥ १९ ॥

"यह समाधि के लिये भी अनुकूल है, संन्यासियों के आवास (विश्राम्) के लिये उपयोगी है। वहाँ रम्य वृक्षों की छाया है। पुष्प तथा फल वाले वृक्ष भी है। देखने में रमणीय है ॥ २० ॥

वह चारों तरफ दीवारों से घिरा हुआ है। उसमें बहुत से कमरे तथा बरामदे बने हुए हैं। उस रम्य उद्यान में राजा का आवास सर्वथा पृथक् है ॥ २१ ॥

"वहाँ एक अच्छी पुष्करिणी भी बनी है। जिसमें पाँचों तरह की कमल जाति के फूल खिले रहते हैं। उसका जल ठण्डा है, निर्मल है, स्वादु (मीठा) एवं सुगन्धमय है ॥ २२ ॥

"इस प्रकार मेरा वह (मेघवन) उद्यान सर्वथा रमणीय (रहने योग्य) है। सङ्घ के लिये सुविधाजनक है। अतः आप मुझ पर कृपा करते हुए उसी उद्यान में चलकर रात्रि-विश्राम करें" ॥ २३ ॥

राजा के ये निवेदनयुक्त वचन सुनकर,महेन्द्र स्थविर अपने गण (समूह) के साथ, अमात्य एवं अन्य राज्याधिकारी जनों से घिरे हुए वहाँ से मेघवनोद्यान में पधारे ॥ २४ ॥

यो, राजा द्वारा निवेदन किये जाने पर वे महेन्द्र स्थविर अपने समूह के साथ उस सर्वसुविधासम्पन्न महामेघवन उद्यान में आकर विराजे ॥ २५ ॥

उस राजा के आवासयोग्य उद्यान में, उन महेन्द्र स्थविर ने रात्रि में विश्राम किया। दूसरे दिन, राजा पुनः उन स्थविरों की सेवा में उपस्थित हुए ॥ २६ ॥

वहाँ आकर राजा ने स्थविरों को सिर झुका कर प्रणाम किया और पूछा– "भन्ते! आप रात्रिपर्यन्त सुख से सोये ? आपको कोई असुविधा तो नहीं हुई?" ॥ २७ ॥

"विचित्तं उतुसम्पन्नं मनुस्सराहसेय्यकं ।
पटिसल्लानसारुप्पं सप्पायं च सेनासनं" ॥ २८ ॥

[S.65] ततो अत्तमनो राजा हट्ठोदग्गमानसो[1] ।
अञ्जलिं पग्गहेत्वान इदं वचनमब्रवि ॥ २९ ॥

सुवण्णभिङ्कारं[2] गहेत्वा ओनोजेसि महीपति ।
[R.71] "इमाहं, भन्त, उय्यानं महामेघवनं सुभं ॥ ३० ॥

चातुद्दिसस्स सङ्घस्स ददामि[3] पटिगण्हथ" ।
नरिन्दवचनं सुत्वा महिन्दो दीपजोतको ॥ ३१ ॥

पटिग्गहेसि उय्यानं सङ्घारामस्स कारणा ।
ददन्तं पटिग्गण्हन्तस्स महामेघवनं तदा ॥ ३२ ॥

अकम्पि पठवी तत्थ नानागज्जितकम्पनं ।
पतिट्ठपेसि सङ्घस्स नरिन्दो तिस्सव्हयो ॥ ३३ ॥

महामेघवनुय्यानं तिस्सारामं अका[4] सुभं[4] ।
पतिट्ठपेसि सङ्घस्स पठमं देवानम्पियो ॥ ३४ ॥

महामेघवनं नाम आरामं सासनारहं ।
तत्थापि पठवी कम्पि अब्भुतं लोमहंसनं ॥ ३५ ॥

लोमहट्ठा पजा[5] सब्बा थेरे पुच्छि[6] सराजिका ।
"इमं पठमं विहारं लङ्कादीपे वरुत्तमे ॥ ३६ ॥

सासनरूहनत्थाय पठमं पठविकम्पनं ।
दिस्वा अच्छरियं सब्बे अब्भुतं लोमहंसनं" ॥ ३७ ॥

---

1. ०संविग्गमानसो-रो. ।
2. सोवण्ण०-रो. ।
3. ददाम-सी. ।
4.-4 अकंसु तं-रो. ।
5. जना-रो. ।
6. पुच्छित्थ-रो. ।

स्थविर बोले-" हाँ, राजन्! यह स्थान तो सर्वथा उपयुक्त रहा । ऋतु के अनुकूल भी, मनुष्यों से एकान्त भी, समाधि के लिये उपयुक्त भी तथा यहाँ शयन के लिये आसन भी सुविधाजनक रहे" ॥ २८ ॥

तब आप्तमना, हृष्ट-प्रहृष्ट एवं प्रसन्नचित्त राजा ने हाथ जोड़कर एवं हाथ में सोने की झारी से जल लेकर यों निवेदन किया-"भन्ते! मैं अपना यह रम्य मेघवन नामक उद्यान चारों दिशाओं से आगत भिक्षुओं को आवासहेतु (सङ्घ को) दान करता हूँ, इसे आप स्वीकार करें ॥ " २९-३० ॥

राजा के ये वचन सुनकर दीपप्रद्योतक महेन्द्र ने (भविष्य में) सङ्घाराम के निर्माणहेतु उस महामेघवन उद्यान को, राजा द्वारा दिये जाने पर, स्वीकार कर लिया ॥ ३१-३२ ॥

उस अवसर पर हर्षोन्माद के कारण पृथ्वी में कम्पन हुआ तथा अन्य अनेकविध गर्जन-तर्जन भी हुए । (अथ च-) क्योंकि यह मेघवन राजा तिष्य ने सङ्घ को दान किया था, अतः ॥ ३३ ॥

इस मेघवन का नाम 'तिष्याराम' रख दिया गया । यों उस देवानाम्प्रिय तिष्य राजा ने सङ्घ को यह प्रथम दान किया ॥ ३४ ॥

तब इस महामेघवन को सङ्घ का आराम (आवास) बनाते समय भी पृथ्वी में रोमाञ्चक कम्पन हुआ ॥ ३५ ॥

उस समय वहाँ उपस्थित राजासहित समग्र जनसमूह को रोमाञ्च हो उठा । उन सभी ने स्थविर से इस पृथ्वीकम्पन का कारण पूछा, तो स्थविर ने बताया -"यह लङ्का द्वीप में सङ्घ को प्रथम दान हुआ है, यह धर्म की स्थिरता में अत्यधिक सहायक होगा । इस लिये यह प्रथम पृथ्वी-कम्पन हुआ है । जिसे देखकर आप लोगों में भी, आश्चर्य करते हुए, रोमाञ्च हो उठा" ॥ ३६-३७ ॥

चेलुक्खेपं[1] पवत्तिंसु, नत्थि ईदिसकं पुरे ।
ततो अत्तमनो राजा वेदजातो कतञ्जली ॥ ३८ ॥

उपनामेसि बहुं पुप्फं महिन्दं दीपजोतकं ।
पुप्फं थेरो गहेत्वान एकोकासे पमुञ्चयि ॥ ३९ ॥

तत्थापि पठवी कम्पि दुतियं पठविकम्पनं ।
इदं[2] अच्छरियं दिस्वा राजसेना सरट्ठका ॥ ४० ॥

उक्कुट्ठिसद्दं पवत्तिंसु दुतियं पठविकम्पनं ।
भिय्यो चित्तं पसादेत्वा राजापि तुट्ठमानसो ॥ ४१ ॥

"मम कङ्खं विनोदेहि[3] दुतियं पठविकम्पनं" ।
"सङ्घकम्मं करिस्सन्ति अकुप्पं सासनारहं ॥ ४२ ॥

[S.66] इधोकासे, महाराज, मालकं तं भविस्सति" ।
भिय्यो अत्तमनो राजा पुप्फं थेरं अपूजयि[4] ॥ ४३ ॥

थेरो पुप्फं गहेत्वान अपरोकासे पमुच्चयि[5] ।
तत्थापि पठवी कम्पि ततियं पठविकम्पनं ॥ ४४ ॥

"किमत्थाय, महावीर, ततियं पठविकम्पनं ।
सब्बे कङ्खा वितारेहि अक्खाहि कुसलो तुवं?" ॥ ४५ ॥

"जन्ताघरपोक्खरणी इधोकासे भविस्सति ।
भिक्खू जन्ताघरं[6] एत्थ परिपूरेस्सन्ति[7] सब्बदा" ॥ ४६ ॥

---

1. चेलुक्खेपं-सी. ।
2. ०पि-रो. ।
3. वितारेहि-रो. ।
4. अभीहरि-रो. ।
5. पमुञ्चयि-रो. ।
6. जन्ताघरं-रो. ।
7. परिपूरिस्सन्ति--रो.।

यह सुनकर जनता प्रमुदित होते हुए हवा में वस्त्र उछालने लगी कि ऐसा आश्चर्य तो इस नगर में पहले कभी नहीं हुआ था । तब, प्रसन्नचित्त राजा ने हाथ जोड़कर (करबद्ध) प्रणाम करते हुए ॥ ३८

द्वीपज्योतिर्भूत महेन्द्र स्थविर के हाथों में कुछ पुष्पगुच्छ दिये । स्थविर ने उन को आकाश में एक तरफ उछाल दिया ॥ ३९ ॥

तब भी पृथ्वी काँप उठी । उस समय यह द्वितीय भू-कम्प हुआ । इस आश्चर्य को देखकर, वहाँ उपस्थित जनतासहित राजा की सेना चिल्ला (उत्कृष्ट शब्द कर) बैठी कि अब यह द्वितीय भूकम्पन क्यों हुआ?" ॥ ४० ॥

राजाने श्रद्धा भाव से प्रसन्नतापूर्वक स्थविर से पूछा-"भन्ते! हमारा यह सन्देह भी दूर कीजिये कि यह द्वितीय भूकम्पन क्यों हुआ?" ॥ ४१ ॥

स्थविर बोले-"राजन्! यहाँ भी शासनयोग्य सङ्घ का स्थिर कार्य सम्पन्न होगा, इस स्थान पर **मालक** (चार दीवारों से घिरा स्थान, जहाँ भिक्षुओं के धार्मिक कृत्य सम्पन्न होते है) बनेगा ॥ ४२

तब राजा ने स्थविर को दूसरा पुष्प-गुच्छ उनके हाथ में अर्पित किया ॥ ४३ ॥

स्थविर ने वह पुष्पगुच्छ लेकर आकाश में दूसरी तरफ विखेर दिया । उस समय भी पृथ्वी काँप उठी । यह तीसरा भूकम्पन हुआ ॥ ४४ ॥

राजा ने पूछा-" भन्ते! यह तीसरा भूकम्पन क्यों हुआ? आप हमारे इस सन्देह का भी निराकरण करे; क्योंकि आप इसमें कुशल हैं" ॥ ४५ ॥

स्थविर ने कहा-"राजन्! यहाँ भिक्षुओं के लिये उष्ण जल की पुष्करिणी बनेगी । भिक्षु यहाँ आकर अपना उष्ण जल से पूर्ण होने योग्य कार्य सम्पन्न करेंगे" ॥ ४६ ॥

[R.72] उळारं पीतिपाभोज्जं जनेत्वा देवानम्पियो ।
उपनामेसि थेरस्स जातिपुप्फं सुफुल्लितं ॥ ४७ ॥

थेरो च पुप्फं आदाय अपरोकासे पमुञ्चयि ।
तत्थापि पठवी कम्पि चतुत्थं पठविकम्पनं ॥ ४८ ॥

इदं अच्छरियं दिस्वा महाजना समागता ।
अञ्जलिं पग्गहेत्वान नमस्सन्ति महिद्धिकं ॥ ४९ ॥

ततो अत्तमनो राजा तुट्ठो पुच्छि अनन्तरं ।
"किमत्थाय, महावीर, चतुत्थं पठविकम्पनं?" ॥ ५० ॥

"सक्यपुत्तो महावीरो अस्सत्थदुमसन्तिके ।
सब्बधम्मं पटिबुज्झि बुद्धो आसि अनुत्तरो ॥ ५१ ॥

सो दुमो इधमोकासे पतिट्ठिस्सति[1] दीपुत्तमे" ।
सुत्वा अत्तमनो राजा तुट्ठो संविग्गमानसो ॥ ५२ ॥

उपनामेसि थेरस्स जातिपुप्फं वरुत्तमं ।
थेरो च पुप्फं आदाय भूमिभागे पमुञ्चयि ॥ ५३ ॥

तत्थापि पठवी कम्पि पञ्चमं पठविकम्पनं ।
तं पि अच्छरियं दिस्वा राजा सेना सरट्ठका ॥ ५४ ॥

उक्कुट्ठिसद्दं पवत्तिंसु चेलुक्खेपं पवत्तिथ ।
"किमत्थाय, महापञ्ञ, पञ्चमं पठविकम्पनं ॥ ५५ ॥

एतमत्थं पवक्खाहि तव छन्दवसानुगं"[2] ।
"अन्वद्धमासं पातिमोक्खं उद्दिसिस्सन्ति ते तदा ॥ ५६ ॥

उपोसथधरं नाम इधोकासे भविस्सति" ।
अपरं च ओकासे थेरं पुप्फवरं अदा ॥ ५७ ॥

---

1. पतिट्ठिस्सं-रो. ।
2. ०-वसानुगा-रो. ।

यह सुन कर प्रसन्न होते हुए राजा ने स्थविर के करकमलों में जूही (जाति) के फूल रखें ॥ ४७ ॥

स्थविर ने वे पुष्प लेकर भी आकाश में दूसरी तरफ उछाल दिये । तब भी भू-कम्पन हुआ । यह चौथा भू-कम्पन था ॥ ४८ ॥

यह आश्चर्यमय कृत्य देखकर वहाँ एकत्र सभी विशिष्ट नागरिक हाथ जोड़कर स्थविर को प्रणाम करने लगे ॥ ४९ ॥

तब प्रसन्नचित्त राजा ने ही स्थविर से इस भू-कम्पन का कारण पूछा कि "किस लिये यह चौथा भू-कम्पन हुआ?" ॥ ५० ॥

"राजन्! पहले जिस अश्वत्थ (बोधि) वृक्ष के नीचे बैठकर सभी धर्मों का ज्ञान प्राप्त कर शाक्यपुत्र गौतम 'बुद्ध' बने थे, वही बोधि वृक्ष लङ्का द्वीप के इस स्थान पर आकर लगेगा ॥ ५१ ॥

इसी हर्ष में प्रमुदित होकर यह पृथ्वी काँप रही है "यह सुनकर प्रसन्न राजा ने स्थविर के हाथों में एक दूसरा जातिपुष्प गुच्छ दिया । स्थविर ने उस पुष्पगुच्छ को भी आकाश में एक तरफ उछाल दिया । वह पुष्प-गुच्छ आकर पृथ्वी पर एक-तरफ आ गिरा ॥ ५२-५३ ॥

तब भी पृथ्वी में कम्पन हुआ । यह पाँचवाँ भू-कम्पन था । इस आश्चर्य को भी देखकर राजा सहित सैनिक एवं प्रजाजन प्रसन्न मन से आकाश में वस्त्र उछालने लगे । साथ ही राजा ने स्थविर से डसका भी कारण पूछा ॥ ५४-५५ ॥

(स्थविर ने कहा–) "राजन्! यहाँ भिक्षुजन प्रत्येक पक्ष में जो उपोसथ करते है उसके यहाँ स्थान बनेगा, तथा 'उपोसथगृह' कहलायगा" ॥ ५६ ॥

फिर राजाने स्थविर के हाथ में एक अन्य पुष्प-गुच्छ दिया ॥ ५७ ॥

[S.67] थेरो च पुप्फं आदाय तमोकासे पमुञ्चयि ।
तत्थापि पठवी कम्पि छट्ठं पठविकम्पनं ॥ ५८ ॥

इदं पि अच्छरियं दिस्वा महाजना समागता ।
अञ्ञमञ्ञं पमोदन्ति विहारो हेस्सती[1] इध ॥ ५९ ॥

भिय्यो चित्तं पसादेत्वा राजा थेरानमब्रवि ।
"किमत्थाय, महापञ्ञ, छट्ठं पठविकम्पनं ॥ ६० ॥

"यावता सङ्घिकं लाभं भिक्खुसङ्घा समागता ।
इधोकासे, महाराज, लभिस्सन्ति अनागते" ॥ ६१ ॥

[R.73] सुत्वा थेरस्स वचनं राजापि तुट्ठमानसो ।
उपनामेसि थेरस्स राजा पुप्फं वरुत्तमं ॥ ६२ ॥

थेरो च पुप्फं[2] आदाय अपरोकासे पमुञ्चयि ।
तत्थापि पठवी कम्पि सत्तमं पठविकम्पनं ॥ ६३ ॥

दिस्वा अच्छरियं सब्बे राजसेना सरट्ठका ।
चेलुक्खेपं[3] पवत्तिंसु कम्पिते धरणीतले ॥ ६४ ॥

"किमत्थाय, महापञ्ञ, सत्तमं पठविकम्पनं ।
ब्याकरोहि महापञ्ञ[4] गणं कङ्खा वितारथ[5] ?"॥ ६५ ॥

"यावता इमस्मिं विहारे आवसन्ति सुपेसला ।
भत्तग्गं भोजनसालं इधोकासे भविस्सति" ॥ ६६ ॥

तेरसमो परिच्छेदो निट्ठितो ॥
भाणवारो तेरसमो समत्तो ॥

●

1. हिस्ससी-रो. ।
2. पुप्फा-सी. ।
3. वेलुक्खेपं-सी. ।
4. महाराज-सी. ।
5. -वितरथ-सी. ।

स्थविर ने उसे भी आकाश में उछाल दिया । उस अवसर पर भी पृथ्वी में कम्पन हुआ । यह छठा भूकम्पन था ॥ ५८ ॥

यह आश्चर्य देखकर भी वहाँ उपस्थित जनसमूह हर्षविभोर होकर एक दूसरे को (अंगुलियों से) गोदते हुए यह कहने लगा कि कितनी प्रसन्नता की बात है कि यहाँ विहार बनेगा ! ॥ ५९ ॥

श्रद्धाचित्त राजा ने पुनः स्थविर से पूछा–"महाप्राज्ञ! अब यह छठा पृथ्वीकम्पन क्यों हुआ?"॥ ६० ॥

स्थविर ने कहा–"राजन्! भविष्य में जितने भी भिक्षु बाहर से यहाँ (इस नगर में) साङ्घिक (सामूहिक) लाभ के लिये आयेंगे उन्हें वह लाभ इसी स्थान पर एकत्र होने पर मिला करेगा" ॥ ६१ ॥

स्थविर का उत्तर सुनकर प्रसन्नचित्त राजा ने स्थविर के हाथों में एक अन्य पुष्पमुष्टि अर्पित की ॥ ६२ ॥

स्थविर ने वह पुष्पमुष्टि (फूलों का गुच्छा) भी आकाश में विखेर दी । उस अवसर पर भी पृथ्वी काँपने लगी । यह सातवाँ भूकम्पन हुआ ॥ ६३ ॥

उस भू-कम्पन के समय भी सैनिक व नागरिक प्रमुदितचित्त होकर आकाश में वस्त्रखण्ड फेंक फेंक कर अपना हृदयोद्गार प्रकट करने लगे ॥ ६४ ॥

राजा ने पूछा–"भन्ते! अब यह सातवाँ भूकम्पन क्यों हुआ? इस का भी उचित व्याख्यान करें, जिससे हमारा सन्देह निराकृत हो सके"॥६५ ॥

स्थविर ने कहा–"जितने भी सदाचारी (= सुपेशल) भिक्षु इस आवास में विश्रामहेतु आयँगे उन को भोजनदान के लिये यहाँ एक वृहत् भोजनशाला बनेगी" ॥ ६६ ॥

तेरहवाँ परिच्छेद समाप्त ॥

तेरहवाँ भाणवार भी समाप्त ॥

१४.

चुद्दसमो परिच्छेदो

(महाविहारपटिग्गहणं)

थेरस्स वचनं सुत्वा राजा भिय्यो पसीदयि[1] ।
अलद्धा चम्पकं पुप्फं थेरस्स अभिहारयि ॥ १ ॥

थेरो चम्पकपुप्फानि पमुञ्चित्थ महीतले ।
तत्थापि पठवी कम्पि अट्ठमं पठविकम्पनं ॥ २ ॥

इमं अच्छरियं दिस्वा राजसेना सरट्ठका ।
उक्कुट्ठिसद्दं पवत्तिंसु चेलुक्खेपं[2] पवत्तिथ ॥ ३ ॥

[S.68] "किमत्थाय, महावीर, अट्ठमं पठविकम्पनं ।
व्याकरोहि, महापञ्ञ, सुणोम तव भासतो?" ॥ ४ ॥

"तथागतस्स धातुयो अट्ठ दोणा सारीरिका ।
एकं दोणं, महाराज, आहरित्वा महिद्धिका ॥ ५ ॥

इधोकासे निधहित्वा[3] थूपं कारेन्ति[4] सोभनं ।
संवेगजननट्ठानं बहुजनपसादनं" ॥ ६ ॥

समागता जना सब्बे राजसेना सरट्ठका ।
उक्कुट्ठिसद्दं पवत्तिंसु महापथविकम्पने ॥ ७ ॥

तिस्सारामे वसित्वान वीतिवत्ताय रत्तिया ।
निवासनं निवासेत्वा पारुपित्वान चीवरं ॥ ८ ॥

ततो पत्तं गहेत्वान पाविसि नगरं वरं[5] ।
पिण्डाचारं चरमानो राजद्वारं उपागमि ॥ ९ ॥

---

1. पसीदति-रो. ।
2. वेलुक्खेपं-सी. ।
3. निहरित्वा-रो. ।
4. काहन्ति-रो. ।
5. पुरं-रो. ।

चौदहवाँ परिच्छेद

(महाविहार-प्रतिग्रहण)

स्थविर के वचन सुनकर राजा पुनः श्रद्धातिरेक से प्रफुल्लित हो उठा । इस बार उसने चम्पक (चम्पा) पुष्प स्थविर के हाथों में रखे ॥ १ ॥

स्थविर ने उन चम्पक पुष्पों को भी आकाश में विकीर्ण कर दिया । वे पृथ्वी पर आ गिरे । इस अवसर पर पृथ्वी में कम्पन हुआ । यह पृथ्वी-कम्पन आठवीं वार हुआ ॥ २ ॥

इस आश्चर्यजनक कर्म देखकर भी राजा की सेना एवं नागरिक हर्षोद्गार के साथ आकाश में वस्त्र उड़ाने लगे ॥ ३ ॥

(राजा ने पूछा–)"महावीर श्रमण! यह आठवाँ पृथ्वी-कम्पन किस कारण हुआ? इसका विस्तृत हेतु बताइये, जिससे हम भी समझ सकें?" ॥ ४ ॥

(स्थविर बोले–)"महापरिनिर्वाण के समय भगवान् की आठ (८) द्रोण शरीरधातु एकत्र की गयी थीं । महाराज! उनमें से एक द्रोण शरीरधातु को कुछ ऋद्धिसम्पन्न भिक्षु इस लङ्का द्वीप में लायँगे । उन शरीरधातुओं को स्तूप बनाकर यहाँ ससम्मान रखा जायगा । उस स्तूप के दर्शन से धर्मप्राण जनता के हृदय में धर्म के प्रति अधिक श्रद्धा बढ़ेगी तथा प्रेमोद्रेक होगा" ॥ ५-६ ॥

वहाँ एकत्र हुए सैनिक एवं नागरिक जन इस पृथ्वी-कम्पन पर हर्ष प्रकट करने लगे ॥ ७ ॥

दूसरे दिन स्थविर, तिष्याराम में रहते हुए, रात्रि व्यतीत होने पर, प्रातः-काल वस्त्र पहन कर, पात्र लेकर, नगर में जाकर, भिक्षाहेतु राजद्वार पर पहुँचे ॥ ८-९ ॥

पाविसि निवेसनं रञ्ञो, निसीदित्वान आसने ।
[R.74] भोजनं तत्थ भुञ्जित्वा पत्तं धोवित्वान पाणिना ॥ १० ॥

भुत्तावी अनुमोदेत्वा निक्खमित्वा निवेसना ।
नगरम्हा दक्खिणद्वारा उय्याने नन्दने तदा ॥ ११ ॥

कथेसि थेरो सुत्तन्तं अग्गिक्खन्धोपमं[1] वरं[1] ।
तत्थ पाणसहस्सानं धम्माभिसमयो अहू ॥ १२ ॥

देसयित्वान सद्धम्मं उद्धरित्वान पाणयो[2] ।
उट्ठाय आसना थेरो तिस्सारामे पुनावसि ॥ १३ ॥

तत्थ रत्तिं वसित्वान वीतिवत्ताय रत्तिया ।
निवासनं निवासेत्वा पारुपित्वान चीवरं ॥ १४ ॥

ततो पत्तं गहेत्वान पाविसि नगरं वरं[3] ।
पिण्डचारं चरमानो राजद्वारं उपागमि ॥ १५ ॥

पाविसि निवेसनं रञ्ञो, निसीदित्वान आसने ।
भोजनं तत्थ भुञ्जित्वा पत्तं धोवित्वान पाणिना ॥ १६ ॥

भुत्तावि अनुमोदित्वा निक्खामि नगरा पुन[4] ।
दिवाविहारं कत्वान[5] नन्दनुय्यानमुत्तमे ॥ १७ ॥

[S.69] कथेसि तत्थ सुत्तन्तं आसिविसूपमं सुभं ।
परियोसाने सहस्सानं धम्माभिसमयो[6] अहू ॥ १८ ॥

देसयित्वान सद्धम्मं बोधयित्वान पाणिनं ।
आसना वुट्ठहित्वान तिस्सारामं उपागमि ॥ १९ ॥

1-1. अग्गिक्खन्धं वरुत्तमं-रो. ।
2. पाणिनं-रो.।
3. पुरं रो.। ।
4. पुरा-रो. ।
5. करित्वा-रो. ।
6. पञ्चमाभिसमयो-रो. ।

वहाँ राजमहल में प्रवेश कर, आसन पर बैठकर भोजन कर, फिर धर्मानुमोदन के बाद राजमहल से निकलकर, नगर के दक्षिण द्वार की तरफ से निकल कर राजा के नन्दन उद्यान में पहुँचे ॥ १०-११ ॥

वहाँ पहुँचकर स्थविर ने अनुपम **अग्निस्कन्धोपमसूत्र** (सं० नि०, निदान-संयुत्त, ६.२) का उपदेश किया। उससे हजारों प्राणियों को धर्म-लाभ हुआ ॥ १२ ॥

यों, सद्धर्म का उपदेश देकर प्राणियों का हित करते हुए स्थविर आसन से उठकर पुनः तिष्याराम आ गये ॥ १३ ॥

वहाँ, रात्रि में विश्रामकर, रात्रि बीतने पर, तय्यार होकर वस्त्र पहन कर पात्र लेकर नगर में जाकर राजद्वार पर पहुँचे ॥ १४-१५ ॥

वहाँ राजमहल में प्रवेश कर, आसन ग्रहण कर, भोजन कर, अपने हाथ से पात्र धोकर, भोजन करने के बाद धर्मानुमोदन कर, नगर के दक्षिण द्वार से निकलकर, दिवाविहार के लिये उद्यान में पहुँचे ॥ १६-१७ ॥

वहाँ **आशीविषोपम सूत्र** (   ) पर प्रवचन करते हुए उन्होंने हजारों प्राणियों को धर्मलाभ कराया ॥ ॥ १८ ॥

यों, वहाँ सद्धर्म का उपदेश कर, आसन से उठकर पुनः तिष्याराम लौट आये ॥ १९ ॥

भिय्यो राजा पसन्नोसि अट्ठमे[1] पठविकम्पने ।
हट्ठो उदग्गो सुमनो राजा थेरानमब्रवी ॥ २० ॥

"पतिट्ठितो विहारो च सङ्घारामं महारहं ।
अभिञ्ञापादकं, भन्ते, महापठविकम्पने" ॥ २१ ॥

"न खो एत्तावता राजा सङ्घारामो पतिट्ठितो ।
सीमासम्मन्नतं नाम अनुञ्ञातं तथागतो ॥ २२ ॥

समानसंवासकसीमं अविप्पवासं तिचीवरं ।
अट्ठहि सीमानिमित्तेहि कित्तयित्वा समन्ततो ॥ २३ ॥

कम्मवाचाय सावेन्ति सङ्घा सब्बे समागता ।
एवं बद्धानि सीमानि 'एकावासो' ति वुच्चति ॥ २४ ॥

विहारं थावरं होति आरामो सुप्पतिट्ठितो" ।
[2]इदं वुत्ते च थेरेन राजापि एतदब्रवी[2] ॥ २५ ॥

[R.75] "मम पुत्ता च दारा च सामच्चा सपरिज्जना ।
सब्बे उपासका तुय्हं पाणेन सरणं गता ॥ २६ ॥

याचामि तं, महावीर, करोहि वचनं मम ।
अन्तोसीमम्हि ओकासे आवसन्तु महाजनं ॥ २७ ॥

मेत्ताकरुणापरेताय सदारक्खो भविस्सति" ।
"परिच्चागं च जनेति राजा तुय्हं यदिच्छकं ॥ २८ ॥

सङ्घो कतपरिच्चागो सीमं सम्मन्नयिस्सति" ।
महापदुमो कुञ्जरो च उभो नागा सुमङ्गला ॥ २९ ॥

सोवण्णनङ्गले युत्ता पठमे[3] कुन्तमालके[3]।
चतुरङ्गिनी महासेना सह थेरेहि खत्तियो ॥ ३० ॥

---

1. अट्ठमं-रो. ।
2-2. रो. न दिस्सति ।
3-3. पठमं कोट्ट०-रो. ।

राजा ने धर्म के प्रति और अधिक श्रद्धालु होकर इस आठवें पृथ्वीकम्पन के विषय में स्थविर से पूछा ॥ २० ॥

"भन्ते! विहार तो प्रतिष्ठित हो गया, जो कि सङ्घ के लिये सभी सुविधाओं से सम्पन्न है तथा अभिज्ञापादक है; अब पुनः इस पृथ्वी-कम्पन का क्या कारण है?" ॥ २१ ॥

"राजन्! विहार के निर्माणमात्र से सङ्घाराम प्रतिष्ठित नहीं हुआ करता, जब तक कि उसकी बुद्ध द्वारा अनुमोदित सीमा न बाँध दी जाय ॥ २२ ॥

"समानसंवासक सीमा को, अविप्रवास (उपस्थिति) को, त्रिचीवर को तथा आठ सीमानिमित्तों के विषय में सब तरफ से कहकर ॥ २३ ॥

"सङ्घ में एकत्र होकर सभी भिक्षु कर्मवाचा (विनयपाठ) सुनाते हैं । यों बाँधी हुई सीमाएँ 'एकावास' कहलाती हैं ॥ २४ ॥

इसी सीमा के बन्धने पर कोई भी विहार स्थायी हो पाता है, एवं वहाँ का आवास सुप्रतिष्ठित होता है" ॥ २५ ॥

स्थविर द्वारा ऐसा कहे जाने पर, राजा ने फिर निवेदन किया–
"मेरे पुत्र, स्त्री, परिजन, अधिकारी–सभी आपका उपासकत्व स्वीकार कर चुके है तथा प्राण रहने तक आपके शरणागत हो चुके हैं ॥ २६ ॥

"हे महाऋद्धिबलशालिन्! मैं आप से एक ही निवेदन कर रहा हूँ कि इस सीमा में सज्जन, सभ्य नागरिकों को रहने की अनुमति अवश्य दें ॥ २७ ॥

इससे मैत्री एवं करुणाभावना से युक्त उन लोगों से इस विहार की रक्षा स्थायी हो सकेगी" ॥

(स्थविर बोले–)"राजन्! आपका यह महान् त्याग तुम्हें सीमा-बन्धन में स्वच्छन्दता प्रदान करेगा, अतः आप सीमा-रेखा निश्चित कर दें ॥ २८ ॥

अन्त में सीमा-बन्धन को प्रमाणित करने का कार्य इस त्यागाभिमान से रहित सङ्घ ही करेगा" ॥ २९ ॥

महापद्म एवं कुञ्जर–नाम के दोनों माङ्गलिक हाथियों ने सुवर्णनिर्मित हल से प्रथम कुन्तमालक तक सीमा-रेखा खींच दी । इस अवसर चतुरङ्गिणी सेना एवं सङ्घ के साथ स्वयं राजा भी उपस्थित थे ॥ ३० ॥

सुवण्णनङ्गलसीतं दस्सयन्तो अरिन्दमो ।
समलङ्कत्तं पुण्णघटं नानारागं घजं सुभं ॥ ३१ ॥

[S.70] नानापुप्फधजाकिण्णं तोरणं महग्घियं ।
बहुचन्दिजालमाला सुवण्णनङ्गले कसि ॥ ३२ ॥

महाजनपसादाय सह थेरेहि खत्तियो ।
नगरं पदक्खिणं कत्वा नदीतीरं उपागमि ॥ ३३ ॥

महासीमापरिच्छेदा[1] सीता सुवण्णनङ्गले ।
यं यं पठवियं यत्थ अगमा कुन्तमालका[2] ॥ ३४ ॥

सीमं सीमेन घटिते महाजनसमागमे ।
अकम्पि पठवी तत्थ पठमं पठविकम्पनं ॥ ३५ ॥

दिस्वा अच्छरियं सब्बे राजसेना सरट्ठका ।
अञ्ञमञ्ञं समोदिंसु "सीमारामो भविस्सति" ॥ ३६ ॥

[R.76] यावता सीमापरिच्छेदे निमित्तं बन्धिंसु मालके ।
पटिवेदेसि थेरानं देवानम्पिय इस्सरो ॥ ३७ ॥

"कत्वा कत्तब्बकिच्चानि सीमास्स[3] मालकस्स च ।
विहारं थावरत्थाय भिक्खुसङ्घस्स फासुकं ॥ ३८ ॥

ममं च अनुकम्पाय थेरो सीमानि बन्धतु" ।
सुत्वान रञ्ञो वचनं महिन्दो दीपजोतको ॥ ३९ ॥

आमन्तयि भिक्खुसङ्घं "सीमं बन्धाम, भिक्खवो" ।
नक्खत्ते उत्तरासाळ्हे सब्बे सङ्घा समागता ॥ ४० ॥

समानसंवासकं* नाम सीमं बन्धित्थ चक्खुमा ।
विहारं थावरं कत्वा तिस्सारामं वरुत्तमं ॥ ४१ ॥

---

1. ०परिच्चागा-रो. ।
2. कोट्ठ० -रो. ।
3. सीमय-सी.।
*. पतिट्ठपेत्वा मालकं समानसंवासकं-रो. ।

उस सुवर्णमय हल से निकाली गयी सीमा-रेखा को देखते हुए राजा ने उसके साथ-साथ जलपूर्ण घट एवं नाना रंग की ध्वजाएँ फहरवायीं ॥ ३१ ॥

इन्हीं नाना रंग की ध्वजाओं से युक्त तोरण भी स्थान-स्थान पर बनवाये। और उसी सीमा के साथ विविध प्रकाशमय दीपमालाएँ भी प्रज्वलित करायीं ॥

नागरिकों की धर्म के प्रति श्रद्धा उत्पन्न करने के लिये राजा स्वयं, सङ्घ के साथ, नगर की प्रदक्षिणा कर कदम्ब नदी तट पर आये ॥ ३३ ॥

महासीमा को बाँधती हुई वह सुवर्णमय हल से खीची गयी रेखा जिस-जिस भू-प्रदेश से होती हुई कुन्तमालक तक गयी थी उस सीमा-रेखा को उसके साथ दूसरी रेखा खींच कर महाजनों (नागरिकों) की उपस्थिति में और भी अधिक दृढ़ (प्रामाणिक) बना दिया गया। इस अवसर पर एक बार पुनः भूकम्पन हुआ ॥ ३४-३५ ॥

वह आश्चर्यमय कृत्य देखकर उपस्थित सैनिक तथा नागरिक प्रमुदित होकर परस्पर एक दूसरे को गुदगुदाने लगे और कहने लगे कि अब यहाँ 'सीमाराम' भी बनेगा ॥ ३६ ॥

इस तरह इस सीमा-बन्धनकृत्य में राजा देवानाम्प्रिय तिष्य ने जो जो विधियाँ अपनायी थीं, वे सब उस ने सङ्घस्थविर के सम्मुख जाकर निवेदन कर दीं ॥ ३७ ॥

"भन्ते! मैने अपना कर्तव्य करते हुए इस कुन्तमालक की सीमा बाँध दी, जो कि विहार की स्थायिता में वृद्धि करेगी, एवं सङ्घ के लिये भी सुविधाजनक होगी। अब आप मुझ पर अनुकम्पा करते हुए सीमा को प्रमाणित कर दें ॥ ३८-३९ ॥

तब महास्थविर ने सङ्घ को आमन्त्रित किया और कहा–"आओ, भिक्षुओ! सीमा-रेखा बाँधे।" तब उत्तराषाढ नक्षत्र में समग्र सङ्घ वहाँ एकत्र हुआ ॥ ४० ॥

उस समय उस चक्षुष्मान् महास्थविर ने सङ्घ की उपस्थिति में उस विहार की समानसंवासक सीमा बाँध कर उस की स्थिति सुदृढ़ की। यों वह श्रेष्ठ तिष्या-राम विहार स्थायी हो गया ॥ ४१ ॥

तिस्सारामे वसित्वान वीतिवत्ताय रत्तिया ।
निवासनं निवासेत्वा पारुपित्वान चीवरं ॥ ४२ ॥

ततो पत्तं गहेत्वान पाविसि नगरं वरं[1] ।
पिण्डाचारं चरमानो राजद्वारं उपागमि ॥ ४३ ॥

गन्त्वा[2] निवेसनं रञ्ञो निसीदित्वान आसने ।
भोजनं तत्थ भुञ्जित्वा पत्तं धोवित्वा पाणिना ॥ ४४ ॥

भुत्तावि अनुमोदित्वा निक्खम्म[3] नगरा पुम[3] ।
दिवाविहारं करित्वान उय्याने नन्दने वने ॥ ४५ ॥

[S.71] कथेसि तत्थ सुत्तन्तं तदा आसिविसूपमं ।
अनमतग्गियसुत्तं च चरियापिटकमनुत्तरं ॥ ४६ ॥

गोमयपिण्डओवादं धम्मचक्कप्पवत्तनं ।
महानन्दनम्हि तत्थेव पकासेसि पुनप्पुनं ॥ ४७ ॥

इमिना च सुत्तन्तेन सत्ताहानि पकासयि ।
अट्ठ च सङ्खसहस्सानि पञ्च सङ्खसतानि च ॥ ४८ ॥

मोचेसि बन्धना थेरो महिन्दो दीपजोतको ।
ऊनमासं वसित्वान तिस्सारामे सहग्गणो ॥ ४९ ॥

आसाळिहया पुण्णमासे उपकट्ठे च वस्सके ।
आमन्तयी सब्बे[4] थेरे[1] वस्सकालो भविस्सति ॥ ५० ॥

महाविहारपटिग्गहणं निट्ठितं ॥

सेनासनं संसामेत्वा महिन्दो दीपजोतको ।
पत्तचीवरमादाय तिस्सारामम्हा[5] निक्खमि ॥ ५१ ॥

---

1. पुरं-रो. ।
2. पविसित्वा-रो. ।
3-3. निक्खमि पुरा-रो. ।
4.-1 नगरे सब्बे-रो. ।
5. -रामाहि-सी० ।

फिर महास्थविर तिष्याराम जाकर, रात्रि में विश्राम कर रात्रि के व्यतीत होने पर.. पूर्ववत्.. (गाथा सं १४ से १८वीं गाथा के पूर्वार्ध तक पाठ दोहरा ले) ॥ ४२-४६ ॥

यों प्रतिदिन **अनमतग्गियसुत्त** (सं. नि. ३.१.१०.७), **चरियापिटक** (खु० नि०) **गोमयपिण्डसुत्त** (सं० नि० ३.१.१०.४) एवं **धम्मचक्कप्पवत्तनसुत्त** (म० नि० ३.४.११) का महानन्दनवन में बैठ कर उपदेश किया ॥ ४७ ॥

इन्हीं सूत्रों के आधार पर सप्ताहपर्यन्त महास्थविर ने उपदेश किया । इससे आठ हजार (८000) भिक्षुओं को एवं पाँच सौ (५00) भिक्षुणियों को धर्मलाभ हुआ ॥ ४८ ॥

यों, इन सभी को उस उपदेश के प्रभाव से दीपज्योतिर्भूत महेन्द्र स्थविर ने भवबन्धन से मुक्ति दिला दी । तथा एक पक्ष (१५ दिन) पर्यन्त अपनी मण्डली-सहित उस तिष्याराम में वास कर ॥ ४९ ॥

आषाढ़ की पूर्णिमा के दिन वर्षा-काल समीप आने पर उन्होंने सभी साथी स्थविरों को बता दिया कि अब वर्षाकाल आ गया है ॥ ५0 ॥

महाविहार-प्रतिग्रहण-वर्णन सम्पूर्ण ॥

तब द्वीप के लिये ज्योतिर्भूत वे महेन्द्र स्थविर अपना शयनासन समेट कर, पात्र-चीवर लेकर तिष्याराम से प्रस्थान कर गये ॥ ५१ ॥

निवासनं निवासेत्वा पारुपित्वान चीवरं ।
[R.77] ततो पत्तं गहेत्वान पाविसि नगरं पुन[1] ॥ ५२ ॥

पिण्डपातं चरमानो राजद्वारं उपागमि ।
पाविसि निवेसनं रञ्ञो निसीदिंसु यथासने ॥ ५३ ॥

भोजनं तत्थ भुञ्जित्वा पत्तं धोवित्वा[2] पाणिना ।
महासमयसुत्तन्तं ओवादत्थाय देसयि ॥ ५४ ॥

ओवदित्वान राजानं महिन्दो दीपजोतको ।
आसना वुट्ठहित्वान अनापुच्छा अपक्कमि ॥ ५५ ॥

नगरम्हा पाचीनद्वारा निक्खमित्वा महागणी ।
निवत्तेत्वा जने सब्बे अगमा येन पब्बतं ॥ ५६ ॥

[S.72] राजानं पटिवेदेसुं अमच्चा उब्बिग्गमानसा ।
"सब्बे, देव, महाथेरा गता मिस्सकपब्बतं"॥ ५७ ॥

सुत्वान राजा उब्बिग्गो सीघं योजेत्वा[3] सन्दनं ।
अभिरुहित्वा रथं खिप्पं सह देवीहि खत्तियो ॥ ५८ ॥

गन्त्वान पब्बतपादं महिन्दत्थेरो महागणो ।
नगरचतुक्कं नाम रहदं सेलनिम्मितं ॥ ५९ ॥

तत्थ नहात्वा पिवित्वान ठितो पासाणमुद्धनि ।
सीघं वेगेन सेदानि निप्पहेत्वान खत्तियो ॥ ६० ॥

दूरतो अद्दस त्थेरं पब्बतमुद्धनि ठितं ।
देवियो च रथे ठत्वा रथा ओरुय्ह खत्तियो ॥ ६१ ॥

उपसङ्कमित्वा थेरानं वन्दित्वा इदमब्रवी ।
"रम्मं रट्ठं जहेत्वान ममं[4] वोहाय पाणयो[4] ॥ ६२ ॥

---

1. पुरं-रो. ।
2. धोवित्वान-रो. ।
3. योजेत्वान-रो. ।
4-4. ममञ्च ओहाय पाणिनो-रो. ।

फिर तय्यार हो कर, चीवर पहनकर भिक्षा-पात्र लेकर, पुनः नगर में प्रविष्ट हुए ॥ ५२ ॥

वहाँ से वे क्रमशः भिक्षा के लिये राजद्वार पर पहुँचे । वहाँ राजमहल में प्रविष्ट होकर यथाप्रज्ञप्त आसन पर विराजे ॥ ५३ ॥

उस आसन पर बैठकर भोजन कर, अपने हाथ से भिक्षा पात्र धोकर, अनुमोदना में **महासमयसुत्त** (म० नि०) का उपदेश किया ॥ ५४ ॥

यों वे द्वीपज्योति महेन्द्र स्थविर राजा को धर्मोपदेश करने के बाद आसन से उठकर राजा से विना कुछ कहे-सुने चल दिये ॥ ५५ ॥

नगर के पूर्व द्वार से निकल कर वे महामण्डलीश्वर अनुगमन, करने वाले नागरिकों को लौटाकर, अकेले ही (मिश्रक) पर्वत की तरफ चल दिये ॥ ५६ ॥

वापस लौट कर उनमें से कुछ अधिकारियों ने राजा से आकर निवेदन किया–"देव! सभी स्थविर मिश्रक पर्वत चले गये" ॥ ५७ ॥

राजा, यह सुनकर, उद्विग्न होता हुआ, शीघ्रता से रथ जुतवा कर, रानियों सहित उसमें बैठकर ॥ ५८ ॥

पर्वत के नीचे गया, जहाँ वे महागणी महेन्द्र स्थविर शैवाल से भरे नगरचतुष्क नामक सरोवर में स्नान कर, जल पीकर वहीं एक शिला पर बैठ कर अपना आर्द्र (गीला) शरीर सुखा रहे थे ॥ ५९-६० ॥

राजा ने, ऐसी स्थिति में पाषाण शिला पर बैठे स्थविरों को, दूर से ही देख लिया । अतः रानियों को रथ में ही बैठी हुई छोड़कर, रथ से उतर कर ॥ ६१ ॥

स्थविरों के पास जाकर, उन्हें प्रणाम कर यह बोला–"भन्ते! सर्वसाधनसुलभ राष्ट्र एवं मेरे परिवार की उपेक्षा कर आप इस एकाकी (साधनविहीन) पर्वत पर क्यों चले आये?" ॥ ६२ ॥

किमत्थाय, महावीर, इमं आगमि पब्बतं ?"
"इध वस्सं वसिस्साम तीणि मासं अनूनकं ॥ ६३ ॥

पुरिमं पच्छिमकं नाम अनुञ्ञातं महेसिना[1]"' ।
"करोमि सब्बकिच्चानि भिक्खुसङ्घस्स फासुकं ॥ ६४ ॥

अनुकम्पं उपादाय ममत्थं अनुसासतु" ।
"गामन्तं वा अरञ्ञं वा भिक्खु वस्सूपनायिको ॥ ६५ ॥

सेनासने संवुतद्वारे वासं बुद्धेन अनुमतं ।
अनुञ्ञातं एतं वचनं अत्थं सब्बं सहेतुकं" ॥ ६६ ॥

[S.78] "अज्जेवाहं करिस्सामि आवासं वस फासुकं"।
गहट्ठसिद्धिं सोधेत्वा ओलोकेत्वा महायसो ॥ ६७ ॥

थेरानं पटिपादेसि "वसन्तु अनुकम्पका ।
साधु, भन्ते, इमं लेनं आरामं पटिपज्जतु" ॥ ६८ ॥

विहारं थावरत्थाय सीमं बन्ध महामुनि ।
रञ्ञो भगिनिया पुत्तो महारिट्ठति विस्सुतो ॥ ६९ ॥

पञ्चपञ्ञास खत्ते च कुले जाता महायसा ।
उपसङ्कमित्वा राजानं अभिवादेत्वा इदमब्रवुं ॥ ७० ॥

"सब्बे व पब्बजिस्साम वरपञ्ञस्स सन्तिके ।
ब्रह्मचरियं चरिस्साम तं देवो अनुमञ्ञतु" ॥ ७१ ॥

सब्बेसं वचनं सुत्वा राजा पि तुट्ठमानसो ।
थेरानं उपसङ्कम्म आरोचेसि महीपति ॥ ७२ ॥

"महाअरिट्ठपमुखा पञ्चपञ्ञास नायका ।
पब्बजेहि अनुञ्ञातं, महावीर, तवन्तिके" ॥ ७३ ॥

---

1. तथागते-रो. ।

"राजन्! हम यहाँ कम से कम तीन मास तक 'वर्षावास' करेंगे । फिर भले ही वह (वर्षावास) पहले मास (श्रावण) से हो, या बाद वाले (भाद्रपद) मास से हो। ऐसा ही भगवान् का आदेश है" ॥ ६३-६४ ॥

राजा ने कहा-"भन्ते! यदि आप आदेश दें तो मै यहाँ (इस पर्वत पर भी) वे सभी साधन उपलब्ध करा सकता हूँ जिनसे भिक्षुओं को सुविधा मिल सके ॥ ६५ ॥

अतः कृपया मुझे एतदर्थ कोई स्पष्ट आदेश दें ।" स्थविर ने कहा-"राजन्! भगवान् का स्पष्ट आदेश है कि भिक्षु को वर्षावास-काल में ग्राम से दूर या अरण्य में ही वास करना चाहिये । हाँ, इस विशेष समय में भी भगवान् ने बन्द दरवाजे के शयनासन स्थान में रह लेने की अनुमति दी है । भगवान् का यह अर्थयुक्त वचन सभी का हित-साधक है ॥ ६६ ॥

राजा ने स्थविर का अभिप्राय समझते हुए कहा-"भन्ते! मैं आज से ही यहाँ ऐसे भिक्षुओं के अनुकूल आवास बनाना प्रारम्भ करा दूँगा" ॥

यों कहकर उस महायशस्वी राजा ने आवास-निर्माण में गृहस्थों की दृष्टि (अनुकूलता) हटा कर वहाँ भिक्षुओं के अनुकूल आवास बनवा दिये ॥ ६७ ॥

एतदनन्तर, स्थविरों से कहा-"भन्ते! आप लोग कृपा कर इनमें वास करें । क्योकि यह लेण आप लोगों के अनुकूल बनाया गया है ॥ ६८ ॥

तब उस विहार की स्थिति सुव्यस्थित करने के लिये उन महामुनि महेन्द्र ने उस विहार की सीमा बाँध दी ॥

अरिष्ट की प्रव्रज्या- इसी समय राजा देवानाम्प्रिय तिष्य की बहन के पुत्र अरिष्ट नाम से प्रसिद्ध क्षत्रिय ने अपने पचपन (५५) साथी क्षत्रियों के साथ राजा के पास जाकर यह निवेदन किया- ॥ ६९-७०॥

"देव! हम पचपन (५५) साथी वरप्रज्ञ स्थविर के पास जाकर प्रव्रज्या लेना चाहते है, उन्हीं के अधीन रहकर धर्म की साधना करेंगे । कृपया आप हमें एतदर्थ अनुमति दें" ॥ ७१ ॥

उनकी यह सर्वसम्मत बात सुनकर राजा ने सन्तुष्ट होकर उन लोगों को स्थविरों के पास ले जाकर निवेदन किया ॥ ७२ ॥

"भन्ते! ये मेरे महाअरिट्ठ सहित पचपन अधिकारी आप से प्रव्रज्या की दीक्षा लेना चाहते हैं । इसके लिये इन को मैं अनुमति दे चुका हूँ । हे महाबलशालिन्! इन्हें आप प्रव्रज्या दें" ॥ ७३ ॥

सुत्वान रञ्ञो वचनं महिन्दो दीपजोतको ।
आमन्तयि भिक्खुसङ्घं "सीमं बन्धाम, भिक्खवे ॥ ७४ ॥

समानसंवासका चेव अविप्पवास तिचीवरं ।
विहारं थावरत्थाय सीमं बन्धासि मापन" ॥ ७५ ॥

सीमं च सीमन्तरिकं ठपेत्वा तुम्बमालके ।
महासीमानि कित्तेसि महिन्दो दीपजोतको ॥ ७६ ॥

बन्धित्वा मालकं सब्बं सीमं बन्धित्वान चक्खुम ।
विहारं थावरं कत्वा दुतियं तिस्सपब्बते ॥ ७७ ॥

पुण्णाय पुण्णमासिया आसळ्हमासे उपोसथे ।
नक्खत्तै उत्तारासाळ्हे सीमं बन्धित्वान पब्बते ॥ ७८ ॥

पब्बाजेसि महाअरिट्ठं पठमं दुतियमालके ।
उपसम्पादेसि तत्थेव तम्बपण्णिकुलिस्सरो ॥ ७९ ॥

पञ्चपञ्ञास तत्थेव पब्बज्जा उपसम्पदा ।
बत्तिंस मालका होन्ति पठमारामे पतिट्ठिता ॥ ८० ॥

[R.79] दुतियारामे बत्तिंस विहारे तिस्सपब्बते ।
अवसेसखुद्दकारामे पच्चेकेकेकमालके ॥ ८१ ॥

पतिट्ठपेत्वा आरामं विहारं पब्बतुत्तमे ।
द्वासट्ठि अरहन्ता सब्बे पठमं वस्सुपागता* ॥ ८२ ॥

चेतियपब्बतपटिग्गहणं निट्ठितं ॥

चुद्दसमो परिच्छेदो निट्ठितो ॥

चुद्दसमो भाणवारो निट्ठितो ॥

●

* अयं पाठो (७१ गाथातो ८२ गाथापरियन्तो) सी. पोत्थके न दिस्सति ।

राजा के वचन सुनकर उस महेन्द्र स्थविर ने भिक्षु-सङ्घ को आमन्त्रित किया और कहा–"आओ, भिक्षुओ! हम इस विहार की सीमा बान्ध दें ॥ ७४ ॥

एक साथ रहना, उपस्थिति, त्रिचीवर–इनको देखते हुए, विहार की स्थिरता हेतु सीमा बाँधी जाती है" ॥ ७५ ॥

तब तुम्ब(रु) मालक (चैत्यपर्वत) की सीमा एवं सीमान्तर को छोड़ उन महेन्द्र स्थविर ने इस विहार की महासीमा बतायी ॥ ७६ ॥

सम्पूर्ण मालक (भिक्षुओं द्वारा धर्मवाचन हेतु चार दीवार वाला स्थान) को सीमा में लेकर उस चक्षुष्मान् स्थविर ने इस विहार की स्थिरता के लिये तिष्य पर्वत पर यह दूसरा सीमा-बन्धन किया ॥ ७७ ॥

आषाढ़ मास की पूर्ण चान्दनी युक्त पूर्णिमा तिथि के दिन उत्तराषाढ नक्षत्र में उस पर्वत (स्थित विहार) की सीमा बाँधी गयी ॥ ७८ ॥

तब ताम्रपणी में सर्वप्रथम विहार के द्वितीय मालक में कुलेश्वर (सङ्घस्थविर) ने प्रवज्या दीक्षा दी ॥ ७९ ॥

साथ ही पचपन (५५) अन्य क्षत्रियों को भी वहीं प्रव्रज्या-उपसम्पदा दी गयी। उस प्रथम आराम में बत्तीस (३२) मालक थे ॥ ८० ॥

इसी तरह द्वितीय आराम में भी बत्तीस मालक थे। अवशिष्ट छोटे आराम एक-एक मालक के थे ॥ ८१ ॥

यों उस श्रेष्ठ पर्वत पर, आराम-विहार बनवा कर उस प्रथम वर्षावास के समय सभी बासठ (६२) भिक्षु प्रव्रज्या प्राप्त कर अर्हत्त्व को प्राप्त हुए ॥ ८२ ॥

चेतियपर्वतप्रतिग्रहण-वर्णन समाप्त ॥
चौदहवाँ परिच्छेद समाप्त ॥
चौदहवाँ भाणवार समाप्त ॥

●

१५.

पञ्चदसमो परिच्छेदो

(धातुत्थूपनिम्मानं)

गिम्हाने अट्ठमे मासे पुण्णमासे उपोसथे।
आगता जम्बुदीपम्हा वसिम्ह[1] पब्बतुत्तमे ॥ १ ॥

पञ्चमासे न वुट्ठम्हा तिस्सारामे च पब्बते।
गच्छाम जम्बुदीपानं अनुजान रथेसभ ॥ २ ॥

"तप्पेम अन्नपानेहि वत्थसेनासनेहि च।
सरणं गतो जनो सब्बो कुतो वो अनभिरति? ॥ ३ ॥

अभिवादनपच्चुपट्ठानमञ्जलिं गरुदस्सनं।
चिरं दिट्ठो, महाराज, सम्बुद्धं द्विपदुत्तमं" ॥ ४ ॥

"अञ्ञातं वतहं, भन्ते, करोमि थूपमुत्तमं।
विजानाथ भूमिकम्मं थूपं काहामि सत्थुनो" ॥ ५ ॥

"एहि त्वं, सुमन, गन्त्वा[2] पाटलिपुत्तपुरुत्तमं[3]।
असोकं धम्मराजानं एवं चारोचयाहि तं[4] ॥ ६ ॥

'सहायो ते, महाराज, पसन्नो बुद्धसासने।
देहि धातुवरं तस्स थूपं काहाति सत्थुनो' ॥ ७ ॥

बहुस्सुतो सुतधरो सुब्बचो वचनक्खमो।
इद्धिमा पारमिप्पतो अचलो सुप्पतिट्ठितो ॥ ८ ॥

पत्तचीवरमादाय खणे पक्कामि पब्बता।
असोकं धम्मराजानं आरोचेसि यथातथं ॥ ९ ॥

---

1. वसिम्हा-रो.।
2. ०नाग-रो।
3. ० गन्त्वा-रो.।
4. त्वं-रो.।

पन्द्रहवाँ परिच्छेद

(धातुस्तूपनिर्माण का उपक्रम)

भिक्षुओं का विचार– भिक्षुओं ने राजा से कहा--"ग्रीष्म ऋतु के आठवें मास में पूर्णिमा तिथि के उपोसथ के दिन जम्बुद्वीप से आये हम लोगों को इस पर्वत पर रहते हुए ॥ १ ॥

"पाँच मास बीत गये । तबसे हम इस पर्वत-सीमा से बाहर नहीं गये । अतः हे राजन्! (रथर्षभ!) हमें जम्बुद्वीप जाने की अनुमति दीजिये ॥ २ ॥

"यद्यपि हमें यहाँ अन्न, पान, निवास, ओढ़ने-बिछाने के सभी साधन सुलभ हैं; परन्तु गुरु (शास्ता) की शरण में गये विना क्या किसी को सुख मिल सकता है! या इस शरणगमन से किसी को कैसे कोई अनभिरति (उपेक्षा) हो सकती है!" ॥ ३ ॥

"वहाँ जम्बुद्वीप में अभिवादन, प्रत्युपस्थान, अञ्जलि (प्रणाम) आदि द्वारा गुरु (शास्ता) का दर्शन किये, महाराज! हमें बहुत समय बीत गया" ॥ ४ ॥

राजा द्वारा स्तूप निर्माण का सङ्कल्प– राजा न कहा–"भन्ते! मुझे तो ज्ञात नहीं था । आप आज्ञा दें । मैं यहीं उत्तम स्तूप का निर्माण करा दूँगा । आप तदर्थ भूमि का निर्णय कर दें मैं वहाँ स्तूप बनवा दूँगा" ॥ ५ ॥

तब सङ्घस्थविर ने सुमन श्रामणेर से कहा–"भो सुमन! तुम पाटलिपुत्र नगर जाओ, और वहाँ धर्मराज अशोक को हमारी तरफ से यह कहना–॥ ६ ॥

'महाराज! बुद्ध शासन के प्रति श्रद्धालु राजा देवानाम्प्रिय तिष्य आपके मित्र (सहाय) हैं, उन्हें आप भगवान् का अस्थ्यवशेष देने का कष्ट करें, ताकि वे यहाँ (लङ्काद्वीप में) उन पर एक उत्तम स्तूप बनवा सकें" ॥ ७ ॥

सुमन श्रामणेर का धातु-आनयन हेतु प्रस्थान– तब वे बहुश्रुत, श्रुतधर, शोभन वक्ता, बोलने में चतुर, ऋद्धिमान्, छहों पारमिताओं में पारङ्गत, पर्वत की तरह सुप्रतिष्ठित सुमन श्रामणेर ॥ ८ ॥

पात्र-चीवर लेकर उसी क्षण उस पर्वत से अशोक धर्मराज के पास चल दिये । वहाँ जाकर उन्होंने सङ्घ का सन्देश सम्राट् अशोक को जैसे का तैसा सुना दिया ॥ ९ ॥

"उपज्झायस्स मे,[1] राज[1], सुणोहि वचनं तुवं।
सहायो ते, महाराज, पसन्नो बुद्धसासने।
देहि धातुवरं तस्स थूपं काहति सत्थुनो" ॥ १० ॥

[R.80] सुत्वान वचनं राजा तुट्ठो संविग्गमानसो।
धातुपत्तमपूरेसि "खिप्पं गच्छाहि, सुब्बत!" ॥ ११ ॥

ततो धातुं गहेत्वान सुब्बचो वचनक्खमो।
वेहासं अब्भुग्गन्त्वान[2] अगमा कोसियसन्तिके ॥ १२ ॥

सुब्बचो[3] उपसङ्कम्म[3] कोसियं एतदब्रवि।
"उपज्झायस्स मे,[4] राज,[4] सुणोहि वचनं तुवं ॥ १३ ॥

देवानम्पियो राजा[5] पसन्नो बुद्धसासने।
देहि धातुवरं तस्स काहति थूपमुत्तमं" ॥ १४ ॥

[S.74] सुत्वान वचनं तस्स कोसियो तुट्ठमानसो।
दक्खिणक्खकं पादासि "खिप्पं गच्छाहि, सुब्बत ॥ १५ ॥

सामणेरो च सुमनो गन्त्वा कोसियसन्तिके।
दक्खिणक्खकं गहेत्वान पतिट्ठितो पब्बतुत्तमे ॥ १६ ॥

सम्पन्नहिरोत्तप्पको गरुभावो च पण्डितो।
पेसितो थेरराजेनोपट्ठितो पब्बतुत्तमे ॥ १७ ॥

सभातुको महासेनो भिक्खुसङ्घे वरुत्तमे।
पच्चुग्गमि तदा राजा बुद्धसेट्ठस्स धातुयो ॥ १८ ॥

चातुमासं कोमुदियं दिवसं पुण्णरत्तिया।
आगतो च महावीरो....गजकुम्भे पतिट्ठितो ॥ १९ ॥

1.-1 महाराज-रो.।
2. गन्त्वान-सी.।
3.-3 उपसङ्कमित्वा सुब्बचो-रो.।
4.-4 महाराज-रो.।
5. ०सो.-रो.।

उन्होंने कहा--"राजन्! मेरे उपाध्याय का सन्देश आप सुनें--"महाराज! बुद्धशासन में श्रद्धालु तथा आपके मित्र राजा देवानाम्प्रिय तिष्य यहाँ (लङ्काद्वीप में) 'धातुस्तूप' बनाना चाहते हैं, अतः आप उक्त पवित्र कार्य हेतु भगवान् का कुछ धात्ववशेष दें" ॥ १० ॥

राजा अशोक द्वारा धातु-दान--राजा ने श्रामणेर का वचन सुनकर सन्तुष्ट होते हुए, उत्साहित मन से धातुपात्र दे दिया, और कहा-- "हे सुव्रत! आपका कार्य सम्पन्न हो गया, अतः शीघ्र ही पुनः लङ्का द्वीप लौट जाओ" ॥ ११ ॥

तब वह सुव्रत, एवं वाक्पटु सुमन श्रामणेर, वे पवित्र धात्ववशेष लेकर, आकाश मार्ग से चलकर देवराज इन्द्र के पास पहुँचा ॥ १२ ॥

वह वाक्कुशल सुमन क्रमशः इन्द्र के पास पहुँच कर यों बोला--"देवराज, यह मेरे उपाध्याय का सन्देश आप सुनें--'बुद्धशासन में श्रद्धालु राजा देवानाम्प्रिय तिष्य लङ्का में धातुस्तूप का निर्माण करायेंगे, अतः उन्हें आप तदर्थ कुछ धात्वशेष दें" ॥ १३-१४ ॥

इन्द्र द्वारा दक्षिण अक्षक का दान-- सुमन के ये वचन सुनकर देवराज इन्द्र बहुत सन्तुष्ट हुए, साथ ही उन्हें भगवान् का दक्षिण अक्षक (गले की हंसुली की अस्थि) देकर कहा--"आप इसे लेकर शीघ्र ही पुनः लौट जाइये" ॥ १५ ॥

यों, श्रामणेर सुमन इन्द्र के पास जाकर, उनसे दक्षिण अक्षक लेकर, पुनः तिष्य पर्वत की तरफ चल पड़े ॥ १६ ॥

स्थविरराज द्वारा प्रेषित वे लज्जावान्, सङ्कोची, गम्भीर, बुद्धिमान् सुमन पुनः उस उत्तम पर्वत पर पहुँचे ॥ १७ ॥

राजा द्वारा धातुओं का स्वागत--उसी समय, राजा अपने भाई तथा विशाल सेना के साथ इस श्रेष्ठ एवं अद्वितीय सङ्घ के पास भगवान् के धात्वशेष लेने के लिये आ पहुँचे ॥ १८ ॥

उस दिन चातुर्मास्य व्रत की अन्तिम पूर्णिमा का दिन था, जब वह महाबली राजा हाथी पर चढ़कर वहाँ आया ॥ १९ ॥

अकासि सो कुञ्चनादं कंसथालग्गियाहतं[1] ।
अकम्पि तत्थ पठवी पच्चन्तमागते[2] मुनि ॥ २० ॥

सङ्खपणवनिन्नादो भेरिसद्दो समाहतो ।
खत्तियो परिवारेत्वा पूजेसि पुरिसुत्तमं ॥ २१ ॥

पच्छामुखो हत्थिनागो पक्कामि[3] पत्तिसम्मुखा ।
पुरत्थिमेन द्वारेन नगरं पाविसि तदा ॥ २२ ॥

सब्बगन्धं च मालं च पूजेन्ति नरनारियो ।
दक्खिणेन च द्वारेन निक्खमित्वा गजुत्तमो ॥ २३ ॥

ककुसन्धे च सत्थरि कोनागमने च कस्सपे ।
पतिट्ठिते भूमिभागे पोराणइसिनं[4] पुरे ॥ २४ ॥

[R.81] उपागतो[5] हत्थिराजा[5] भूमिसीसं गजुत्तमो ।
धातुयो सक्यपुत्तस्स पतिट्ठेसि[6] नरासमो ॥ २५ ॥

सह पतिट्ठिते धातू देवा तत्थ पमोदिता ।
अकम्पि तत्थ पठवि अब्भुतं लोमहंसनं ॥ २६ ॥

सभातुके पसादेत्वा महामच्चे सरट्ठके ।
थूपिट्ठिकं च कारेसि सामणेरो महिद्धिको[7] ॥ २७ ॥

[S.75] पच्चेकपूजं चाकंसु खत्तिया थूपमुत्तमं ।
वररतन[8]सञ्छन्नं धातुदीपं वरुत्तमं ॥ २८ ॥

---

1. कंसथालग्गियातं-सी. ।
2. पच्चन्ते आगते-रो. ।
3. पक्कामि-रो. ।
4. पोराणा इसयो-रो. ।
5-5. उपगन्त्वा हत्थिनागो-रो. ।
6. पतिट्ठपेसि-रो. ।
7. सुमनव्हयो-रो. ।
8. वररतनेहि-रो. ।

धातु-प्रतिष्ठापन--उस हाथी ने हर्षपूर्वक क्रौञ्चनाद किया । साथ ही नागरिकों द्वारा कांस्य धातु की बनी स्थालियाँ भी बजायी जाने लगीं, मुनि के सामने आते ही उसी क्षण यह महापृथ्वी भी काँप उठी ॥ २० ॥

शङ्ख एवं ढोल बजने लगे । दुन्दुभियाँ भी बजने लगी । राजा ने भी सामूहिक रूप से पुरुषश्रेष्ठ महान् शास्ता की (धातुओं की) पूजा की ॥ २१ ॥

तब वह मङ्गलहस्ती पीछे मुड़कर, धात्ववशेषपात्र के सामने से लौट पड़ा । तथा पूर्वाभिमुख द्वार से नगर में प्रविष्ट हुआ ॥ २२ ॥

वहाँ उपस्थित नर-नारियों ने सभी प्रकार के गन्ध द्रव्यों एवं माला-फूलों से उन धातुओं की पूजा की । तब वह श्रेष्ठ दक्षिण द्वार से निकल कर ॥ २३ ॥

वहाँ पहुँचा जहाँ कभी पहले पूर्वबुद्धों–ककुसन्ध, कोणागमन, एवं काश्यप--इन प्राचीन ऋषियों ने उस भूप्रदेश को पवित्र किया था ॥ २४ ॥

वह श्रेष्ठ मङ्गलहस्ती उस पवित्र भूमि पर आया और भगवान् के धात्ववशेषों राजा ने वहाँ प्रतिष्ठित कर दिया ॥ २५ ॥

उस धात्वशेष-पात्र के भूमि पर प्रतिष्ठित होते ही, वहाँ उपस्थित देवता अत्यधिक प्रमुदित हुए । साथ ही यह पृथ्वी भी आश्चर्यमय एवं लोमहर्षक रूप से काँप उठी ॥ २६ ॥

स्तूपनिर्माण--यों भ्राता, अपनी सेना, अधिकारियों एवं नागरिकों सहित राजा के श्रद्धा प्रकट करने के बाद, ऋद्धिसम्पन्न श्रामणेर (सुमन) ने उस स्तूप के लिये ईंटें बनवानी प्रारम्भ कीं ॥ २७ ॥

स्तूप-महोत्सव--इसी बीच वहाँ उपस्थित अन्य क्षत्रियों ने भी उस उत्तम स्तूप स्थान की अनेक तरह से पृथक्-पृथक् पूजा की । उसे विविध रत्नों एवं धातु (-सुवर्ण-रजत) के बने दीपों से सजाया ॥ २८ ॥

सेतच्छत्तं च पच्चेकछत्तं चानेकं[1] यथा[1] ।
तथारूपमलङ्कारं वालवीजनि दस्सनी[2] ॥ २९ ॥

थूपट्ठाने चतुद्दिसा पदीपेहि विभातका ।
सतरंसि उदेन्ते वो पसोभन्ति समन्ततो ॥ ३० ॥

पत्थरितेहि[3] दुस्सेहि[3] नानारङ्गेहि चित्तियो ।
आकासो विगतब्भो च[4] उपरूपरि सोभति[4] ॥ ३१ ॥

रतनमयाहि[5] निक्खन्तं चाहोसि वालिकाहि च[5] ।
कञ्चनवितानं छत्तं सोण्णमालि[6] विचित्तकं ॥ ३२ ॥

इमं[7] पस्सति सम्बुद्धो ककुसन्धो विनायको ।
चत्तालीससहस्सेहि तादीहि परिवारितो ॥ ३३ ॥

करुणाचोदितो बुद्धो सत्ते पस्सति चक्खुमा ।
ओजदीपेभयपुरे दुक्खप्पत्ते च मानसे ॥ ३४ ॥

बोधेसि[8] ते[8] बहू सत्ते बोधनेय्ये महाजने ।
बुद्धस्स आनुभावेन आदिच्चो पदुमं यथा ॥ ३५ ॥

चत्तालीससहस्सेहि भिक्खूहि परिवारितो ।
अब्भुट्ठितो व[9] सुरियो[9] ओजदीपे पतिट्ठितो ॥ ३६ ॥

[R.82] ककुसन्धो महादेवो देवकूटो च पब्बतो ।
ओजदीपेभयपुरे अभयो नाम खत्तियो ॥ ३७ ॥

1-1. द्वेथनवेकछत्तं-रो. ।
2. दस्सनियं-रो. ।
3-3. पत्थरितानि दुस्सानि-रो. ।
4-4. हि उपरि च परि-रो. ।
5-5. रतनमयपरिक्खित्तं अग्गियफलिकानि च-रो. ।
6. सोवण्णवालिक-रो. ।
7. अयं-रो. ।
8-8. ओजदीपे-रो. ।
9-9. सुरियो व-रो. ।

उस पर श्वेतच्छत्र, ऐसे ही अनेक छत्र वैसे ही अलङ्कार तथा दर्शनीय चमर भी चढ़ाये ॥ २९ ॥

उस स्तूप-स्थान में चारों दिशाओं में जलायी गयी पंक्तिबद्ध दीपमालाएँ अत्यधिक शोभित हो रही थीं ॥ ३० ॥

ऊपर आच्छादित किये गये वस्त्रों तथा रंग-विरंगी चित्तियों (वस्त्र की बनी वितान छतों) से, तथा मेघरहित आकाश से वह स्थान अपेक्षाकृत सुन्दर लग रहा था ॥ ३१ ॥

वहाँ रत्नमिश्रित बालुका बिखेर दी गयी थी । और सुनहरे वितान एवं चित्र-विचित्र सुवर्णमालाओं से आवृत छत्र लगा दिये थे ॥ ३२ ॥

अन्तःकथा[1]

(१) शास्ता सम्यक्सम्बुद्ध भगवान् ककुसन्ध चालीस हजार (४०,०००) ज्ञानियों (अर्हतों) परिवृत रहते हुए ॥ ३३ ॥

दिव्यचक्षु (ज्ञान) द्वारा करुणापूर्ण भावना से इस ओजद्वीप (लङ्काद्वीप) स्थित अभयपुर के वासी दुःखी मनुष्यों एवं प्राणियों को देखते रहते हैं ॥ ३४ ॥

तब वे वहाँ धर्म के प्रति श्रद्धालु जनों को धर्मोपदेश द्वारा सन्मार्ग पर लगाते हैं । वे धार्मिकजन भी बुद्ध के आनुभाव से अपना ज्ञान विकसित करते रहते हैं; जैसे सूर्य के कारण पद्म विकसित हुआ करता है ॥ ३५ ॥

वे (भगवान्) चालीस हजार (४०,०००) भिक्षुओं से घिरे हुए अभ्युद्गत सूर्य की तरह ओजद्वीप (उस समय के लङ्का द्वीप) में आकर विराजे ॥ ३६ ॥

उस समय ककुसन्ध शास्ता थे, महादेव इनके प्रधान शिष्य थे, इनका उपदेश-स्थल देवकूट पर्वत था, लङ्काद्वीप का नाम ओजद्वीप था, इस नगर का नाम अभयपुर था, इसके राजा का नाम अभय था ॥ ३७ ॥

1. इस कथा का अधिक विस्तार महावंस ग्रन्थ के पन्द्रहवें परिच्छेद में देखें । अनु०।

नगरं कदम्बकोकासे नदीतो आसि मापितं ।
सुविभत्तं दस्सनेय्यं रमणीयं मनोहरं[1] ॥ ३८ ॥

पुण्णकनरको नाम पज्जरो आसि कक्खलो ।
जनो संसयमापन्नो मच्छा[2] व कुमिना मुखे ॥ ३९ ॥

बुद्धस्स आनुभावेन पक्खन्तो[3] पज्जरो तदा ।
देसिते अमते धम्मे सासने[4] च पतिट्ठिते[4] ॥ ४० ॥

चतुरासीतिसहस्सानं धम्माभिसमयो अहू ।
पटियारामो तदा आसि धम्मकरकचेतियं ॥ ४१ ॥

[S 76] भिक्खुसहस्सपरिवुतो महादेवो महिद्धिको ।
पक्कन्तो व जिनो तम्हा सयमेवग्गपुग्गलो ॥ ति ॥ ४२ ॥

इमं[5] पस्सति सम्बुद्धो कोनागमनो महामुनि ।
तिंस भिक्खुसहस्सेहि समन्ता[6] परिवारितो ॥ ४३ ॥

दससहस्से सम्बुद्धे करुणं फरति चक्खुमा ।
वरदीपे महावीरो दुक्खिते पस्सति नरे[7] ॥ ४४ ॥

तम्हि दीपे[8] पबोधेतुं[9] बोधनेय्ये महाजने ।
बुद्धरंसानुभावेन आदिच्चो पदुमं यथा ॥ ४५ ॥

तिंस भिक्खुसहस्सेहि सम्बुद्धो परिवारितो ।
अब्भुट्ठितो व[10] सुरियो[10] वरदीपे पतिट्ठितो ॥ ४६ ॥

---

1. मनोरमं-रो. ।
2. मच्छो-रो. ।
3. पक्कन्तो-रो. ।
4-4. पतिट्ठिते जिनसासने– रो.
5. अयं-रो. ।
6. सम्बुद्धो-रो. ।
7. मानुसे-रो. ।
8. वरदीपे-रो. ।
9. बहुसत्ते-रो. ।
10-10. सुरियो व-रो. ।

यह नगर कदम्बक नदी के पार बसा हुआ था । यह अत्यन्त रमणीय एवं मनोहर था । इसमें भोजन, आवास आदि की सभी सुविधाएँ थीं ॥ ३८ ॥

वहाँ 'पुण्णकनरक' नाम का एक कठिन ज्वर महामारी के रूप में सम्पूर्ण प्रदेश में फैल गया, जिसने लोगों का जीवन उसी तरह संशयग्रस्त कर दिया था; जैसे गले में काँटा फँसने पर मछली का जीवन संशयग्रस्त हो जाता है ॥ ३९ ॥

भगवान् बुद्ध की कृपा से वह ज्वर स्वयं ही विलुप्त हो गया । फिर भगवान् द्वारा अमृतमय धर्म की देशना से वहाँ धर्म की प्रतिष्ठा हुई । जिसके प्रभाव से वहाँ उपस्थित चौरासी हजार प्राणियों को धर्मलाभ हुआ ॥ ४० ॥

उस समय उनके चैत्य का नाम 'धम्मकारक' एवं विहार का 'पटियाराम' रहा ॥ ४१ ॥

एक हजार भिक्षुओं से घिरे हुए वे नरश्रेष्ठ (अग्रपुद्गल) शास्ता अपने महादेव नामक प्रधान शिष्य को वहाँ प्रतिष्ठित कर अन्तर्हित हो गये ॥ ४२ ॥ (१)

(२) तीस हजार (३०,०००) भिक्षुओं से परिवृत शास्ता, सम्यक्सम्बुद्ध भगवान् (महामुनि) कोणागमन ॥ ४३ ॥

अपनी दिव्य दृष्टि द्वारा करुणासहगत चित्त से इस दशसहस्री लोकधातु को विशेषतः इस द्वीप के दुःखी प्राणियों को देखते रहते थे ॥ ४४ ॥

बुद्ध, कृपा के माहात्म्य से इस द्वीप को धर्माभिमुख करने के लिये, धर्म के प्रति श्रद्धालु जनों के हृदय को, सूर्य के द्वारा विकसित हुए पद्म की तरह, विकसित करने के लिये ॥ ४५ ॥

वे सम्यक्सम्बुद्ध तीस हजार (३०,०००) भिक्षु-परिवार के साथ, आकाश में सूर्य की तरह, इस द्वीप में आकर प्रतिष्ठित हुए ॥ ४६ ॥

कोनागमनो नाम जिनो[1] समन्तकूटपब्बते[1] ।
दीपेवासी[2] वड्ढमानो[2] समिद्धो नाम खत्तियो ॥ ४७ ॥

दुब्बुट्ठियो तदा चासुं[3] दुब्भिक्खे[4] [4]भयपीळिते ।
दुब्भिक्खदुक्खिते सत्ते मच्छा[5] वप्पोदके यथा ॥ ४८ ॥

आगते लोकनाथे च देवो सम्माभिवस्सति ।
खेमो चासि[6] जनपदो अस्सासेसि बहू जने ॥ ४९ ॥

तिस्सतळाकसामन्ते नगरे दक्खिणामुखे ।
विहारो उत्तरारामो कायबन्धनचेतियं ॥ ५० ॥

चतुरासीति सहस्सानं धम्माभिसमयो अहू ।
[R.83] देसिते अमते धम्मे सुरियो उदितो यथा* ॥ ५१ ॥

इमं[7] पस्सति सम्बुद्धो कस्सपो लोकनायको ।
वीसति भिक्खुसहस्सेहि समन्ता[8] परिवारितो ॥ ५२ ॥

कस्सपो च लोकविदू वोलोकेति सदेवकं ।
बुद्धचक्खुविसुद्धेन[9] बोधनेय्ये च पस्सति ॥ ५३ ॥
कस्सपो च लोकविदू आहुतीनं पटिग्गहो ।
फरं[10] महाकरुणाय विवादेन पकुप्पिते[10] ॥ ५४ ॥
[S 77] मण्डदीपे बहू सत्ते बोधनेय्ये च पस्सति ।
बुद्धरंसानुभावेन आदिच्चो पदुमं यथा ॥ ५५ ॥

1-1. महासुमनो सुमनकूटो च पब्बतो-रो. ।
2-2. वरदीपे वड्ढमाने-रो. ।
3. आसि-रो.।
4-4. दुब्भिक्खि आसि योनका-रो. ।
5. मच्छे-रो. ।
6. सि- रो. ।
*. भिक्खुसहस्सपरिवुतो महासुमनो पतिट्ठितो ।
पक्कन्तो च महावीरो सयमेव अग्गपुग्गलो ति ⊦ रो. अधिको पाठो ।
7. अयं-रो. ।
8. सम्बुद्धो -रो।
9. विसुद्धबुद्धचक्खुना-रो. ।
10-10. फरन्तो महाकरुणाय विवादं पस्सति कुप्पितं-रो. ।

भगवान् कोणागमन जब इस द्वीप में समन्तकूट पर्वत पर आकर विराजे तब इस द्वीप पर समृद्ध नाम का राजा राज्य करता था ॥ ४७ ॥

उस समय द्वीप में दुर्वृष्टि (अकाल) पड़ी हुई थी, इस दुर्वृष्टि के कारण लोग दुर्भिक्ष के ग्रास बनते जा रहे थे अतः सदा भयभीत रहते थे । इन दुर्भिक्ष से पीड़ित लोगों की वैसी ही स्थिति हो गयी थी जैसे अल्प जल वाले तालाब में मछलियों की हो जाती है ॥ ४८ ॥

भगवान् कोणागमन के लङ्काद्वीप में पधारने पर, वह दुर्भिक्ष समाप्त हुआ और समय पर वर्षा होने लगी । जनपद का कुशल-क्षेम बढ़ गया । जनता आश्वस्त हो गयी ॥ ४९ ॥

उस समय तिष्यतड़ाग के पास, नगर के दक्षिण पार्श्व में 'उत्तराराम' नामक उनका विहार था और 'कायबन्धन' चैत्य था ॥ ५० ।

उनके द्वारा धर्मोपदेश किये जाने पर चौरासी हजार (८४,०००) धार्मिक जनता को धर्मलाभ हुआ । उन लोगों का हृदय उसी तरह प्रकाशित हो गया जैसे सूर्य के निकलने (उदित होने) पर लोक प्रकाशित हो जाता है ॥ ५१ ॥ (२)

(३) बीस हजार (२०,०००) भिक्षुओं से घिरे हुए सम्यक्सम्बुद्ध लोकनायक भगवान् काश्यप भी ॥ ५२ ॥

जो कि लोकज्ञ थे और देवलोकसहित सकल ब्रह्माण्ड को बुद्ध चक्षु (दिव्य-दृष्टि) से देखते रहते थे कि उसमें कौन धर्म के प्रति जिज्ञासा रखता है ॥ ५३ ॥

आहुतियों के प्रतिग्राहक, लोकज्ञ भगवान् काश्यप महाकरुणा से भावित चित्त होकर विवाद (कलह) से प्रकुपित (दुःखी) मण्डद्वीपवासी बहुत से ऐसे लोगों को देख रहे थे जो धर्म के जिज्ञासु थे । वे बुद्धतेज के प्रभाव से उनके चित्त को उसी तरह विकसित करने के लिये सन्नद्ध हुए जैसे सूर्य कमल को विकसित करने हेतु सन्नद्ध होता है ॥ ५४-५५ ॥

गच्छिस्सामि मण्डदीपं जोतयिस्सामि सासनं।
पतिट्ठपेमि सम्माहं[1] अन्धकारं[2] व चन्दिमा ॥ ५६ ॥

भिक्खुगणपरिवुतो आकासे पक्कमि जिनो।
पतिट्ठितो मण्डदीपे सुरियो अब्भुट्ठितो यथा ॥ ५७ ॥

कस्सपो सब्बनन्दो च सुभकूटो च पब्बतो।
विसालं नाम नगरं जयन्तो नाम खत्तियो ॥ ५८ ॥

खेमतळाकसामन्ते नगरे पच्छिमे मुखे।
विहारो पाचीनारामो चेतियं दकसाटकं ॥ ५९ ॥

अस्सासेत्वान सम्बुद्धो कत्वा[3] समग्गभातुके[3]।
देसेसि अमतं धम्मं पतिट्ठपेसि सासनं ॥ ६० ॥

देसिते अमते धम्मे पतिट्ठिते च सासने।
चतुरासीति सहस्सानं धम्माभिसमयो अहू ॥ ६१ ॥

भिक्खुगणपरिवुतो[4] सब्बनन्दो महायसो।
पतिट्ठितो मण्डदीपे पक्कन्तो लोकनायको ॥ ति ॥ ६२ ॥

अयं हि लोके सम्बुद्धो उप्पन्नो लोकनायको।
सत्तानं अनुकम्पाय देसेसि[5] धम्ममुत्तमं[5] ॥ ६३ ॥

सो व[6] पस्सति सम्बुद्धो लोकजेट्ठो नरासभो।
नागानमासि[7] सङ्गामो[7] महासेना समागता ॥ ६४ ॥

---

1. सम्माभं-रो.।
2. अन्धकारे-रो.।
3-3 समग्गे कत्वान भातुके-रो.।
4. भिक्खुसहस्सपरिवुतो-रो.।
5-5- तारयिस्सामि पाणिनं-रो.।
6-6. से नं–सी.।
7-7. नागानं समागमत्थाय-रो.।

(उन्होंने निश्चय किया--) "मैं मण्डद्वीप (लङ्काद्वीप) जाऊँगा, वहाँ धर्मोपदेश द्वारा बुद्ध-धर्म की प्रतिष्ठा करूँगा। जैसे चन्द्रमा अन्धकार को विनष्ट कर देता है वैसे ही मैं धर्मोपदेश द्वारा वहाँ की जनता का अज्ञानान्धकार नष्ट कर दूँगा"॥ ५६ ॥

(यह निश्चय कर) वहाँ से वे भिक्षुगण से परिवृत होकर आकाशमार्ग से मण्डद्वीप में जाकर उसी तरह प्रतिष्ठित हुए जैसे सूर्य आकाश में प्रतिष्ठित रहता है ॥ ५७ ॥

उस समय भगवान् काश्यप सम्यक्सम्बुद्ध थे । उन का प्रधान शिष्य था 'सर्वनन्द' । उन्होंने जिस पर्वत पर निवास किया था उसका नाम था 'शुभकूट' । नगर का नाम था 'विशाल' । और उस नगर के राजा थे 'जयन्त' ॥ ५८ ॥

उनके विहार का नाम था 'प्राचीनाराम', जो क्षेम तड़ाग के पास नगर के पश्चिम पार्श्व में बसा हुआ था । तथा चैत्य का नाम था 'दकसाटक' ॥ ५९ ॥

इस तरह उन सम्यक्सम्बुद्ध ने वहाँ की धर्मप्रेमी जनता को आश्वस्त कर शासन की स्थापना की ॥ ६० ॥

यों भगवान् द्वारा धर्मोपदेश किये जाने पर वहाँ की धर्मप्राण जनता में से चौरासी हजार (८४,०००) पुरुषों को धर्मलाभ हुआ ॥ ६१ ॥

अन्त में भिक्षुगण से परिवृत (अपने शिष्य) महायशस्वी सर्वनन्द को उस मण्डद्वीप में प्रतिष्ठित कर भगवान् वहाँ से चल दिये ॥ ६२ ॥ (३)

(४) और ये जो (अन्तिम) लोकनायक भगवान् (गौतम बुद्ध) उत्पन्न हुए थे इन्होंने भी (द्वीप के) प्राणियों पर अनुकम्पा कर उत्तम धर्म का उपदेश किया ॥ ६३ ॥

उन लोकज्येष्ठ, पुरुषश्रेष्ठ सम्यक्सम्बुद्ध ने भी जब दिव्यदृष्टि से देखा कि यहाँ (इस द्वीप में) नागों में परस्पर युद्ध हो रहा है, दोनों तरफ की सेना युद्धरत है ॥ ६४ ॥

धूमायन्ति पज्जलन्ति वेरायन्ति चरन्ति ते ।
[R.84] महब्भयं[1] समुप्पन्नं[2] दीपं नासेन्ति पन्नगा ॥ ६५ ॥

आगमा[3] एकीभूतो व गच्छामि दीपमुत्तमं ।
मातुलं भागिनेय्यं च निब्बापेस्सामि पन्नगे ॥ ६६ ॥

अहं गोतमसम्बुद्धो पब्बते चेतियनामके ।
अनुराधपुरे रम्मे तिस्सो नामासि खत्तियो ॥ ६७ ॥

कुसिनारायं भगवा मल्लानमुपवत्तने ।
अनुपादिसेसा[4] सम्बुद्धो निब्बुतो उपधिक्खये ॥ ६८ ॥

[S 78] वस्से[5] द्वेसतातीते छत्तिंस वस्सके[5] तथा ।
महिन्दो नाम नामेन जोतयिस्सति सासनं ॥ ६९ ॥

नगरस्स दक्खिणतो भूमिभागे मनोरमे ।
आरामो च रमणीयो थूपारामो ति सुय्यरे ॥ ७० ॥

तम्बपण्णी ति नामेन[6] दीपो चायं भविस्सति[6] ।
सारीरिका[7] मम धातू[7] पतिट्ठहिस्सति साधुकं ॥ ७१ ॥

बुद्धे पसन्ना धम्मे च सङ्घे च उजुदिट्ठिका ।
भवे चित्तं विराजेति अनुला[8] नाम खत्तिया[8] ॥ ७२ ॥

देविया वचनं सुत्वा राजा थेरं इदब्रवि ।
"बुद्धे पसन्ना धम्मे च सङ्घे च उजुदिट्ठिका ॥ ७३ ॥

1-1. ति-रो. ।
2. विपुलं-रो. ।
3. अगमा-रो. ।
4-4. अनुपादिसेसाय-रो. ।
5-5. द्वे वस्ससता हेन्ति छत्तिंस च वस्सा तथा-रो. ।
6-6. सुत्वान दीपो आन्भुगतो तदा-रो. ।
7-7. सारीरिकं मम धातुं-रो. ।
8-8. पब्बाजेहि अनूलकं-रो. ।

वे एक दूसरे के लिये विषमिश्रित धूआँ छोड़ रहे हैं, क्रोध के कारण उनके मुख से अग्नि ज्वाला निकल रही है । परस्पर वैर प्रकट कर रहे हैं । तथा एक दूसरे पर आक्रमण कर रहे हैं, इस कारण द्वारा भय का वायुमण्डल बन गया है, ये नाग परस्पर युद्ध कर द्वीप को नष्ट कर रहे हैं ॥ ६५ ॥

(तब उन्होंने सोचा–)" मेरे जाने से सम्भवतः उनमें एकता हो जाय, अतः मैं लङ्का द्वीप जाऊँगा, और वहाँ इन मामा एवं भानजा नागों का युद्ध समाप्त कराऊँगा" ॥ ६६ ॥

गौतम बुद्ध अपने समय में चैत्य पर्वत पर आकर ठहरे थे । उस समय अनुराधपुर लङ्का की राजधानी थी, तथा तिष्य नाम का राजा था ॥ ६७ ॥

कुसिनारा में मल्लों के उपवन में जब भगवान् महापरिनिर्वाणमञ्च पर उपधिक्षय के अनन्तर लेटे थे ॥ ६८ ॥

(उन्होंने भविष्यवाणी की थी--) "आज से दो सौ छत्तीस वर्ष व्यतीत होने पर महेन्द्र नाम का भिक्षु (लङ्का द्वीप में) शासन की समृद्धि हेतु जायगा ॥ ६९ ॥

नगर के दक्षिण भाग में 'स्तूपाराम' बनेगा । उस समय 'ताम्रपर्णी' नाम से यह द्वीप विख्यात होगा । उसी समय मेरी शरीर-धातु यहाँ ससम्मान प्रतिष्ठित होंगी" ॥ ७० ॥

अन्तःकथावर्णन समाप्त ॥

अनुला की प्रव्रज्याकांक्षा--बुद्ध में श्रद्धा रखती हुई, धर्म एवं सङ्घ के प्रति सम्मान की दृष्टि रखती हुई, संसार के प्रति स्वचित्त में वैराग्य भावना उत्पन्न करती हुई एक अनुला देवी नाम की क्षत्रियाणी थी ॥ ७२ ॥

उस देवी के वचन सुन कर राजा ने महास्थविर के पास जाकर निवेदन किया--"भन्ते! यह अनुला बुद्ध में श्रद्धा रखती हुई...पूर्ववत्....(७२वीं गाथा की तरह) इसे आप प्रव्रज्या-दीक्षा दें" ॥ ७३ ॥

भवे चित्ता[1] विराजेति पब्बाजेथ[2] अनूलकं" ।
"अकप्पिया, महाराज, थीनं[3] पब्बज्जा[3] भिक्खुनो ॥ ७४ ॥

आगमिस्सति मे, राज[4], भगिणी सङ्घमित्तका" ।
पब्बाजेत्वान[5] मोचेतुं अनुलं[5] सब्बबन्धना ॥ ७५ ॥

सङ्घमित्ता महापञ्ञा उत्तरा च विचक्खणा ।
हेमा च मासगल्ला च अग्गिमित्ता मितंवदा[6] ॥ ७६ ॥

तप्पा पब्बतछिन्ना च मल्ला च धम्मदासिका ।
एत्तका ता भिक्खुनियो धुतरागा समाहिता ॥ ७७ ॥

ओदातमनसङ्कपा सद्धम्मविनये रता ।
खीणासवा वसिप्पत्ता तेविज्जा इद्धिकोविदा ॥ ७८ ॥

उत्तमत्थे ठिता तत्थ आगमिस्सन्ति ता इध" ।
महामच्चपरिवुतो[7] निसिन्नो खत्तियो[8] तदा ॥ ७९ ॥

[R.85] मन्तितुकामो निसीदित्वा मच्चानं[9] एतदब्बवी ।
अरिट्ठो नाम खत्तियो सुत्वा देवस्स भासितं ॥ ८० ॥

थेरस्स वचनं सुत्वा उग्गहेत्वान सासनं ।
दायकं अनुसासेत्वा पक्कमि उत्तरामुखो ॥ ८१ ॥

नगरस्सेकदेसम्हि घरं कत्वान खत्तिया ।
दससीलं[10] समादिन्ना अनुला[11] पमुखा च[12] ता ॥ ८२ ॥

---

1. चित्तं-रो. ।
2. पब्बाजेहि-रो. ।
3-3. इत्थीपब्बज्जा-रो. ।
4-4. राजा सङ्घमित्ता भगिनिया-रो. ।
5-5. अनुलं पब्बाजेत्वान मोचेसि-रो. ।
6. मितावदा-रो. ।
7. महामत्त॰-रो. ।
8. चिन्तियेे-रो. ।
9. मत्तानं-रो. ।
10. दससीले-रो. ।
11. देवी-रो. ।
12. रो. नत्थि ।

सङ्घमित्रा के आह्वान हेतु निर्देश --(स्थविर बोले--) "महाराज! स्त्रियों को प्रव्रज्या देना भिक्षुओं के लिये निषिद्ध है । राजन्! मेरी बहन सङ्घमित्रा भिक्षुणी यदि यहाँ आ जाय तो वह अनुला देवी को प्रव्रज्या देकर सभी सांसारिक बन्धनों से मुक्त कर सकती है ॥ ७४-७५ ॥

महाप्रज्ञ सङ्घमित्रा, कुशल उत्तरा, हेमा एवं मासगल्ला, मितभाषिणी अग्निमित्रा ॥ ७६ ॥

तप्पा, पर्वतच्छिन्ना, धर्मदासी, मल्ला--ये इतनी भिक्षुणियाँ धुताङ्गसम्पन्न एवं समाधिकुशल हैं ॥ ७७ ॥

ये शुद्ध मनःसङ्कल्प वाली हैं, सद्धर्म एवं विनय में तत्पर हैं । क्षीणास्रव हैं एवं स्वकीय इन्द्रियों को अधीन किये हुए हैं । त्रैविद्य एवं ऋद्धिसम्पन्न हैं ॥ ७८ ॥

उत्तम प्रयोजन (निर्वाण) की प्राप्ति में लगी हुई हैं । ये ही भिक्षुणियाँ यहाँ आयेंगीं (वे इस देवी को प्रव्रज्या-दीक्षा देंगीं) " ॥

(यह सुनकर) राजा ने अपने अमात्य (अधिकारियों) को मन्त्रणा करने की इच्छा से बैठकर मन्त्रियों को आदेश दिया ॥ ७९ ॥

सङ्घमित्रा का आनयन--तब, अरिष्ट नामक क्षत्रिय राजा के वचन सुनकर तथा स्थविर का आदेश लेकर, उत्तराभिमुख चल दिया ॥ ८० ॥

उधर, नगर के एकान्त में आवास बनाकर अनुला आदि वे देवियाँ दश शील व्रत का अभ्यास करने लगीं ॥ ८१ ॥

ये सभी पाँच सौ (५००) कन्याएँ, उच्चकुलोत्पन्न एवं तेजस्वी थीं । ये अनुला को परिवृत कर प्रातः सायं एकत्र रहने लगीं ॥ ८२ ॥

[S 79] सब्बा पञ्चसता कञ्ञा अभिजाता जुतिन्धरा ।
अनुलं परिवारेत्वा[1] सायं पातो उपट्ठिंसु[2] ॥ ८३ ॥
नावा तित्थमुपागन्त्वा[3] आरोपेत्वान[4] नावकं[4] ।
सागरं समतिक्कन्तो थले पत्वा पतिट्ठितो ॥ ८४ ॥
विञ्झाटविं अतिक्कन्तो महामच्चो महब्बलो ।
पाटलिपुत्तानुप्पत्तो गतो देवस्स सन्तिकं ॥ ८५ ॥
"पुत्तो, देव, महाराज, अहू[5] यो[5] पियदस्सनो ।
महिन्दो नाम सो थेरो पेसितो तव सन्तिकं ॥ ८६ ॥
देवानम्पियो सो राजा सहायो पियदस्सनो ।
बुद्धे अभिप्पसन्नो सो पेसितो तव सन्तिकं ॥ ८७ ॥
भातुको[6] सङ्घमित्ताय अवचीदं[6] महाइसि ।
राजकञ्ञा[7] सुप्पसन्ना[7] अनुला नाम खत्तिया ॥ ८८ ॥

सब्बा तं अपलोकेन्ति पब्बज्जाय पुरक्खका ।
भातुनो सासनं सुत्वा सङ्घमित्ता विचक्खणा ॥ ८९ ॥
तुरिता उपसङ्कम्म राजानं इदमब्रवि ।
"अनुजान, महाराज, गच्छामि दीपलङ्कतं ॥ ९० ॥

भातुनो वचनं मय्हं न[8] सक्का, देव,चारितुं[8] ।
भागिनेय्यो च सुमनो पुत्तो च जेट्ठभातुको ॥ ९१ ॥

गता तव पियो दानि[9] गमनं वारेमि[10] धीतुया ।
भारियं[11] मे, महाराज, भातुनो वचनं मम ॥ ९२ ॥
राजकञ्ञा, महाराज, अनुला नाम खत्तिया ।
सब्बा मं अपलोकेन्ति पब्बज्जाय पुरक्खका" ॥ ९३ ॥

धातुत्थूपवण्णनं निट्ठितं ॥
पण्णरसमो परिच्छेदो निट्ठितो ॥
भाणवारो पण्णरसमो निट्ठितो ॥

---

1. परिकरोन्ता-रो. ।
2. बहू जना-रो. ।
3. ०मुपगन्त्वा-रो. ।
4-4. आरोपेत्वा महानावं-रो. ।
5-5. अत्रजो-रो. ।
6-6. मातुनो वचनं तुय्हं आमन्तेसि-रो. ।
7-7. राजकञ्ञे सङ्घमित्ते-रो. ।
8-8. आमन्तेसि महाइसि-रो. ।
9. पियो मय्हं-रो. ।
10. वारेन्ति-रो. ।
11. भारिकं-रो. ।

ये सभी पाँच सौ (५००) कन्याएँ, उच्चकुलोत्पन्न एवं तेजस्वी थीं । ये अनुला को परिवृत कर प्रातः सायं एकत्र रहने लगीं ॥ ८३ ॥

उधर वह (अरिष्ट क्षत्रिय) नाव से बन्दरगाह पहुँचकर, बड़ी नौका (जलयान) में बैठकर, समुद्र को पार कर (जम्बुद्वीप की) भूमि पर उतरा ॥ ८४ ॥

फिर विन्ध्य वन पार करता हुआ, वह महाबलशाली महामात्य क्रमशः पाटलिपुत्र नगर पहुँच कर राजा (अशोक) के पास पहुँचा ॥ ८५ ॥

और राजा से उसने यह निवेदन किया--"देव ! आपके प्रियदर्शन पुत्र महेन्द्र स्थविर ने मुझ को आपकी सेवा में भेजा है ॥ ८६ ॥

"साथ ही, आपके प्रियदर्शन मित्र राजा देवानाम्प्रिय तिष्य ने भी मुझको आपके पास भेजा है, जो कि भगवान् बुद्ध के प्रति अत्यधिक श्रद्धा रखते हैं ॥ ८७ ॥

उस सङ्घमित्रा के भाई महेन्द्र महर्षि ने यह सन्देश दिया है--"अनुला नाम की राजकन्या बुद्धधर्म में अत्यधिक श्रद्धासम्पन्न है ॥ ८८ ॥

"वह कुछ अन्य राजकन्याओं के साथ प्रव्रज्यादीक्षाहेतु उत्सुक हैं ।"

भाई का सन्देश सुनकर बुद्धिमती सङ्घमित्रा ॥ ८९ ॥

शीघ्र ही राजा के पास जाकर यह वचन बोली--"महाराज! मुझे लङ्काद्वीप जाने की अनुमति दीजिये ॥ ९० ॥

"मैं भाई का वचन (आदेश) नहीं टाल सकती । मेरा भागिनेय सुमन एवं आपके भी प्रिय मेरे भाई वहाँ मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं । भाई का वचन टालना मेरे लिये कठिन हो रहा है ॥ ९१-९२ ॥

"महाराज! अनुला देवी नामक राजकन्या भी प्रव्रज्या-दीक्षा ग्रहण करने हेतु वहाँ मेरी प्रतीक्षा कर रही है" ॥ ९३ ॥

स्तूपनिर्माणोपक्रम-वर्णन समाप्त ॥

पन्द्रहवाँ परिच्छेद समाप्त ॥

पन्द्रहवाँ भाणवार भी समाप्त ॥

•

१६.

सोळसमो परिच्छेदो
(बोधि-आगमनं)

[S 80, R. 86] चतुरङ्गिनिं महासेनं सन्नय्हित्वान खत्तियो ।
तथागतस्स सम्बोधिं आदाय पक्कमी तदा ॥ १ ॥

तीनि[1] रज्जानि[1] तिक्कन्तो विञ्झाटविं च खत्तियो ।
अतिक्कन्तो ब्रहारञ्ञं अनुप्पत्तो महण्णवं[2] ॥ २ ॥

चतुरङ्गिणी महासेना भिक्खुनी सङ्घसाविका ।
महासमुद्दं पक्कन्ता आदाय बोधिमुत्तमं ॥ ३ ॥

उपरि दिब्बं[3] तुरियं हेट्ठतो च मनुस्सकं ।
चातुद्दिसं[4] मानुसिकं[4] पक्कन्तं[5] जलसागरे ॥ ४ ॥

मुद्धनि अवलोकेत्वा खत्तियो पियदस्सनो ।
अभिवादयित्वा [6]बोधिं इममत्थं अभासथ ॥ ५ ॥

बहुस्सुतो इद्धिमन्तो सीलवा सुसमाहितो ।
"दस्सने कम्पने[7] मय्हं अतपेय्यं महाजनं" ॥ ६ ॥

तत्थ कन्दित्वा रोदित्वा ओलोकेत्वान दस्सना[8] ।
खत्तियो थ निवत्तित्वा[9] अगमा सकनिवसनं ॥ ७ ॥

1-1 तीसु रज्जेसु-रो. ।
2. जलसागरं-रो. ।
3. देवानं-रो. ।
4–4चातुदिसा मानुसतुरियं-रो. ।
5. पक्कन्तो-रो. ।
6. तं. -रो. ।
7. अकप्पियं-रो. ।
8. दस्सनं-रो. ।
9. पटिनिवत्तेत्वा-रो. ।

सोलहवाँ परिच्छेद

(महाबोधि-आगमन)

बोधि का लङ्काद्वीप–प्रेषण–तब महाराज अशोक अपनी विशाल चतुरङ्गिणी सेना के साथ तथागत की बोधि (वृक्ष) लेकर चल दिये ॥ १ ॥

यों, तीन राज्यों को पार कर, विन्ध्य पर्वत के घोर जङ्गल को भी लाँघकर, क्रमशः समुद्र तट पर पहुँचे ॥ २ ॥

तब उस सङ्घश्राविका सङ्घमित्रा ने चतुरङ्गिणी सेना एवं महाबोधि के साथ समुद्र के मार्ग से लङ्काद्वीप की तरफ यात्रा प्रारम्भ की ॥ ३ ॥

उस समय, ऊपर देवताओं ने तथा नीचे मनुष्यों ने वाद्यध्वनि की । उस अवसर पर वहाँ की जनता दर्शनहेतु समुद्र तट पर आ गयी ॥ ४ ॥

बहुश्रुत, ऋद्धिसम्पन्न, शीलवान्, शरीर तथा इन्द्रियों की क्रियाओं से समाहित, प्रियदर्शी राजा अशोक ने ऊपर देखकर उस महाबोधि को प्रणाम किया । और वह यों बोला-- ॥ ५ ॥

"मैं आज इस वेला में दर्शन व स्पर्शन के लिये किसी को भी नहीं रोकूँगा" ॥ ६ ॥

यों अनेक तरह से विलाप एवं रुदन करते हुए महाबोधि का दर्शन कर वह राजा पुनः अपने नगर में लौट आया ॥ ७ ॥

उंदके[1] निम्मिता नागा देवाकासे[2] च निम्मिता ।
रुक्खे च निम्मिता देवा नाना निवेसनं पि च ॥ ८ ॥

परिवारयिसुं ते सब्बे गच्छन्तं बोधिमुत्तमं ।
अमनापा पिसाचा च भूतकुम्भण्डरक्खसा ॥ ९ ॥

बोधिं पच्चन्तमायन्तं परिवारिंसु अमानुसा[3] ।
तावतिंसा च यामा च तुसिता पि च देवता ॥ १० ॥

निम्मानरत्तिनो देवा ये देवा वसवत्तिनो ।
बोधिं पच्चन्तमायन्तं तुट्ठहट्ठा पमोदिता ॥ ११ ॥

तेत्तिंसा च देवपुत्ता सब्बे इन्दपुरक्खका ।
बोधिं पच्चन्तमायन्तं अप्फोटेन्ति भुजं पि च ॥ १२ ॥

कुवेरो धतरट्ठो च विरूपक्खो विरूळहको ।
चत्तारो ते महाराजा समन्ता चतुरो दिसा ॥ १३ ॥

[S 81] परिवारयिंसु सम्बोधिं गच्छन्तं दीपलङ्कतं ।
महामुखपटाहारा[4] दिविल्लानतदिन्दिमा ॥ १४ ॥

बोधिं पच्चन्तमायन्तं साधु कीळन्ति देवता ।
पारिच्छत्तकपुप्फं च दिब्बं मन्दारवं[5] पि च ॥ १५ ॥

[R.87] दिब्बचन्दनचुण्णं च अन्तलिक्खे पवस्सति ।
बोधिं पच्चन्तमायन्तं पूजयन्ति च देवता ॥ १६ ॥

चम्पका सरळा निम्बा नागपुन्नागकेतकी[6] ।
जलण्णवे[7] महाबोधिं देवा पूजेन्ति सत्थुनो ॥ १७ ॥

---

1. च-रो. ।
2. देवताकासे-रो. ।
3. मानुसा-सी. ।
4. महामुखपटहारो-रो. ।
5. मन्दारवानि-रो. ।
6. केतका-रो. ।
7. देवताकासे-रो. ।

देवताओं द्वारा बोधिपूजा--समुद्रवासी नागों ने, स्वर्ग के निवासी देवताओं ने, वृक्षों के अधिष्ठातृ देवताओं ने उस यात्रा के लिये सन्नद्ध बोधि को घेर लिया और इसी तरह, देखने में अप्रिय पिशाच, भूत, कुम्भाण्ड एवं राक्षसों ने भी पास आने पर उस को घेर लिया ॥ ८-१० ॥

इसी तरह, त्रायस्त्रिंश, याम, तुषित, निर्माणरति एवं वशवर्ती देवों ने भी तुष्ट, हृष्ट और प्रमुदित हो कर उसको घेर लिया ॥ ११ ॥

इन्द्र आदि तेतीस (३३) देवपुत्र भी, सभी बोधि के समीप आने पर अत्यधिक हर्ष प्रकट करते हुए भुजाओं से अपने शरीर का पार्श्व भाग बजाने लगे ॥ १२ ॥

कुबेर, धृतराष्ट्र, विरूपाक्ष एवं विरूढक–ये चार महाराज (दिक्पाल) भी चारों तरफ की दिशाओं से वहाँ आकर लङ्का द्वीप जाती हुई बोधि को घेर कर खड़े हो गये । और बड़े-बड़े वाद्ययन्त्रों को बजाते हुए अपना हर्ष प्रकट करने लगे ॥ १३-१४ ॥

हर्षोत्सव– वे देवता बोधि के पास आनेपर हर्षोन्मत्त होकर स्वच्छन्दतापूर्वक क्रीड़ा करने लगे । पारिजातक एवं मन्दार फूल बरसाने लगे ॥ १६ ॥

उस समय उन्होंने इतना दिव्य चन्दन-चूर्ण उड़ाया कि आकाश भी ढक गया । इस तरह उन देवताओं ने उस बोधि की नाना प्रकार से पूजा की ॥ १६ ॥

चम्पक, सरल, नीलपुष्प (कमल) प्रपुन्नाग एवं केतकी (केवड़ा) के फूलों से देवताओं ने उस जलयात्रा के लिये सन्नद्ध महाबोधि की पूजा की ॥ १७ ॥

नागराजा नागकञ्ञा नागपोता बहू जना ।
भवनतो निक्खमित्वा पूजेन्ति बोधिमुत्तमं ॥ १८ ॥

नाना विरागवसना नानारागविभूसिता ।
सागरे[1] तं महाबोधिं नागा पूजेन्ति[2] सत्थुनो[2] ॥ १९ ॥

उप्पलं[3] कुमुदं नीलं[3] पुप्फा च सतपत्तकं ।
कल्लहारं कुवलया[4] विमुत्तमधु[5] गन्धिकं ॥ २० ॥

तक्कारिकं कोविळारं पाटलिं बिम्बजालकं ।
असोकं सालपुप्फं च मिस्सकं च पियङ्गुकं ॥ २१ ॥

नागा पूजेन्ति ते बोधिं सोभति जलसागरे·।
आमोदिता नागकञ्ञा नागराजा पमोदिता ॥ २२ ॥

बोधिं पच्चन्तमायन्तं नागा कीळन्ति सत्थुनो ।
तत्थ मणिमया भूमि मुत्ताफलिकसन्थता ॥ २३ ॥

आरामपोक्खरणियो नानापुप्फेहि चित्तिता[6] ।
सत्ताहकं वसित्वान सदेवा मानुसा[7] तहिं[7] ॥ २४ ॥

भवनतो निक्खमित्वा[8] पूजेन्ति बोधिमुत्तमं ।
मालादामकलापा च नागकञ्ञा च देवता ॥ २५ ॥

आविज्झन्ति च चेलानि सम्बोधिंपरिवारिता ।
बोधिं पच्चन्तमायन्तं साधु कीळन्ति देवता ॥ २६ ॥

---

1. जलसागरे-रो. ।
2-2 कीळेन्ति साधुनो-रो. ।
3--3 ० पदुमकुमुदनीलानि-रो. ।
4. कुवलयं-रो. ।
5. अधिमुत्त. -रो. ।
6. विचित्ता-रो. ।
7. सहमानुसा-रो. ।
8. निक्खमन्तं-रो. ।

इसी तरह, नागराज, नागकन्या एवं नागपुत्र आदि बहुत से प्राणी अपने अपने घरों से निकल कर उस बोधि की पूजा के लिये वहाँ आये ॥ १८ ॥

अनेक प्रकार के रंग-विरंगे परिधान पहने, नाना अलङ्कारों से विभूषित होकर वे नाग शास्ता की समुद्र स्थित उस महाबोधि की पूजा करने लगे ॥ १९ ॥

उत्पल, कुमुद, नीलपुष्प, शतपत्रक, कल्हार (सौगन्धिक), कुवलय आदि विशिष्ट मीठी गन्धवाले ॥ २० ॥

तक्कारी (वैजयन्ती), कोविदार, पाटल, बिम्बजालक, अशोक, शालपुष्प, मिश्रक एवं प्रियङ्गुक ॥ २१ ॥

फूलों से, प्रमुदित नागदेवताओं तथा नाग-कन्याओं, ने उस जलसमुद्र में स्थित महाबोधि की पूजा की ॥ २२ ॥

उस बोधि को सामने देखकर वे इतने प्रमुदित हुए कि वहाँ खेलते-खेलते उन्होंने वहाँ की भूमि को स्फटिक मणि एवं मुक्ताओं से भर डाला ॥ २३ ॥

वहाँ के विहारों की पुष्करिणियाँ पुष्पवृष्टि से चित्र-विचित्र हो गयीं । यों उन देवताओं और मनुष्यों ने सप्ताहपर्यन्त वहीं रहकर हर्षोत्सव मनाया ॥ २४ ॥

वे अपने अपने घरों से निकल कर उस उत्तम बोधि की पूजा करते रहे । उनमें मालाओं के गुच्छे हाथ में ली हुई नागकन्याएँ और देवता–सभी थे ॥ २५ ॥

वे देवता बोधि को घेरकर हर्षपूर्वक आकाश में रुमाल (वस्त्रखण्ड) उड़ाने लगे । यों, बोधि के समीप रहकर नाना प्रकार की क्रीड़ाएँ करते रहे ॥ २६ ॥

पारिच्छत्तकपुप्फं च दिब्बमन्दारवं[1] पि च[1] ।
दिब्बचन्दनचुण्णं च अन्तलिक्खे पवस्सति ॥ २७ ॥

[S 82] नागा यक्खा च भूता च सदेवा अथ[2] मानुसा[2] ।
जलसागरमायन्तं सम्बोधिं परिवारिता ॥ २८ ॥

तत्थ नच्चन्ति गायन्ति वादयन्ति हसन्ति च ।
भुजं पोठेन्ति दिगुणं ते बोधिपरिवारिता ॥ २९ ॥

नागा यक्खा च भूता च सदेवा अथ[2] मानुसा[2] ।
कित्तेन्ति मङ्गलं सोत्थिं नीयन्ते[3] बोधिमुत्तमे ॥ ३० ॥

नागा धजपग्गहिता नीलोभासा मनोरमा ।
कित्तेन्ति बोधिया[4] वण्णं पतिट्ठा[4] दीपलञ्जके ॥ ३१ ॥

अनुराधपुरा रम्मा निक्खमित्वा बहू जना ।
[R.88] सम्बोधिं उपसङ्कन्ता सह देवेहि खत्तिया[5] ॥ ३२ ॥

परिवारयिसुं सम्बोधिं सह पुत्तेहि खत्तिया[6] ।
गन्धमालं च पूजेसुं गन्धगन्धानमुत्तमं ॥ ३३ ॥

वीथियो च सुसम्मट्ठा अग्घिया च अलङ्कता ।
पतिट्ठिते[7] बोधिराजे[8] कम्पित्थ पठवी तदा ॥ ति ॥ ३४ ॥

दापेसि राजा अट्ठट्ठ खत्तिये[9] च पनट्ठसु ।
सब्बजेट्ठं बोधिगुत्तं रक्खितुं बोधिमुत्तमं ॥ ३५ ॥

---

1. ० मन्दारवानि च-रो. ।
2-2 समानुसा-रो. ।
3. नीयते-रो. ।
4-4 बोधिमुत्तमं पतिट्ठं-रो. ।
5. खत्तियो-रो. ।
6. खत्तियो-रो. ।
7. सह० -रो. ।
8. बोधि-रो. ।
9. खत्तियेसु-रो. ।

उस समय, पारिजात एवं मन्दार के पुष्प तथा दिव्य चन्दन-चूर्ण इतना बिखेरा गया कि उससे वहाँ का आकाश भी आवृत्त हो गया ।। २७ ।।

नाग, यक्ष, भूत-प्रेत, देवता एवं मनुष्यों ने समुद्रस्थित उस बोधि को घेर लिया ।। २८ ।।

वे बोधिवृक्ष को घेरे हुए वहाँ नाचते रहे, गाते रहे, बाजे बजाते रहे, हास-परिहास करते रहे । हर्षपूर्वक **बाँहें** बजाते रहे ।। २९ ।।

इस तरह वहाँ उपस्थित सभी नाग, यक्ष, भूत-प्रेत, देवता एवं मनुष्य उस बोधिवृक्ष के सम्मुख माङ्गलिक स्वस्तिवाचन करते रहे ।। ३० ।।

द्वीप के समीप आने पर, नागदेवताओं ने नीलवर्ण की सुन्दर ध्वजाएँ हाथों में लेकर, बोधि के रूप की प्रशंसा की ।। ३१ ।।

बोधि का अनुराधपुर-आगमन– उस शुभ अवसर पर, बहुत से नागरिक रम्य अनुराधपुर से निकल कर, देव (राजा) और क्षत्रियों (अधिकारियों) के साथ उस बोधि के सम्मुख पहुँचे ।। ३२ ।।

अपने पुत्रों सहित उन अधिकारियों ने उस बोधि को (सुरक्षाहेतु) घेर लिया । और उत्तम उत्तम गन्धयुक्त गन्ध-द्रव्यों एवं मालाओं से उस बोधि की पूजा की ।। ३३ ।।

उस समय नगर के मार्ग (वीथियाँ) साफ किये गये महँगे अलङ्कारों से सजाये गये । यो, उस बोधिराज को नाव से उतार कर भूमि पर प्रतिष्ठित करते समय भूमि भी कम्पित हो उठी ।। ३४ ।।

तब राजा ने उस बोधि की सुरक्षा हेतु आठ-आठ (८-८) क्षत्रियों (सुरक्षाधिकारियों) को नियुक्त किया । और उनका भी प्रधान बोधिगुप्त को बनाकर बोधि की रक्षा और सुदृढ़ की ।। ३५ ।।

अदा[1] सब्बपरिहारं सब्बालङ्कारभासुरं[2] ।
सोळसाथ[3] महालेखा धरणी बोधिगारवा ॥ ३६ ॥
तथा सुसिञ्चत्थरणं[4] महालेखट्ठाने ठपि[5] ।
कुलं[6] सहस्सकं कत्वा केतुछादित्तपालकं[7] ॥ ३७ ॥
सुवण्णभेरियो[8] अट्ठ[9] अभिसेकादि मङ्गले ।
एकं जनपदं दत्वा चन्दगुत्तं ठपेसि च ॥ ३८ ॥
देवगुत्तं च पासादं भूमिं चेकं यथारहं ।
तेसं[10] कुलानमञ्ञेसं[10] गामभोगे परिच्चजि ॥ ३९ ॥
रञ्ञो पञ्चसता कञ्ञा अग्गजाता यसस्सिनी ।
पब्बाजिंसु च ता सब्बा वीतरागा समाहिता ॥ ४० ॥
कुमारिका पञ्चसता अनुला परिवारिता ।
पब्बाजिसुं[11] च ता सब्बा वीतरागा अहू[12] तदा[12] ॥ ४१ ॥
[S 83] अरिट्ठो खत्तियो नाम निक्खन्तो च[13] भयद्दितो[14] ।
पञ्चसतपरिवारो पब्बजि जिनसासने ॥ ४२ ॥
सब्बे चारहत्तपत्ता सम्पुण्णा जिनसासने ।
हेमन्ते पठमे मासे पुप्फिते धरणीरुहे ।
आगतो सो महाबोधि पतिट्ठो तम्बपण्णिके ॥ ति ॥ ४३ ॥

भाणवारो सोळसमो निट्ठितो ॥

बोधियागमनं निट्ठितं ॥

सोळसमो परिच्छेदो निट्ठितो ॥

●

1. अदासि-रो. ।
2. ० फासुकं-रो. ।
3. सोळस लङ्का-रो. ।
4. ० चापि-रो. ।
5. ठपे-रो. ।
6. सो-रो. ।
7. पालनं-रो. ।
8. भेरिया-रो. ।
9. रट्ठ-रो. ।
10-10 कुलानं तदा अञ्ञेसं-वा-रो. ।
11. पब्बजिंसु-रो. ।
12. समाहिता-रो. ।
13. रो. नत्थि।
14. भयअन्दुतो-रो. ।

यों, सर्वप्रकार का संरक्षण देकर तथा सभी अलङ्कारों से अलङ्कृत कर, बोधि का सम्मान प्रकट करने हेतु पृथ्वी पर सोलह (१६) रेखाएँ खींच दीं ॥ ३६ ॥

रेखाओं के स्थान पर, अच्छा आवरण (चादर) बिछा दिया । यों उस बोधि की रक्षा करने वाले आठों कुलों को भी अत्यधिक धन देकर सम्मानित किया ॥ ३७ ॥

उनमें चन्द्रगुप्त अधिकारी को अभिषेकादि माङ्गलिक कृत्यों के अवसर पर कार्यनिष्पादक आठ (८) सुवर्णभेरियाँ दीं, एवं एक जनपद पुरस्कार में दिया ॥ ३८-३९ ॥

इसी तरह, देवगुप्त को एक प्रासाद तथा कुछ भूमि पुरस्कारस्वरूप प्रदान की । इसी प्रकार, अन्य (कुल-) क्षत्रियों को यथायोग्य ग्राम आदि पुरस्कार में दिये ॥ ४0 ॥

राजपरिवार की वे वीतराग उच्चकुलोत्पन्न यशस्विनी सभी पाँच सौ कन्याएँ, उस अवसर पर प्रव्रजित हुईं ॥ ४१ ॥

यों वे पाँच सौ कन्याएँ अनुला देवी के साथ ही प्रव्रजित हुईं, ये सभी संसार में अनासक्त हो चुकी थीं ॥ ४२ ॥

उधर वह अरिष्ट क्षत्रिय भी संसार-भय से त्रस्त हो कर पाँच सौ (५00) परिवारों के साथ बुद्धधर्म में प्रव्रजित हुआ ॥ ४३ ॥

प्रव्रजित हुए ये सभी भिक्षु यथासमय अर्हत् हो गये । उधर वह महाबोधि भी (जम्बुद्वीप से आकर) ताम्रपर्णी द्वीप में आकर प्रतिष्ठित हो गयी ॥ ४४ ॥

सोलहवाँ परिच्छेद समाप्त ॥
महाबोधि-आगमन वर्णन समाप्त ॥
सोलहवाँ भाणवार भी समाप्त ॥

●

(इस कथा का विस्तार महावंश के १८-१९ परिच्छेदों में देखें–अनु.)

१७.

सत्तरसमो परिच्छेदो

(महिन्दस्स परिनिब्बानं)

बत्तिंसयोजनं दीघं अट्ठारसहि वित्थतं ।
योजनानं सतावट्टं सागरेन परिक्खितं ॥ १ ॥

[R.89] लङ्कादीपवरं नाम सब्बत्थ रतनाकरं ।
उपेतं नदीतळाकेहि पब्बतेहि वनेहि च ॥ २ ॥

दीपं पुरं च राजा च उद्देसिकं[1] च धातुयो ।
थूपं दीपं[2] पब्बतं च[2] उय्यानं बोधि भिक्खुनी ॥ ३ ॥

भिक्खु च बुद्धसेट्ठो च तेरस होन्ति ते तहिं ।
एकदेसे चतुन्नामं[3] सुणाथ मम भासतो ॥ ४ ॥

ओजदीपं वरदीपं मण्डदीपं वुच्चति ।
लङ्कादीपवरं नाम 'तम्बपण्णी' ति ञायति ॥ ५ ॥

---

1. उपद्दुतं च-रो. ।
2-2 दीपञ्च पब्बतं-रो. ।
3. चतुरो नामं-रो. ।

सत्रहवाँ परिच्छेद

(महेन्द्र का परिनिर्वाण)

लङ्काद्वीप का विस्तार—यह लङ्काद्वीप बत्तीस (३२) योजन लम्बा (दीर्घ) है, अट्ठारह (१८) योजन विस्तृत है, तथा सौ (१००) योजन चारों तरफ वृत्त (घिराव) है। यह सब तरफ समुद्र से घिरा हुआ है ॥ १ ॥

लङ्काद्वीप की विशेषता—यह लङ्का द्वीप अन्य द्वीपों से श्रेष्ठ है; क्योंकि इसमें अनेक स्थानों में रत्नों का कोष (खजाना) है। इसमें स्थान स्थान पर नदी, तड़ाग, पर्वत एवं वन हैं ॥ २ ॥

शासनोपयोगी तेरह (१३) विषयों का ज्ञान—बुद्ध-शासन की ऐतिहासिक प्रामाणिकता के ज्ञानहेतु इन तेरह (१३) बातों का ज्ञान होना आवश्यक है। जैसे– १. द्वीप, २. नगर, ३. राजा, ४. उद्देशक (सङ्केतक या वह कारण जिससे वहाँ उपदेश दिया गया हो), ५. शरीर-धातु-निधान का स्थान, ६. स्तूप, ७. बोधिस्थान ८. पर्वत, ९. उद्यान, १०. (बोधिवृक्ष), ११. प्रधान भिक्षुणी, १२. अग्र भिक्षु एवं १३. बुद्ध। (अर्थात् बुद्धशासन के सूक्ष्म ज्ञान के लिये प्रामाणिकतया यह ज्ञान होना आवश्यक है कि कौन बुद्ध किस द्वीप में अवतरित हुए थे? किस नगर में उनका जन्म हुआ था? उस समय कौन राजा था? आदि। तभी वह व्यक्तिबुद्ध-शासन का प्रामाणिक ज्ञाता माना जाता है। (अतः इस परिच्छेद में इन्हीं तेरह का विस्तृत वर्णन किया जा रहा है।) ॥ ३ ॥

यहाँ, इन तेरह बातों का पृथक् पृथक् वर्णन करते हुए, सौकर्य (सुगमता) की दृष्टि से एक एक बात का चतुर्धा वर्णन किया जायगा (जिससे क्रमशः उस बात को इस काल में हुए चारों बुद्धों के लिये क्रमशः पृथक् पृथक् समझा जा सके)। उसे कहता हूँ, आप लोग सुनें ॥ ४ ॥

द्वीप नाम– जैसे- १. ओजोद्वीप, २. वरद्वीप, ३. मण्डद्वीप एवं ४. लङ्काद्वीप। (अर्थात् इसे यों समझना चाहिये–१. ककुसन्ध भगवान् के समय इस द्वीप का नाम था–'ओजोद्वीप' २. कोणागमन भगवान् के समय इस द्वीप का नाम था 'वरद्वीप', काश्यप भगवान् के समय इस द्वीप का नाम था-'मण्डद्वीप'; एवं ४. हमारे बुद्ध भगवान् (गौतम) के समय इस द्वीप का नाम हुआ 'लङ्काद्वीप') ॥ ५ ॥

अभयं[1] वड्ढमानं च[2] विसालमनुराधकं[3] ।
पुरस्सेतं[4] चतुन्नामं[4] चतुबुद्धान सासने ॥ ६ ॥

अभयो च समिद्धो च जयन्तो च नराधिपो ।
देवानम्पियतिस्सो च राजानो होन्ति चातुरो ॥ ७ ॥

रोगो दुब्बुट्ठिकं चेव विवादो[5] यक्खवासना[5] ।
चतुरो उपद्दुता एते चतुबुद्धविनोदिता ।
ककुसन्धस्स बुद्धस्स[6] धात्वासि[7] धम्मकरको[8] ॥ ८ ॥

[S 84] कोनागमनबुद्धस्स धात्वासि[9] कायबन्धनं[9] ।
कस्सपस्स मुनिन्दस्स[10] धात्वासि[11] जलसाटिका[11] ॥ ९ ॥

गोतमस्स सिरीमतो दोणा[12] सारीरिका अहू[13] ।
अभये[14] पटियारामो वड्ढमानस्स उत्तरो[15] ॥ १० ॥

विसाले पाचीनारामो थूपारामोनुराधके [16] ।
दक्खिणे चतुरो थूपा चतुबुद्धान सासने ॥ ११ ॥

कदम्बकस्स सामन्ता नगरं अभयं पुरं ।
तिस्सतळाकसामन्ता नगरं वड्ढमानकं ॥ १२ ॥

---

1. अभयपुरं- रो. ।
2. रो. पोत्थके नत्थि ।
3. पुरं-रो. ।
4-4 पुरस्स चतुरो नामं-रो. ।
5-5 विवादयक्खाभिवासनं-रो. ।
6. भगवतो-रो. ।
7. धातु-रो. ।
8. अहू-रो. ।
9-9 धातु कायबन्धनं अहू-रो. ।
10. सम्बुद्धस्स-रो. ।
11-11 धातु उदकसाटकं-रो. ।
12. धातु-रो. ।
13. रो. नत्थि ।
14. अभयपुरे-रो. ।
15. उत्तरा-रो. ।
16. अनुराधस्स-रो. ।

पुरों के नाम–चारों बुद्धों के शासन में चार पुरों (नगरों) के पृथक् पृथक् नाम ये थे– १. अभय (भगवान् ककुसन्ध के समय यह नगर लङ्काद्वीप में प्रथम धर्मोपदेश-स्थल रहा था); २. वर्धमान (भगवान् कोणागमन के समय.); ३. विशाल (भगवान् काश्यप के समय.), एवं ४. अनुराधपुर (भगवान् गौतम बुद्ध के समय) ॥ ६ ॥

राजाओं के नाम– चारों बुद्धों के अवतार के समय उस उस नगर के क्रमशः ये राजा थे । जैसे– १. अभय (यह राजा भगवान् ककुसन्ध के समय अभयनगर का राजा था); २. समृद्ध (यह राजा भगवान् कोणागमन के समय वर्धमाननगर का राजा था); ३. जयन्त (यह राजा भगवान् काश्यप के समय विशालनगर का राजा था); एवं ४. देवानम्प्रिय तिष्य (यह राजा भगवान् के बुद्ध के वर्तमान शासनकाल में अनुराधपुर का राजा था) ॥ ७ ॥

चार उद्देशक (उपद्रव)–चारों बुद्धों के समय उन उन नगरों में ये ये उपद्रव हुए थे जिनके कारण उनको वहाँ धर्मोपदेश के लिये जाना पड़ा । जैसे १. रोग (भगवान् ककुसन्धके समय अभय नगर रमें प्रज्वरक रोग (महामारी) हुआ था, उसे शान्त करने के लिये वे वहाँ पधारे थे); २. दुर्वृष्टि (भगवान् कोणागमन के समय वर्धमानगर में यह उपद्रव हुआ); ३. विवाद (भगवान् काश्यप के समय विशाल नगर में यह उपद्रव हुआ) ४. यक्षदमन (भगवान् गौतम बुद्ध के समय अनुराधपुर में यक्षों का उपद्रव हुआ था...) ॥ ८ ॥

चार धात्ववशेष– इन चारों बुद्धों की धातुएँ ये थीं- १. ककुसन्ध बुद्ध की धातु (अवशेष) था धम्मकरक (जल छानने वस्त्र); २. कोणागमन बुद्ध का धात्ववशेष था काय-बन्धन (कमर में बाँधने की पट्टी), ३. काश्यप बुद्ध की जलशाटिका ही उनका धात्ववशेष थी; एवं ४. गौतम बुद्ध के धात्ववशेष उनकी एक द्रोण शारीरिक अस्थियाँ थीं ॥ ९-१० ॥

चार आराम– अतीत चार (४) बुद्धों के आरामों (विहारों) के नाम ये हैं–१. अभयनगर में पटियाराम (भगवान् ककुसन्ध का); २. वर्धमाननगर में उत्तराराम (भगवान् कोणागमन का); ३. विशालनगर में प्राचीनाराम (भगवान् काश्यप का); एवं ४. भगवान् गौतम बुद्ध का अनुराधपुर में स्तूपाराम । एवं चारों बुद्धों के शासन में उनके पृथक् पृथक् स्तूप थे ॥ ११ ॥

चार स्तूप–१. अभयनगर में कदम्बक के समीप (भगवान् ककुसन्ध का); २. तिष्यतड़ाक के समीप वर्धमानकनगर में (भगवान् कोणागमन का); ३. क्षेमतड़ाग के समीप विशाल नगर में (भगवान् काश्यप का); एवं ४. अनुराधपुर में (भगवान् बुद्ध का) । यों ये चार स्तूप लङ्काद्वीप में विद्यमान हैं ॥ १२-१३ ॥

खेमतळाकसामन्ता विसालं नगरं अहू[1] ।
अनुराधपुरे तत्थ[2] चतुद्दीप[3] विचारणा[3] ॥ १३ ॥

देवकूटो सीलकूटो[4] सुभकूटो[5] ति वुच्चति ।
सुमनकूटो चेदानि[5] चतुपण्णं ति पब्बते ॥ १४ ॥

महातित्थं मनुय्यानं[6] महानामं च सागरं ।
महामेधवनं नाम वत्तेतुमिरियापथं[7] ॥ १५ ॥

चतुन्नं[8] लोकनाथानं पठमाहु[9] सेनासनं[9] ।
[R.90] ककुसन्धस्स मुनिनो[10] सिरीसबोधिमुत्तमं ॥ १६ ॥

आदाय दक्खिणं साखं रुचिनन्दा महिद्धिका ।
ओजदीपे महातित्थे आरामे तत्थ रोपिता ॥ १७ ॥

कोनागमनबुद्धस्सोदुम्बरं बोधिमुत्तमं ।
आदाय दक्खिणं साखं कन्दनन्दा महिद्धिका ॥ १८ ॥

वरदीपे महानामे[11] आरामे तत्थ रोपिता ।
कस्सपस्स मुनिन्दस्स[12] निग्रोधबोधिमुत्तमं ॥ १९ ॥

आदाय दक्खिणं साखं सुधम्मा च महिद्धिका ।
सागरे[13] नाम आरामे रोपितं दुमचेतियं ॥ २० ॥

---

1. रो. न. दिस्सति।
2. तत्थेव-रो. ।
3-3 चतुरो दीपविचारणं-रो. ।
4. सुमनकूटो- रो. ।
5-5 सुभकूटो ति वुच्चति । सीलकूटो नामदानि- रो. ।
6-6 नाम उद्यानं -रो. ।
7. वसन्तं-० रो. ।
8. चतुरो- रो. ।
9-9 पठमं सेनासनं अहू - रो. ।
10. भगवतो- रो. ।
11. महानोमम्हि-रो. ।
12. भगवतो-रो. ।
13. सागरम्हि-रो. ।

चार पर्वत– चारों बुद्धों से सेवित ये चार पर्वत थे; जैसे–१. देवकूट (ओजद्वीप में भगवान् ककुसन्ध का), २. शीलकूट (वरद्वीप में भगवान् कोणागमन का)३. शुभ्रकूट (भगवान् काश्यप का मण्डद्वीप में); एवं ४. सुमनकूट (भगवान् गौतम बुद्ध का वर्तमान लङ्काद्वीप में) इन पर्वतों पर इन चारों की चतुःशालाएँ (साधनास्थल) थीं ॥ १४ ॥

चार उद्यान–चार बुद्धों के ये चार पृथक्-पृथक् उद्यान थे– १. महातीर्थ (भगवान् ककुसन्ध का); २. महानाम उद्यान (भगवान् कोणागमन का); ३. सागर उद्यान (भगवान् काश्यप का) एवं ४. महामेघवन (भगवान् बुद्ध का) । ये चार उद्यान चारों बुद्धों के दैनिक ईर्यापथ के साधन थे ॥ १५ ॥

चार बोधि-शाखा–अब यह बताया जा रहा है कि चारों बुद्धों का बोधिप्राप्ति के लिये प्रथम आसन किस वृक्ष के नीचे लगा था?

१. ककुसन्ध भगवान् ने उत्तम शिरीष वृक्ष के नीचे अपना बोधिआसन लगाया था ॥ १६ ॥

इस की दक्षिण शाखा ऋद्धिसम्पन्न रुचिनन्दा भिक्षुणी ने ओजद्वीप के महातीर्थआराम में लाकर प्रतिष्ठित की थी ॥ १७ ॥

२. कोणागमन भगवान् ने उदुम्बर वृक्ष के नीचे बोधिआसन लगाया था । इसकी दक्षिण शाखा लाकर ऋद्धिसम्पन्न कन्दनन्दा भिक्षुणी ने ॥ १८ ॥

वरद्वीप के महानाम-आराम में आरोपित की थी ।

३. काश्यप भगवान् ने न्यग्रोध वृक्ष के नीचे अपना बोधि आसन लगाया था ॥ १९ ॥

इस की दक्षिण शाखा ऋद्धिसम्पन्न सुधर्मा भिक्षुणी ने सागर नामक आराम में द्रुमचैत्य में आरोपित की थी ॥ २० ॥

गोतमस्स मुनिन्दस्स[1] अस्सत्थबोधिमुत्तमं ।
आदाय दक्खिणं साखं सङ्घमित्ता महिद्धिका ।
महामेघवने रम्मे रोपिता दीपलञ्जके ॥ २१ ॥

[S 85] रुचिनन्दा, कन्दनन्दा[2], सुधम्मा च महिद्धिका ।
बहुस्सुता सङ्घमित्ता छळभिञ्ञा विचक्खणा ॥ २२ ॥

चतस्सो ता भिक्खुनियो सब्बा च बोधिमाहरुं ।
सिरीसो[3] च महातित्थे महानामे उदुम्बरो ॥ २३ ॥

महासागरम्हि निग्रोधो अस्सत्थो मेघवने तदा ।
अचलो चतुरारामे चतुबोधि पतिट्ठिता ॥ २४ ॥

तत्थ[4] सेनासनं रम्मं चतुबुद्धान सासने ।
महादेवो छळभिञ्ञो सुमनो पटिसम्भिदो ॥ २५ ॥

महिद्धिको सब्बनन्दो महिन्दो च बहुस्सुतो ।
एते थेरा महापञ्ञा तम्बपण्णिपसादका ॥ २६ ॥

ककुसन्धो सब्बलोकग्गो पञ्चचक्खूहि चक्खुमा ।
सब्बलोकं अवेक्खन्तो ओजदीपवरद्दस ॥ २७ ॥

पुण्णकनरको नाम अहू पज्जरको तदा ।
दीपे[5] तस्मिं[5] मनुस्सानं रोगो पज्जरको अहू ॥ २८ ॥

बहूजना[6] रोगफुट्ठा भन्तमच्छा थले यथा[6] ।
ठिता सोचन्ति ते[7] सब्बे[7] दुम्मना [8]दुक्खिता नरा[8] ॥ २९ ॥

---

1. भगवतो-रो. ।
2. कनकदत्ता-रो. ।
3. सिरीसबोधि-रो. ।
4. अचले -रो. ।
5-5 तस्मिं समये-रो. ।
6-6 रोगेन फुट्ठा बहुजना भन्तमच्छा व थलम्हि-रो. ।
7-7 रो. नत्थि ।
8-8 रो. नत्थि ।

४. गौतम बुद्ध ने अश्वत्थ (पीपल) वृक्ष के नीचे अपना बोधि आसन लगाया था । इसकी दक्षिणशाखा ऋद्धिसम्पन्न सङ्घमित्रा भिक्षुणी ने लाकर यहाँ रम्य महामेघवन आराम में लाकर लगायी थी ॥ २१ ॥

चार भिक्षुणियाँ– ये (उपर्युक्त) चार भिक्षुणियाँ चार बोधिवृक्षों को यथासमय इस द्वीप में लाने वाली थी ॥ २२ ॥

चार बोधिस्थान– १. महातीर्थ में शिरीष, २. महानाम में उदुम्बर, ३. महासागर में न्यग्रोध, ४. मेघवन में अश्वत्थ अचल । चार आरामों में ये चार बोधिवृक्ष लगाये गये ॥ २३-२४ ॥

चार शयनासन– इन्हीं उपर्युक्त चार आरामों में चार बुद्धों के यथासमय शयनासन लगे थे ।

चार प्रधान शिष्य– (श्रावक)–१.भगवान् ककुसन्ध का षडभिज्ञ महादेव; २. भगवान् कोणागमन का प्रतिसंविदाप्राप्त सुमन; ३. भगवान् काश्यप का महान् ॥ २५ ॥

ऋद्धिसम्पन्न सर्वनन्द एवं ४. भगवान् बुद्ध का बहुश्रुत महेन्द्र । ये सभी स्थविर महाप्राज्ञ थे, एवं ताम्रपर्णी द्वीप को अपने उपदेशों से धर्म के प्रति श्रद्धालु बनाने वाले थे ॥ २६ ॥

चार बुद्ध–१. **भगवान् ककुसन्ध**–सब लोकों में श्रेष्ठ, पाँच नेत्रों से देखने वाले, ज्ञानी, सभी लोकों पर मैत्री भावना रखनेवाले भगवान् ककुसन्ध ने इस द्वीप को सर्वप्रथम देखा था ॥ २७ ॥

उनके समय में पुण्णकनरक नाम का ज्वर महामारी के रूप में इस द्वीप में फैला था ॥ २८ ॥

इस रोग से बहुत से नागरिक आक्रान्त हो गये थे । वे ऐसे दुःखी हो रहे थे जैसे भूमि पर आकर (जल के विना) मछली तड़पा करती है । वे सभी दुःखित-चित्त हो कर इस रोग से छुटकारा पाने के लिये चिन्तामग्न रहते थे ॥ २९ ॥

भयट्ठिता न लभन्ति चित्तम्हि[1] सुखमत्तनो[1] ।
दिस्वान दुक्खिते सत्ते रोगाबाधेन[2] पीळिते[2] ॥ ३० ॥

चत्तालीससहस्सानि[3] ककुसन्धो विनायको[4] ।
[R.91] रोगानं मोचनत्थाय[5] जम्बुदीपा इधागतो ॥ ३१ ॥

चत्तालीस सहस्सा[6] ते[6] छळभिञ्ञा महिद्धिका ।
परिवारयिंसु सम्बुद्धं नभे चन्दं व तारका ॥ ३२ ॥

ककुसन्धो लोकनाथो[7] देवकूटम्हि पब्बते ।
ओभासेत्वान देवं[8] च[8] पतिट्ठापेसि[9] ससावको ॥ ३३ ॥

ओजदीपे देवकूटं[10] ओभासेत्वा पतिट्ठितं ।
सब्बे[11] मञ्ञन्ति देवो च[11] न जानन्ति तथागतं ॥ ३४ ॥

उदेन्तं अरुणुग्गम्हि पुण्णमायं[12] उपोसथे ।
उज्जालेसि[13] च तं सेलं लोकनाथो[13] सकाननं ॥ ३५ ॥

[S.86] दिस्वा[14] सेलं जलमानं ओभासेन्तं चतुद्दिसं ।
तुट्ठहट्ठा जना सब्बे सराजा अभये पुरे ॥ ३६ ॥

"ससावकं[15] मं पस्सन्तु ओजदीपट्ठिता इमे[15]" ।
इति बुद्धो अधिट्ठासि ककुसन्धो विनायको[16] ॥ ३७ ॥

1-1 चित्तसुखसातं अत्तनो-रो. ।
2-2 रोगबन्धेन दूसिते-रो. ।
3-3 चत्तालीससहस्सेहि-रो. ।
4. लोकनायको-रो. ।
5. भिन्दनत्थाय-रो. ।
6-6 सहस्सेहि-रो. ।
7. लोकपज्जोतो-रो. ।
8. देवो व-रो. ।
9. पतिट्ठासि-रो. ।
10. देवकूटम्हि-रो. ।
11-11 देवो व मञ्ञन्ति सब्बे-रो. ।
12. पुण्णमासे-रो. ।
13-3. उज्जालेत्वान तं सेलं जलमानं-रो. ।
14. दिस्वान-रो. ।
15-15 पस्सन्तु मं जना सब्बे ओजदीपगता नरा-रो. ।
16. लोकनायको-रो. ।

वे भयभीत हो रहे थे । उन्हें कहीं से भी कोई आश्वासन नहीं मिल पा रहा था । यों, उन प्राणियों को रोग के कारण दु:खितचित्त देखकर ॥ ३० ॥

चालीस हजार भिक्षुओं के साथ, जो कि सभी षडभिज्ञ एवं ऋद्धिसम्पन्न थे, भगवान् ककुसन्ध उन्हें उस रोग से मुक्ति दिलाने के लिये, जम्बुद्वीप से यहाँ पधारे थे ॥ ३१ ॥

उन षडभिज्ञ ऋद्धिसम्पन्न चालीस हजार (४०,०००) भिक्षुओं से परिवृत भगवान् ककुसन्ध ऐसे शोभित हो रहे थे जैसे आकाश में तारासमूह से घिरा हुआ चन्द्रमा ॥ ३२ ॥

ये लोकनाथ ककुसन्ध शिष्यों सहित देवकूट पर्वत पर उतर कर देवता की तरह शोभित हो रहे थे ॥ ३३ ॥

उस देवकूट पर उतर कर प्रकाशित हुए उन्हें देखकर सभी नागरिक प्रथम दृष्टि में उनको कोई देवता ही समझ रहे थे; उन्हें कोई बुद्ध नहीं मान रहा था । ॥ ३४ ॥

उस समय उस लोकनाथ (ककुसन्ध) ने काननसहित उस पर्वत को उसी तरह देदीप्यमान किया, जैसे उपोसथ की पूर्णिमा की रात्रि में पूर्व दिशा में उदित चन्द्रमा आकाश को प्रकाशित करता है ॥ ३५ ॥

उस पर्वत को सब तरफ से प्रकाशित देखकर राजा सहित अभयपुर के सभी नागरिक प्रसन्न हुए ॥ ३६ ॥

उसी समय भगवान् ने सङ्कल्प किया-"ओज-द्वीप के सभी नागरिक मेरे दर्शनहेतु यहाँ देवकूट पर्वत पर आवें" ॥ ३७ ॥

सम्मतो[1] देवकूटो ति मनुस्से अभिपत्थितो ।
उपद्दवे पज्जरके मनुस्सबलवाहना ॥ ३८ ॥

निक्खमित्वा जना सब्बे सराजा अभया[2] पुरा ।
तत्थ गन्त्वा नमस्सन्ति ककुसन्धं नरुत्तमं ॥ ३९ ॥

नमस्सित्वान[3] सम्बुद्धं राजसेना सरट्ठका ।
'देवो' ति तं मञ्ञमाना आगता ते महाजना ॥ ४० ॥

उपसङ्कम्म[4] सम्बुद्धं इदं वचनमब्रवुं[4] ।
"अधिवासेतु मे भगवा सद्धिं भिक्खुगणेन[5] तु[5] ॥ ४१ ॥

अज्जतनाय खो[6] भत्तं[6] "गच्छाम नगरं मयं[7]" ।
अधिवासेसि सम्बुद्धो तुण्ही राजस्स भासितं ॥ ४२ ॥

सरट्ठका[8] राजसेना विदित्वा अधिवासनं[8] ।
पूजासक्कारपहुते[9] कातुं[10] पुरमुपागमुं ॥ ४३ ॥

"महा अयं भिक्खुसङ्घो जनकायो अनप्पको ।
नगरं[11] अतिसम्बाधं[12] अकता[13] भू पुरा मया[13] ॥ ४४ ॥

अत्थि मय्हं मनुस्सानं[14] महातित्थं मनोरमं ।
असम्बाधं अदूरट्ठं पब्बजितानुलोमिकं ॥ ४५ ॥

---

1. इसिसम्मतो-रो. ।
2. नगरा-रो. ।
3. अभिवादेत्वान-रो. ।
4-4 अनुप्पत्ता जना सब्बे बुद्धसेट्ठं नरासभं-रो. ।
5-5 गणे सह-रो. ।
6-6 भत्तेन-रो. ।
7. पुरं-रो. ।
8-8 अधिवासनं विदित्वा राजसेना सरट्ठका-रो. ।
9. ०बहुते-रो ।
10. तदा-रो. ।
11. नगरके-रो. ।
12. सम्बाधे-रो. ।
13-13 अकतभूमि पुरे मम-रो. ।
14. बहुय्यानं-रो. ।

"अब तो देवकूट ही हमारा शरणस्थल है"–यह सोच कर प्रज्चरक रोगसे पीड़ित अत एव भयार्त राजा तथा सैनिकों सहित वे नागरिक ॥ ३८ ॥

अभयपुर नगर से निकलकर वहाँ (पर्वत पर) जाकर भगवान् ककुसन्ध को प्रणाम करने लगे । राजा सहित सभी सैनिक एवं नागरिक ॥ ३९ ॥

वहां विराजमान भगवान् को प्रथम दर्शन में कोई देवता समझ बैठे ॥ ४० ॥

फिर, (राजा) उन बुद्ध के पास जा कर यों बोले–"भन्ते! आज भिक्षुगणसहित आप मेरे यहाँ भोजन करें" ॥ ४१ ॥

"आज का भोजन हम नगर में चलकर करेंगे"–यह मानकर भगवान् ने राजा की बात मौन भाव से स्वीकार कर ली ॥ ४२ ॥

तब सेना एवं नागरिकों सहित राजा ने भोजनहेतु भगवान् की मौन स्वीकृति समझ कर नगर में उनका स्वागत सत्कार करने के लिये पुनः नगर की तरफ ही प्रस्थान किया ॥ ४३ ॥

राजा ने सोचा–"यह भिक्षुसङ्घ सङ्ख्या में बहुत अधिक है, इधर हमारे नागरिक भी बहुत हैं । इन लोगों के बैठने के लिये मैने कोई उचित स्थान नहीं खोजा; क्योंकि नगर तो अपने आप में बहुत सङ्कीर्ण है । मैने एतदर्थ कोई अन्य स्थान अभी तक व्यवस्थित नहीं किया ! ॥ ४४ ॥

"हाँ, मेरे पास सुन्दर महातीर्थ आराम अवश्य है जो निर्बाध भी है, मनोरम भी है । वह अधिक दूर भी नहीं है तथा प्रव्रजितों के वासहेतु अनुकूल भी है ॥ ४५ ॥

पटिसल्लानसारुप्पं पटिरूपं महेसिनो[1] ।
तत्थाहं बुद्धपमुखे[2] सङ्घे[2] दस्सामि दक्खिणं ॥ ४६ ॥

[R.92] सब्बो जनो सुपस्सेय्य[3] बुद्धं सङ्घं च उत्तमं[4] ।
चत्तालीस सहस्सेहि भिक्खुसङ्घ[5]पुरक्खतो" ॥ ४७ ॥

ककुसन्धो लोकविदू महातित्थमवापुणि[6] ।
पतिट्ठिते महातित्थे उय्याने दिपदुत्तमे ॥ ४८ ॥

सञ्छन्नाकालपुप्फेहि[7] मन्देन चलिता दुमा[7] ।
सुवण्णमयभिङ्कारं समादाय महीपति ॥ ४९ ॥

[S 87] ओनोजेत्वान तं [8]तत्थ जलं हत्थे अकारयि ।
"इमाहं भन्ते उय्यानं ददामि बुद्धपमुखे" ॥ ५० ॥

फासुविहारं[9] [9]सङ्घस्स रम्मं सेनासनं सुभं[10] ।
पटिग्गहेसि उय्यानं ककुसन्धो विनायको[11] ॥ ५१ ॥

पकम्पि धरणी तत्थ पठमे[12] सेनासने[12] तदा ।
दिस्वा[13] पठवी[13]कम्पेतं ठितो लोकग्गनायको ॥ ५२ ॥

"अहो नून रुचिनन्दा बोधिं हरेय्य[14]" चिन्तयि[14] ।
ककुसन्धस्स बुद्धस्स[15] चित्तमञ्ञाय भिक्खुनी ॥ ५३ ॥

---

1. तथागतं-रो. ।
2.-2 ०प्रमुखं सङ्घ-रो. ।
3. पस्सेय्य तं-रो. ।
4. दस्सनं-रो. ।
5. -हि सं-सी० ।
6. महातित्थम्हि पापुणि-रो. ।
7.-7 अकालपुप्फेहि सञ्छन्ना यं किञ्चि च लता दुमा-रो. ।
8. लङ्कत्थं-रो. ।
9.-9 सङ्घस्स फासुविहारं-रो. ।
10. अहू -रो. ।
11. लोकनायको-रो. ।
12.-12 पठमं सेनासनं-रो. ।
13.-13 पठविया चलं-रो. ।
14.-14 हरित्वा इधागता-रो. ।
15. भगवतो-रो. ।

"उनकी ध्यानभावना के लिये भी उचित है । महर्षि को भी सम्भवतः अनुकूल लगे । मैं इस भिक्षुसङ्घ को भगवान् के साथ वहीं ठहराऊँगा और उसे उचित दान-दक्षिण दूँगा ॥ ४६ ॥

"अतः सभी नागरिक वहीं (महातीर्थ उद्यमें) एकत्र हो कर भगवान् बुद्ध एवं भिक्षुसङ्घ का दर्शन करें । जो कि सङ्ख्या में चालीस हजार (४०,०००) हैं" ॥ ४७ ॥

भगवान् ककुसन्ध यथासमय उस महातीर्थ उद्यान में पहुँचे । उस महाउद्यान में भगवान् के विराजने पर ॥ ४८ ॥

राजा ने, मन्द वायु से काँपे हुए वृक्षों से गिरे उन असमय के पुष्पों को तथा सुवर्णमय भिङ्कार (जलपात्र) लेकर ॥ ४९ ॥

हाथ में उस पात्र से जल लेकर राजा ने भगवान् से निवेदन किया– "भन्ते! यह उद्यान बुद्धप्रमुख भिक्षुसङ्घं को दान करता हूँ" ॥ ५० ॥

इस सर्वसाधनयुक्त, सोने-बैठने में अनुकूल, मनोरम उद्यान को सङ्घ के लिये उचित स्थान मान कर भगवान् ककुसन्ध ने उस उद्यान को स्वीकार कर लिया ॥ ५१ ॥

इस अवसर पर (प्रथम शयनासन के दिये जाने पर) पृथ्वी में कम्पन होने लगा । इस भूकम्पन का कारण जानने के लिये भगवान् कुछ क्षण एकाग्रचित्त हुए ॥ ५२ ॥

तब उन्होंने जाना–"अवश्य ही रुचिनन्दा भिक्षुणी यहाँ बोधिवृक्ष की शाखा लायगी ।" भगवान् के इस सङ्कल्प को जानकर वह ऋद्धिमती रुचिनन्दा भिक्षुणी ॥ ५३ ॥

गन्त्वा सिरीससम्बोधिमूले ठत्वा महिद्धिका ।
बुद्धो[1] इच्छति बोधिस्स[2] ओजदीपम्हि रोपनं[3] ॥ ५४ ॥

मनसा चिन्तयन्ता [4]तं बोधिं[4] हरितुमागता ।
"बुद्धसेट्ठेना[5]नुमतं अनुकम्पाय पाणिनं[6] ॥ ५५ ॥

मम इद्धानुभावेन साखा[7] दक्खिण मुच्चतु[7]" ।
रुचिनन्दा[8] ठिता[9] वाक्यं वुच्चमाना[10] कतञ्जली ॥ ५६ ॥

मुच्चित्वा दक्खिणा साखा पतिट्ठासि कटाहके ।
गहेत्वान रुचिनन्दा[11] बोधिं हेमकटाहके[12] ॥ ५७ ॥

पञ्चसतभिक्खुनीहि आगता[13] परिवारिता[13] ।
तदापि पठवी कम्पि ससमुद्दं सपब्बतं ॥ ५८ ॥

आलोको व महा आसि अब्भुतो लोमहंसनो ।
दिस्वा अत्तमना सब्बे राजसेना सरट्ठका ॥ ५९ ॥

अञ्जलिं पग्गहेत्वान नमिंसु[14] बोधिमुत्तमं ।
आमोदिता तदा[15] सब्बे देवता हट्ठमानसा ॥ ६० ॥

---

1. च-रो. ।
2. बोधि-रो. ।
3. रोहणं-रो. ।
4.-4 चिन्तयं तत्थ बोधि आहरितुं रामा-रो. ।
5. अनुमतं बुद्धसेट्ठेन-रो. ।
6. पाणिनो-रो. ।
7.-7 दक्खिणसाखा पमुच्चतु-रो. ।
8. रुचानन्दा-रो. ।
9. इमं-रो. ।
10. याचमाना-रो. ।
11. रुचानन्दा-रो. ।
12. सुवण्णकटाहके-रो. ।
13.-13 परिवारेसि महिद्धिका-रो. ।
14. नमस्सन्ति-रो. ।
15. मरू-रो. ।

शिरीष सम्बोधि वृक्ष के नीचे जाकर खड़ी हुई । और मन से चिन्तन करते हुए यह कहा-"भगवान् चाहते हैं कि मैं इसकी शाखा ओजद्वीप में ले जाकर प्रतिष्ठित करूँ" ॥ ५४ ॥

यह चिन्तन कर वह इस बोधि को ले जाने के लिये वहाँ उपस्थित हो गयी । तब वह रुचिनन्दा भिक्षुणी हाथ जोड़कर यों बोली-"प्राणियों पर अनुकम्पा करने हेतु भगवान् बुद्ध द्वारा अनुमोदित, मेरे ऋद्धिबल के प्रभाव से, इस बोधिवृक्ष की दक्षिण शाखा वृक्ष से पृथक् हो जाय" ॥ ५५-५६ ॥

भिक्षुणी के ऐसा कहते ही, बोधिवृक्ष की दक्षिणशाखा सुवर्णकटाह में आकर प्रतिष्ठित हो गयी । वह रुचिनन्दा भिक्षुणी उस सुवर्णकटाह में स्थित शाखा को लेकर ॥ ५७ ॥

पाँच सौ (५००) भिक्षुणियों के साथ यहाँ आयी । इस विशिष्ट अवसर पर भी, समुद्र एवं पर्वत सहित यह पृथ्वी काँप उठी ॥ ५८ ॥

उसी समय अत्यधिक लोमहर्षक दिव्य प्रकाश भी हुआ । उसे देख कर सभी नागरिक एवं सैनिक प्रसन्न हुए ॥ ५९ ॥

और सभी उपस्थित नागरिकों ने उन उत्तम बुद्ध को हाथ जोड़कर प्रणाम किया । यह अवसर देवताओं के लिये भी प्रमोदमय बन गया ॥ ६० ॥

उक्कुट्ठितं[1] पवत्तेसुं दिस्वा बोधितरुत्तमं[2] ।
[R.93] चत्तारो च महाराजा लोकपाला यसस्सिनो ॥ ६१ ॥

रक्खं[3] सिरीसबोधिस्स अकंसु देवता तदा ।
तावतिंसा च ये देवा ये देवा वसवत्तिनो ॥ ६२ ॥

यामो[4] सक्को सुयामो च सन्तुसितो सुनिम्मितो ।
सब्बे ते परिवारेसुं सिरीसबोधिमुत्तमं ॥ ६३ ॥

[S. 88] अञ्जलिं पग्गहेत्वान देवसङ्घा पमोदिता ।
सहेव[5] रुचिनन्दाय[5] पूजेन्ति बोधिमुत्तमं ॥ ६४ ॥

सिरीसबोधिमादाय रुचिनन्दा[6] महिद्धिका ।
भिक्खुनीहि[7] परिब्बूळ्हा ओजदीपवरं गमि ॥ ६५ ॥

देवा नच्चन्ति गायन्ति[8] पोठेन्ति दिगुणं भुजं ।
ओजदीपवरं यन्तं सिरीसबोधिमुत्तमं ॥ ६६ ॥

देवसङ्घपरिब्बूळ्हा रुचिनन्दा[9] महिद्धिका ।
सिरीसबोधिमादाय[10] ककुसन्धमुपागमि ॥ ६७ ॥

तम्हि काले महावीरो ककुसन्धो विनायको[11] ।
महातित्थवनुय्याने[12] बोधिट्ठाने पतिट्ठितो ॥ ६८ ॥

---

1. उक्कुट्ठिसद्दं-रो. ।
2. वरुत्तमं-रो. ।
3. आरक्खं-रो. ।
4. यमो-रो. ।
5.-5 रुचानन्दाय सहेव- रो. ।
6. रुचानन्दा-रो. ।
7. भिक्खुनीसङ्घ-रो. ।
8. हस्सन्ति- रो. ।
9. रुचानन्दा- रो. ।
10. आदाय सिरीसबोधिं- रो. ।
11. लोकनायको- रो. ।
12. महातित्थम्हि उय्याने- रो. ।

उस उत्तम बोधि को देखकर चारों यशस्वी लोकपाल भी प्रमुदित चित्त हो कर हर्ष प्रकट करने लगे ॥ ६१ ॥

सभी देवताओं ने उस शिरीष बोधि की रक्षा का निश्चय किया । एतदर्थ, सभी त्रायस्त्रिंश देव, वशवर्ती देव, याम, शक्र, सुयाम, सन्तुषित, सुनिर्मित आदि देवता उसके चारों ओर खड़े हो गये ॥ ६२-६३ ॥

वह प्रमुदित देवसङ्घ हाथ जोड़कर, रुचिनन्दा भिक्षुणी के साथ उस उत्तम बोधिवृक्ष की पूजा करने लगा ॥ ६४ ॥

भिक्षुणियों से परिवृत वह ऋद्धिमती रुचिनन्दा भिक्षुणी उस शिरीष बोधि शाखा को लेकर ओजद्वीप गयी ॥ ६५ ॥

जब बोधिशाखा ओजद्वीप ले जायी जा रही थी उस अवसर पर देवतागण हर्षातिरेक से नाचने गाने लगे तथा भुजाएँ (काँख) बजाने लगे ॥ ६६ ॥

यों देवसङ्घ से परिवृत ऋद्धिमती रुचिनन्दा भिक्षुणी उस शिरीष बोधि को लेकर भगवान् ककुसन्ध के पास पहुँची ॥ ६७ ॥

उस समय महाबलशाली शास्ता ककुसन्ध महातीर्थवन उद्यान में उसी स्थान पर विराजमान थे, जहाँ बोधि- शाखा को प्रतिष्ठित करना था ॥ ६८ ॥

रुचिनन्दा[1] सयं बोधिं ओभासेन्तं न रोपयि ।
दिस्वा मुनी[2] ककुसन्धो पत्थरि[3] दक्खिणं भुजं ॥ ६९ ॥

बोधिया दक्खिणं साखं रुचिनन्दा[4] महिद्धिका ।
बुद्धस्स दक्खिणे हत्थे ठपयित्वा भिवादयि ॥ ७० ॥

परामसित्वा लोकग्गो ककुसन्धो नरासभो ।
रञ्ञो[5] भयस्स पादासि "इध[1] ठानम्हि रोपय"॥ ७१ ॥

यम्हि ठानम्हि आचिक्खि ककुसन्धो नरासभो[6] ।
तम्हि ठानम्हि रोपेसि अभयो रट्ठवड्ढनो ॥ ७२ ॥

ठिते[7] सिरीसबोधिम्हि भूमिभागे मनोरमे ।
बुद्धो धम्ममदेसेसि[8] चतुसच्चप्पकासतो[9] ॥ ७३ ॥

सतसहस्सं[10] चोसाने[10] चत्तालीस सहस्सकं[11] ।
मनुस्सानं[12] हि समयो[12] देवानं तिंस कोटियो ॥ ७४ ॥

सिरीसो[13] ककुसन्धस्स कोनागमनस्सुदुम्बरो ।
कस्सपस्सापि निग्रोधो तयो बोधि इधाहरुं[14] ॥ ७५ ॥

सक्यपुत्तस्सासमस्स बोधिं अस्सत्थमुत्तमं ।
आहरित्वान रोपिंसु महामेघवने तदा ॥ ७६ ॥

---

1. रुचानन्दा- रो. ।
2. सयं-रो. ।
3. पग्गहि- रो. ।
4. रुचानन्दा- रो. ।
5. आदासि रञ्ञो भयस्स इमं -रो. ।
6. लोकनायको- रो. ।
7. पतिट्ठिते- रो. ।
8. अदेसयि- रो. ।
9. चतुसच्चं सण्हकारणं- रो. ।

10.-10 परियोसाने सतसहस्सं- रो.

11. सहस्सियो- रो. ।

12.-12 अभिसमयो मनुस्सानं- रो. ।

13. सिरीसबोधि- रो. ।
14. विहारणा-रो. ।

रुचिनन्दा ने उस दिव्य प्रकाश युक्त बोधिशाखा को स्वयं भूमि पर प्रतिष्ठित नहीं किया। यह देख कर महामुनि ककुसन्ध ने अपना दाहिना हाथ फैलाया ॥ ६९ ॥

तब रुचिनन्दा भिक्षुणी ने उस बोधि की दक्षिणशाखा को बुद्ध के दाहिने हाथ पर रखकर प्रणाम किया ॥ ७० ॥

कुछ सोचकर लोकज्येष्ठ भगवान् ककुसन्ध ने भी वहाँ उपस्थित राजा के हाथ में वह बोधिशाखा दे दी, और सङ्केत करते हुए कहा-"इस शाखा को इस स्थान पर प्रतिष्ठित कर दो" ॥ ७१ ॥

पुरुषश्रेष्ठ भगवान् ककुसन्ध ने जिस स्थान का सङ्केत किया था, राजा अभय ने उसी स्थान पर उस शाखा को प्रतिष्ठित (अभिरोपित) कर दिया ॥ ७२ ॥

इस अवसर पर, जब उस बोधिशाखा को भूमि में अभिरोपित किया गया था, भगवान् ने धर्मप्रेमी जनता को आर्यसत्यचतुष्टय समझने के लिये धर्मोपदेश किया ॥ ७३ ॥

उस धर्मोपदेश के प्रभाव से वहाँ उपस्थित एक लाख चालीस हजार (१,४०, ०००) धर्मप्राण जनता को तथा तीस करोड़ (३०,००,००,०००) देवताओं को धर्मलाभ हुआ ॥ ७४ ॥

अन्य तीन बुद्ध– यों, भगवान् ककुसन्ध का शिरीष बोधिवृक्ष, भगवान् कोणागमन का उदुम्बर बोधिवृक्ष, एवं भगवान् काश्यप का न्यग्रोध बोधिवृक्ष –ये तीनों ही बोधिवृक्ष भी यहाँ (इस द्वीप में) लाये गये ॥ ७५ ॥

और अद्वितीय भगवान् शाक्यपुत्र का भी उत्तम अश्वत्थ बोधिवृक्ष यहाँ लाकर मेघवनोद्यान में रोपा गया ॥ ७६ ॥

मुटसीवस्स अत्रजा अथञ्ञे दस भातरो ।
अभयो तिस्सो नागो च उत्ति मत्ताभयो पि च ॥ ७७ ॥

मित्तो सीवो असेलो च तिस्सो खीरो च होन्ति[1] मे[1] ।
[R.94] सीवली[2] अनुला चेति[2] मुटसीवस्स धीतरो ॥ ७८ ॥

[S.89] तदावासुं[3] दुवे चेव लङ्कादीपम्हि उत्तमे[3] ।
यदा अभिसित्तो राजा मुटसीवस्स अत्रजो ॥ ७९ ॥

एत्थन्तरे यं गणितं वस्सा[4] भवति कित्तकं ।
द्वे सतानि च वस्सानि छत्तिंसा[5] च पुनापरा ॥ ८० ॥

देवानम्पियतिस्सो[6] च भिसित्तो निब्बुते जिने[6] ।
तस्साभिसेकेन[7] समं आगता राजइद्धियो[7] ॥ ८१ ॥

फरिंसु[8] पुञ्ञतेजानि तम्बपण्णिम्हि नेकधा[9] ।
रतनाकरं तदा आसि लङ्कादीपमथुत्तमं[10] ॥ ८२ ॥

तिस्सस्स पुञ्ञतेजेन उग्गता रतना बहू ।
दिस्वान रतनं राजा हट्ठो दग्गमानसो[11] ॥ ८३ ॥

पण्णाकारं करित्वान धम्मासोकस्स[12] पाहिणि ।
दिस्वान तं पण्णाकारं असोकोत्तमनो अहु ॥ ८४ ॥

1.-1 भातरो- रो ।
2-2. अनुदेवी अनुला च- रो. ।
3-3. तदा च बिलयो अगा लङ्कदीपवरुत्तमं- रो. ।
4. वस्सं- रो. ।
5. छतिंस- रो. ।
6–6. सम्बुद्धे परिनिब्बुते अभिसित्तो देवानम्पियो- रो. ।
7–7 आगंता राजिद्धियो अभिसित्ते देवानम्पिये- रो. ।
8. फरति- रो. ।
9. इस्सरो- रो. ।
10. वरुत्तमं-रो. ।
11. संविग्गमानसो- रो. ।
12. असोकधम्मस्स- रो. ।

मुटशिव के पुत्र–दश भाई थे। उनके नाम क्रमशः ये हैं– १. अभय, २. तिष्य (प्रथम), ३. नाग, ४. उत्तिय, ५. मत्ताभय, ६. मित्र, ७. शिव, ८. अशैल, ९. तिष्य (द्वितीय), एवं १०. क्षीर। और मुटशिव की दो पुत्रियाँ थी– १. सीवली एवं २. अनुला ॥ ७७-७८ ॥

राजा का कालनिर्धारण– परन्तु इन दश पुत्रों में से केवल दो को ही इस उत्तम लङ्काद्वीप पर राज्य करने का अवसर मिला। जब राजा मुटशिव का पुत्र (देवानाम्प्रिय तिष्य) राज्याभिषिक्त हुआ ॥ ७९ ॥

तो यह राज्याभिषेक भगवान् बुद्ध के महापरिनिर्वाण के बाद कितने वर्ष बाद हुआ ?–यदि इस का गणित (कालनिर्धारण) किया जाय तो वह यह होगा–॥ ८० ॥

देवानाम्प्रिय तिष्य, बुद्ध के महापरिनिर्वाण के दो सौ छत्तीस (२३६) वर्ष बाद, राज्याभिषिक्त हुए थे। वे इतने प्रतापी राजा हुए कि उनके राज्याभिषिक्त होते ही सभी ऋद्धियाँ उसके सम्मुख उपस्थित हो गयीं ॥ ८१ ॥

राजा को ऋद्धिप्राप्ति– राजा का पुण्य प्रताप ताम्रपर्णी में सर्वत्र फैल गया। और वह श्रेष्ठ लङ्काद्वीप रत्नों का निधि कोष (खजाना) बन गया ॥ ८२ ॥

उस राजा तिष्य के पुण्य-प्रभाव से उसके पास नाना प्रकार के रत्न एकत्र हो गये। उस रत्नराशि को देख कर राजा अत्यधिक प्रसन्नचित्त हो गया ॥ ८३ ॥

उपहार-प्रेषण– तथा उस रत्नराशि को उपहार के रूप में राजा अशोक के पास (जम्बुद्वीप में) भिजवा दिया। उस उपहार में आये रत्नसमूह को देखकर राजा अशोक भी बहुत प्रमुदित हो उठे ॥ ८४ ॥

अभिसेकाय[1] पाहेसि अनेकं रतनं पुन ।
देवानम्पियतिस्सस्स तम्बपण्णिम्हि उत्तमे[1] ॥ ८५ ॥

वालवीजनिमुण्हीसं छत्तं खग्गं च पादुकं ।
वेठनं सारपाभङ्गं भिङ्कारं नन्दिवट्टकं ॥ ८६ ॥

सिविकं सङ्खवतंसं अधोविमं वत्थकोटिकं ।
सोवण्णपातिकटच्छुं महग्घं हत्थपुञ्छनं ॥ ८७ ॥

अनोतत्तोदकं काजं उत्तमं हरिचन्दनं ।
मत्तिकारुणवण्णं च[2] अञ्जनं पन्नगाहटं[3] ॥ ८८ ॥

हरीतकं आमलकं महग्घं अमतोसधं ।
सट्ठिवाहसतं सालिं सुगन्धं च सुकाहटं[4] ॥ ८९ ॥

पुञ्ञकम्माभिनिब्बतं[5] पण्णाकारं[6] मनोरमं[6] ।
लङ्काभिसेके[7] तिस्सस्स धम्मासोकेन पेसितं[7] ॥ ९० ॥

पुनाभिसित्तो[8] सो राजा[8] तम्बपण्णिम्हि इस्सरो ।
दुतियाभिसेके[9] तस्स तिक्कन्ता[9] तिंस रत्तियो ॥ ९१ ॥

[S.90] महिन्दो गणपामोक्खो जम्बुदीपा इधागतो ।
कारापेसि विहारं सो तिस्साराममनुत्तरं[10] ॥ ९२ ॥

पतिट्ठेसि[11] महाबोधिं महामेघवने तदा ।
पतिट्ठपेसि सो थूपं महन्तं रामणेय्यकं ॥ ९३ ॥

1-1. अभिसेकं नानारतनं पुन पाहेसि देवानम्पियस्स -रो. ।
2-2. अरुणवण्णमत्तिकं- रो. ।
3. नागमाहटं- रो. ।
4. सुकमाहटं- रो. ।
5. ०क-त्तं- रो. ।
6-6. पाहेसि असोकसव्हयो- रो. ।
7-7 लङ्काभिसेकतिस्सो च असोकधम्मस्स पेसितो-रो. ।
8-8. अभिसित्तो दुतियाभिसेकेन - रो. ।
9-9. दुतियाभिसित्तं तिस्सं अतिक्कमि- रो. ।
10 ०वरुत्तमं-रो. ।
11. पतिट्ठपेसि- रो. ।

फिर धर्मराज अशोक ने भी देवानाम्प्रिय तिष्य के अभिषेक के लिये अपनी तरफ से अनेक रत्न ताम्रपर्णी भेजे ॥ ८५ ॥

जैसे–चँवर, मुकुट, छत्र, खड्ग, चरणपादुका, वेष्टन (कमरबन्द) कर्णकुण्डल, भिङ्कार (जलपात्र), नन्द्यावर्त ॥ ८६ ॥

श्रेष्ठ शङ्ख, पालकी, विना धोया हुआ (नवीन) वस्त्रयुगल (धोती जोड़ा), सुवर्णनिर्मित कढाई,करछुल, महँगा हाथ पोंछने का वस्त्र (रूमाल) ॥ ८७ ॥

अनवप्तदह से लाया हुआ एक बहँगी जल, उत्तम (श्रेष्ठ) हरिचन्दन, लाल, मृत्तिका (अच्छी मिट्टी), नागराज द्वारा भेजा गया अञ्जन ॥ ८८ ॥

अच्छी जाति की हरीतकी (हर्रे), आमलक, एवं अमृतौषध (गिलोय), एवं साठ वाह (एक माप) शालि धान्य जो कि सुगन्धित तथा शुक पक्षियों द्वारा आहृत थे ॥ ८९ ॥

पूर्व पुण्य कर्मों से प्राप्त ऐसे सुन्दर सुन्दर उपहार राजा देवानाम्प्रिय तिष्य के राज्याभिषेक के समय धर्मराज अशोक ने भेजे ॥ ९० ॥

धर्मराज अशोक द्वारा भेजी गयी इस अभिषेक-सामग्री से वह राजा (तिष्य) पुनः ताम्रपर्णी राज्य पर अभिषिक्त हुआ ॥ ९१ ॥

राजा के सङ्कृत्य– इस द्वितीय राज्याभिषेक के तीस (३०) रात्रि (एक मास) बीतने के बाद महेन्द्र स्थविर ताम्रपर्णी द्वीप में पधारे । तथा यहाँ आकर अद्वितीय तिष्याराम विहार बनवाया ॥ ९२ ॥

तथा, साथ ही महामेघवनोद्यान में महाबोधि की दक्षिण शाखा को प्रत्यारोपित कराया । साथ ही सुन्दर एवं विशाल स्तूप का भी निर्माण कराया ॥ ९३ ॥

देवानम्पिय तिस्सको रामं[1] चेतियपब्बते ।
थूपारामं च कारेसि विहारं मिस्सकव्हयं[2] ॥ ९४ ॥

[R.95] वेस्सगिरिं च कारेसि चोलकतिस्सनामकं ।
योजने[3] योजने ठाने आरामो तेन[3] कारितो ॥ ९५ ॥

पतिट्ठपेसि सो[4] तत्थ धातुयो च यथारहं[4] ।
चत्तारीसं पि वस्सानि रज्जं कारेसि खत्तियो ॥ ति ॥ ९६ ॥

मुटसीवस्स अत्रजा अथञ्ञे चतुभातरो ।
उत्तियो दसवस्सानि[5] रज्जं कारेसि खत्तियो ॥ ९७ ॥

अट्ठवस्साभिसित्तस्स निब्बुतो दीपजोतको ।
अका[6] सरीरनिक्खेपं तिस्सारामे पुरत्थिमे ॥ ९८ ॥

परिपुण्णद्वादसवस्सो महिन्दो च इधागतो ।
सट्ठिवस्से परिपुण्णे निब्बुतो चेतिये[5] नगे[7] ॥ ९९ ॥

अलङ्करित्वा[8] मग्गं मालग्घितोरणादिहि[3] ।
पदीपे[9] जालयित्वान निब्बुते दीपजोतके[9] ॥ १०० ॥

राजा खो उत्तियो नाम कूटागारं च[10] उत्तमं[10] ।
दस्सनेय्यं अकारेसि पूजेसि दीपजोतकं ॥ १०१ ॥

उभो देवा मनुस्सा च नागा गन्धब्बदानवा ।
सब्बे व दुक्खिता हुत्वा पूजेसुं दीपजोतकं ॥ १०२ ॥

---

1. तिस्सारामं-रो. ।
2. तिस्सारामं-रो. ।
3-3 ततो योजनिको आरामो तिस्सराजेन-रो. ।
4-4. महादानं महापेलवरुत्तमं- रो. ।
5. दसवस्सम्हि- रो. ।
6.-6 अकासि -रो. ।
7. ०यपब्बते- रो. ।
8-8. समलङ्करित्वान पुण्णघटं तोरणं च मालग्घियं-रो. ।
9 -9. पदीपा च जलमाना निब्बुतो दीपजोतको- रो. ।
10-10. वरुत्तमं- रो. ।

इस राजा ने चैत्य पर्वत पर एक स्तूपाराम बनवाया । साथ ही मिश्रक पर्वत पर भी स्तूपारामविहार बनवाया ॥ ९४ ॥

वैश्य गिरि पर 'चूड़क तिष्य' नामक विहार बनवाया । और इनके अतिरिक्त सर्वत्र योजन-योजन की दूरी पर भिक्षुओं के लिये अन्य 'आराम' भी बनवाये ॥ ९५ ॥

राजा का देहावसान– इस तरह राजा ने बुद्ध-धातुओं का भी यथायोग्य स्तूप प्रतिष्ठित किया । यों, धर्मपूर्वक राज्य करते हुए इस राजा (तिष्य) ने चालीस (४०) वर्ष पर्यन्त राज्य किया ॥ ९६ ॥

राजा उत्तिय– मुटशिव राजा के पुत्र अन्य चार (४) भाई (अवशिष्ट) थे, जिनमें उत्तिय ने भी राजा बनकर दश (१०) वर्ष राज्य किया ॥ ९७ ॥

महेन्द्र स्थविर का निर्वाण– इस उत्तिय को राज्य करते हुए आठ(८) वर्ष ही बीते थे कि द्वीपज्योतिर्भूत महेन्द्र स्थविर परिनिर्वृत हो गये । इनका देहपात पुराने तिष्याराम में रहते हुए हुआ था ॥ ९८ ॥

भिक्षु होने के बारह (१२) वर्ष बीतने के बाद महेन्द्र स्थविर लङ्काद्वीप में आये थे । तथा साठ (६०) वर्ष पूर्ण होने पर चैत्य पर्वत पर इनका परिनिर्वाण हुआ ॥ ९९ ॥

महेन्द्र स्थविर के देहपात (शरीरनिक्षेप) के अनन्तर, राजा उत्तिय ने मार्ग सजा कर, माला-फूल आदि से तोरण बनाकर, दीप जलाकर, उस शरीर की और्ध्वदैहिक क्रिया की ॥ १०० ॥

राजा उत्तिय ने इसी दीपद्यातक की स्मृति में एक रम्य, दर्शनीय कूटागार (वैकुण्ठी) बनवाया और शरीर को उसमें रखकर उसकी पूजा की ॥ १०१ ॥

देवता और मनुष्य–दोनों ने, नाग, गन्धर्व और दानवों ने–सभी ने दुःखी मन से उस स्तूप की पूजा की ॥ १०२ ॥

सत्ताहं पूजं कत्वान चेतिये पब्बतुत्तमे ।
एकच्चे एवमाहंसु गच्छाम नगरं वरं[1] ॥ १०३ ॥

अथेत्थ वत्तति सद्दो पुथुलो[2] भेरवो तदा[3] ।
इधेव झापयिस्साम लङ्कादीपस्स जोतकं ॥ १०४ ॥

राजा सुत्वान वचनं जनकायस्स भासतो ।
महाचितकं[4] कारेत्वा[5] तिस्सारामपुरत्थिमे ॥ १०५ ॥

[S.91] सकूटागारमादाय[6] महिन्दं दीपजोतकं ।
पुरत्थिमेन[7] नगरं[7] पविसिंसु सराजका ॥ १०६ ॥

मज्झेन नगरं गन्त्वा निक्खमित्वान दक्खिणा ।
महाविहारे सत्ताहं महापूजमकंसु ते ॥ १०७ ॥

पत्वान[8] गन्धचितकं उभो देवा च मानुसा ।
ठपयित्वा[9] राजुय्याने पूजनत्थाय[10] सुब्बतं ॥ १०८ ॥

कूटागारं[11] गहेत्वान महिन्दं दीपजोतकं ।
थूपं[12] पदक्खिणं कत्वा वन्दापेसुमनुत्तमं[13] ॥ १०९ ॥

तदा[14] पुरत्थिमद्वारा निक्खमित्वा महाजना ।
[R.96] अकंसु देहनिक्खेपं[15] भूमिभागे मनोरमे[16] ॥ ११० ॥

---

1. पुरं- रो. ।
2. तुमुलो- रो. ।
3. महा- रो. ।
4. महाथूपं- रो. ।
5. करिस्साम-रो. ।
6. आदाय सकूटागारं- रो. ।
7-7. नगरं पुरत्थिमद्वारं-रो. ।
8. कत्वान- रो. ।
9. ठपयिंसु- रो. ।
10. छापयिस्साम- रो. ।
11. सकूटागारं- रो. ।
12. विहारं- रो. ।
13-11. थूपमुत्तमं रो. ।
14. आरामा- रो. ।
15. सरीरनिक्खेपं- रो. ।
16. समन्ततो- रो. ।

यह पूजा-क्रम सप्ताहपर्यन्त, निरन्तर चलता रहा । तब उनमें से कुछ ने कहा-"अब हमें इन्हें अपने नगर में ले चलना चाहिये" ॥ १०३ ॥

यह सुनकर बहुत से लोग क्रुद्ध हुए और बोले -"नहीं, इनका दाहकर्म यहीं होगा" ॥ १०४ ॥

तब राजा ने, विरोध करने वाली जनता का बहुमत देखकर पुराने तिस्साराम में ही चिता सजायी ॥ १०५ ॥

फिर कूटागारसहित स्थविर के शरीर को उठाकर शवयात्रा के रूप में राजा सहित जनता पहले नगर के पूर्वी द्वार में प्रविष्ट हुई ॥ १०६ ॥

फिर नगर में जाकर, दक्षिण द्वार से निकल कर, महा-विहार में कूटागार सहित उस शरीर को रखकर वहाँ उसकी महापूजा की ॥ १०७ ॥

उस राजोद्यान में गन्धद्रव्यमय चिता के पास ले जाकर देवता और मनुष्य-दोनों ने पूजा के लिये ॥ १०८ ॥

उस कूटागार (बैकुण्ठी) को उठाकर महेन्द्र स्थविर के शरीर की पूजा-प्रदक्षिणा कर पूर्वद्वार से निकालकर नागरिकों ने उस शरीर को पवित्र भूमि पर रखा ॥ १०९ -११० ॥

आरुळहा चितकं सब्बे रोदमाना कतञ्जली ।
अभिवादेत्वा[1] सिरसा चितकं जालयिंसु[2] ते ॥ १११ ॥

धातुसेसं* गहेत्वान महिन्दस्स सुधीमतो* ।
अका[3] थूपवरं सब्बे[4]स्वारामेसु च खत्तियो[4] ॥ ११२ ॥

कतं सरीरनिक्खेपं महिन्दस्स[5] तदा यहिं[5] ।
इसिभूमी' ति तस्सायं[6] समञ्ञा पठमं अहू ॥ ११३ ॥

सत्तरसमो परिच्छेदो ॥
महिन्दनिब्बानं निट्ठितां ॥
भाणवारो सत्तरसमो ॥

●

---

1. अभिवादेत्वान- रो. ।
2. दीपयिंसु- रो. ।
* सधातुं एव तथा सेसं झायमानो महागणी ।- सो. ।
3. अकंसु- रो. ।
4-4. सब्बे आरामे योजनिके तदा-रो. ।
5-5. महिन्दं दीपजोतकं रो. ।
6. तं नामं -रो. ।

फिर उसे चिता पर रखते हुए, हाथ जोड़ कर रोते हुए, शिर से प्रणाम कर चिता को अग्नि दी ॥ १११ ॥

बाद में, उस विद्वान् महेन्द्र स्थविर की धातुओं (अस्थियों) के भस्मावशेष पर राजा ने सभी विहारों में स्तूप-निर्माण कराया ॥ ११२ ॥

जिस भूमि पर महेन्द्रस्थविर का देहपात हुआ था वह भूमि उसी दिन से 'ऋषिभूमि' नाम से जनता में प्रसिद्ध हो गयी ॥ ११३ ॥

सत्रहवाँ परिच्छेद समाप्त ॥

महेन्द्रस्थविर-निर्वाण वर्णन समाप्त ॥

सत्रहवाँ भाणवार समाप्त ॥

●

(इस कथा का विस्तार महावंश के २० वें परिच्छेद में भी देखें-अनु.)

१८.

अट्ठारसमो परिच्छेदो

(लङ्कायं भिक्खुनियो)

[S.92] इदानी अत्थि अञ्ञे पि थेरा च मज्झिमा नवा ।
विभज्जवादा विनये सासनवंसपालका[1] ॥ १ ॥

बहुस्सुता सीलवन्ता[2] ओभासेन्ति महिं इमं ।
धुतङ्गाचारसम्पन्ना सोभेन्ति दीपलञ्जकं ॥ २ ॥

सक्यपुत्ता बहू चेत्थ सद्धम्मवंसकोविदा ।
बहुन्नं वत अत्थाय लोके उप्पज्जि चक्खुमा ॥ ३ ॥

अन्धकारं विधमेत्वा आलोकं दस्सयी[3] जिनो ।
येसं तथागते सद्धा अचला सुप्पतिट्ठिता ॥ ४ ॥

सब्बा दुग्गतियो हित्वा सुगतिं उपपज्जरे ।
ये च भावेन्ति बोज्झङ्गे[4] इन्द्रियानि बलानि च ॥ ५ ॥

सतिसम्मप्पधाने च इद्धिपादे च केवले[5] ।
अरियं चट्ठङ्गिकं[6] मग्गं दुक्खूपसमगामिनं ॥ ६ ॥

छेत्वान मच्चुनो सेनं ते लोके विजिताविनो ॥ ति ।
मायादेवी कनिट्ठा च सहजाता एकमातुका ॥ ७ ॥

पायेसि[7] थञ्ञं सिद्धत्थं[7] माता व अनुकम्पिका ।
कित्तिता अग्गनिक्खित्ता छळभिञ्ञा महिद्धिका ॥ ८ ॥

---

1. सासने पवेणिपालका - को. ।
2. सीलसम्पन्ना- रो. ।
3. दस्सेसि सो- रो. ।
4. बोज्झङ्गं- रो. ।
5. केवलं- रो. ।
6. अट्ठङ्गिकं- रो ।
7-7 भगवन्तं थनं पायेसि- रो. ।

अठारहवाँ परिच्छेद

(लङ्काद्वीप की भिक्षुणियों का वर्णन)

सद्धर्म-माहात्म्य– आज, महास्थविर के परिनिर्वाण के बाद, भी इस सद्धर्भ में ऐसे स्थविर, मध्यम एवं नये भिक्षु हैं जो विभज्यवाद (स्थविरवाद) के पोषक हैं, विनय में शासन के नियमों को पालते हैं ॥ १ ॥

जो बहुश्रुत हैं, शीलवान् हैं, अपने सदाचार से समग्र लोक (भूमण्डल) को अवभासित कर रहे हैं, धुताङ्ग के आचरण से युक्त है; इस समग्र द्वीप को सद्धर्म-प्रचार से शोभित कर रहे हैं॥ २ ॥

ऐसे भी शाक्यपुत्र (बुद्धमतानुयायी भिक्षु) बहुत हैं जो इस सद्धर्म की परिपाटी का सम्यक् प्रकार से ज्ञान रखते हैं ।

वे दिव्यदृष्टि भिक्षु बहुतों के प्रयोजन के लिये (भवदुःखमुक्तिहेतु) इस लोक में अवतरित होते हैं ॥ ३ ॥

वे भगवान् यहाँ अज्ञानान्धकार को नष्ट कर, ज्ञान का प्रकाश करते हैं । ऐसे उस शास्ता तथागत (भगवान् बुद्ध) में जिनकी अचल (स्थायी) श्रद्धा हैं ॥ ४ ॥

वे अपनी सभी दुर्गतियाँ (नरकयोनि) छोड़ कर (उन भगवान् की कृपा से) सुगति (स्वर्ग) की तरफ ही जाते हैं । जो (उनके अनुशासन में रहकर) बोध्यङ्ग, इन्द्रिया और बल ॥ ५ ॥

स्मृति, सम्यक्प्रधान, ऋद्धिपाद, आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग, जो दुःखक्षय की तरफ ले जाता है, की भावना करते है ॥ ६ ॥

वे ही मृत्यु (मार) सेना को छिन्न-भिन्न कर संसार में विजयी कहलाते हैं ।

थेरी भिक्षुणियाँ– मायादेवी और उनकी छोटी बहन, जो एक ही माता के उदर से उत्पन्न हुई थी, तथा जिन्होंने सिद्धार्थ को अपने स्तनों से दूध पिलाया था, उनकी इस (बौद्ध) धर्म के प्रधानों में गणना है । वे छह अभिज्ञाओं तथा ऋद्धियों से सम्पन्न थी ॥ ७-८ ॥

महापजापती नामा[1] गोतमी इति विस्सुता ।
खेमा उप्पलवण्णा च उभो ता अग्गसाविका ॥ ९ ॥

पटाचारा धम्मदिन्ना सोभिता इसिदासिका ।
विसाखा सोणा सुबला सङ्घदासी विचक्खणा ॥ १० ॥

नन्दा च धम्मपाला च विनये च विसारदा ।
एतायो[2] जम्बुदीपम्हि[3] पञ्ञता[3] मग्गकोविदा ॥ ११ ॥

[R.97] थेरिका सङ्घमित्ता च उत्तरा च विचक्खणा ।
हेमा मसारगल्ला[4] च अग्गिमित्ता च दासिका ॥ १२ ॥

फेग्गु पब्बता मत्ता च मल्ला च धम्मदासिया ।
दहरा[5] ता भिक्खुनियो[5] जम्बुदीपा इधागता ॥ १३ ॥

सद्धम्मट्ठितिकामायो[6] अनुराधव्हये पुरे[6] ।
विनये पञ्च वाचेसुं सत्तप्पकरणानि[7] च[7] ॥ १४ ॥

[S.93] सद्धम्मनन्दी सोमा च गिरिद्धि पि च दासिका ।
धम्मा च धम्मपाला च विनयम्हि[8] विसारदा ।
धुतवादा च महिला सोभना धम्मतापसा ॥ १५ ॥

नरमित्ता महापञ्ञा विनये च विसारदा ।
थेरियोवादकुसला साता काली च उत्तरा ॥ १६ ॥

एता[9] तदुपसम्पन्ना[9] अहेसुं दीपलङ्के ।
अभिञ्ञाता च सुमना सद्धम्मवंसकोविदा ॥ १७ ॥

---

1. नाम- रो. ।
2. एता- रो. ।
3–3 जम्बुदीपव्हये विनेय्युं- रो. ।
4. पसादपोला- रो. ।
5.5- एता दहरभिक्खुनियो- रो. । ।
6–6 विनयं वाचिंसु पिटकं अनुराधपुरव्हये ।- रो. ।
7. सत्त चेव पकरणे- रो. ।
8. विनये च- रो. ।
9–9 एता तदा भिक्खुनियो उपसम्पन्ना- रो. ।

उनका नाम 'महाप्रजापती' था । और 'गौतमी' उनका उपनाम था । इसी तरह क्षेमा एवं उत्पलवर्णा भिक्षुणी भी (इस बुद्ध धर्म में) प्रधान श्राविका (अग्रश्राविका) कहलाती थीं ॥ ९ ॥

मध्यम भिक्षुणियाँ– पटाचार, धम्मदिन्ना, शोभिता, ऋषिदासिका, विशाखा, सोणा, सुबला, बुद्धिमती सङ्घदासी ॥ १० ॥

नन्दा, धर्मपाला– ये सभी भिक्षुणियाँ विनयपालन में दक्ष थीं । ये भिक्षुणियाँ जम्बुद्वीप (भारतवर्ष) में 'मार्गज्ञ' कहलाती थीं– ॥ ११ ॥

थेरी सङ्घमित्रा, बुद्धिमती उत्तरा, हेमा, मसारगल्ला, अग्निमित्रा, दासिका ॥ १२ ॥

नव भिक्षुणियाँ– फेग्गु, पर्वता, मत्ता, मल्ला, धर्मदासी– ये भिक्षुणियाँ नयी प्रव्रजित होकर इस लङ्काद्वीप में आयी थी ॥ १३ ॥

ये सभी भिक्षुणियाँ, सद्धर्म के स्थैर्य की कामना से, अनुराधपुर में आकर बुद्धवचन का स्वाध्याय करने लगीं । इन्होंने समग्र विनयपिटक, सुत्तपिटक के पाँचों निकाय एवं अभिधर्मपिटक के सातों प्रकरण-ग्रन्थ गुरुमुख से पढ़े ॥ १४ ॥

लङ्काद्वीप की भिक्षुणियाँ– सद्धर्मनन्दी, सोमा, गिरिद्धि, दासिका, धम्मा एवं धम्मपाला– ये भिक्षुणियाँ विनय की पण्डित थीं । सोभना एवं धम्मतापसा भिक्षुणियाँ धुताङ्गपालन में कुशल थी ॥ १५ ॥

बुद्धिमती नरमित्रा भी 'विनय' की पण्डित थी । साता, काली एवं उत्तरा– ये भिक्षुणियाँ 'थेरीवाद' के प्रवचन में कुशल थीं ॥ १६ ॥

ये सभी भिक्षुणियाँ उस समय सद्धर्म में उपसम्पन्न होकर 'द्वीप की शोभा' बन गयीं । ये अभिज्ञात, शुद्धचित्त, तथा इस सद्धर्म की परिपाटी में कुशल थीं ॥ १७ ॥

एता तदा भिक्खुनियो धुतरागा समाहिता ।
सुधोतमनसङ्कप्पा सद्धम्मविनये रता ॥ १८ ॥

वीसतिया[1] सहस्सेहि भिक्खुनीहि च उत्तरा[1] ।
सुजातकुलपुत्तेन अभयेन यसस्सिना ॥ १९ ॥

विनयं ताव वाचेसुं अनुराधपुरव्हये ।
निकाय पञ्च वाचेसुं सत्तप्पकरणानि[2] च[2] ॥ २० ॥

अभिञ्ञाता च महिला सद्धम्मवंसकोविदा ।
समन्ता काकवण्णस्स एता राजस्स धीतरा ॥ २१ ॥

पुरोहितस्स धीता च गिरिकाली बहुस्सुता ।
दासी काली तु धुत्तस्स धीतरो सुब्बपापिका[3] ॥ २२ ॥

एता तदा भिक्खुनियो सब्बपालि दुरासदा ।
ओदातमनसङ्कप्पा सद्धम्मविनये रता ॥ २३ ॥

वीसतिया[4] सहस्सेहि रोहना च तदा गता[4] ।
पूजिता नरदेवेन अभयेन यसस्सिना ॥ २४ ॥

विनयं तत्थ[5] वाचेसुं[5] अनुराधपुरव्हये ।
[R.98] महादेवी च पदुमा हेमासा च यसस्सिना* ॥ २५ ॥

एता[6] तदा भिक्खुनियो छळभिञ्ञा महिद्धिका[6] ।
देवानम्पियतिस्सेन[7] पूजिता च[7] यसस्सिना ॥ २६ ॥

[R.94] विनयं तं[8] वाचेसु पुरम्हि[9] अनुराधके[9] ।
महासोणा[10] च दत्ता च सीवली च विचक्खणा[10] ॥ २७ ॥

1-1 वीसतिभिक्खुनीसहस्सेहि उत्तरा सद्धम्ममता- रो. ।
2.-2 सत्त चेव पकरणे- रो. ।
3. सब्बपापिका- रो. ।
4-1 वीसति भिक्खूनि सहस्सेहि सह रोहनं आगता- रो. ।
5-5 वाचयिंसु पिटकं- रो. ।
* उन्नला अञ्जली सुमा- रो. अधिको पाठो ।
6-6 सोलसभिक्खुनिसहस्सेहि सह सङ्घमित्तागता-रो.।
7-7 पूजिता तिस्सराजेन देवानाम्पिय- रो. ।
8. रो. नत्थि ।
9-9 पिटकं अनुराधपुरव्हये- रो. ।
10–10.सीवला च महारूहा सद्धम्मवंसकोविदा-रो. ।

उस समय उत्पन्न हुई ये भिक्षुणियाँ वीतराग एवं समाधिकुशल थी । इनके मनःसङ्कल्प पवित्र हो चुके थे, तथा ये सद्धर्म के अनुशासन में रत रहती थीं ॥ १८ ॥

बीस हजार (२०,०००) भिक्षुणियों के साथ उत्तरा भिक्षुणी ने उच्चकुलोत्पन्न यशस्वी अभय स्थविर से ॥ १९ ॥

अनुराधपुर में रहते हुए विनयपिटक का अध्ययन किया । इसी तरह सुत्तपिटक के पाँचों निकाय एवं अभिधम्मपिटक के सातों प्रकरण-ग्रन्थ पढ़े ॥ २० ॥

इसी तरह काकवर्ण राजा की पुत्री भी अभिज्ञात एवं सद्धर्म परिपाटी की जानकार थी ॥ २१ ॥

पुरोहित की पुत्री गिरिकाली भी बहुश्रुत थी । दासी, काली एवं सुब्बपापिका ये जुआरी की पुत्रियाँ भी ॥ २२ ॥

भिक्षुणियाँ बनकर समग्र बुद्ध वचन में इतनी निष्णात हो गयीं कि बहुत कठिनता से ही कोई विद्वान् इन का प्रमाद पकड़ पाता था । इनका मनःसङ्कल्प पवित्र रहता था । वे सद्धर्मपालन में भी निरत रहती थीं ॥ २३ ॥

रोहना भिक्षुणी– बीस हजार (२०,०००) भिक्षुणियों के साथ भिक्षुणीसङ्घ में प्रशंसाप्राप्त रोहना भिक्षुणी ने यशस्वी नरश्रेष्ठ अभय से ॥ २४ ॥

अनुराधपुर में रहकर 'विनय' पढ़ा । इसी तरह महादेवी, पद्मा एवं यशस्विनी, हेमाशा ॥ २५ ॥

ये सभी भिक्षुणियाँ छह अभिज्ञाओं तथा ऋद्धियों से सम्पन्न थी तथा राजा देवानाम्प्रिय तिष्य भी इनका आदर करता था ॥ २६ ॥

इन्होंने अनुराधपुर में रहकर 'विनय' पढ़ा । महासोणा, दत्ता, एवं बुद्धिमती सीवली ॥ २७ ॥

रूपसोभिणि अप्पमत्ता देवमानुसपूजिता[1] ।
नागा च नागमित्ता च धम्मगुत्ता च दासिका[2] ॥ २८ ॥

चक्खुभूता समुद्दा च सद्धम्मवंसकोविदा ।
सपत्ता छन्ना उपाली[3] रेवता साधुसम्मता ॥ २९ ॥

अग्गा[4] विनयवादीनं[4] सोमदेवस्स अत्रजा ।
माला खेमा च तिस्सा च धम्मकथिकमुत्तमा ॥ ३० ॥

विनयं ता वाचयिंसु पठमापगते भये ।
महारुहा[5] सीवली च[5] सद्धम्मवंसकोविदा ॥ ३१ ॥

पासादिका जम्बुदीपे[6] सासनेन बहू[7] जने[7] ।
वीसतिया[8] सहस्सेहि जम्बुदीपा इधागता[8] ॥ ३२ ॥

याचिता नरदेवेन अभयेन यसस्सिना ।
विनयं ता[9] वाचयिंसु [10]पुरम्हि अनुराधके[10] ॥ ३३ ॥

निकाये पञ्च वाचेसुं सत्तप्पकरणानि[11] च[11] ।
समुद्दा[12] नावा देवी च सीवली[12] राजधीतरो ॥ ३४ ॥

विसारदा नागपाली नागमित्ता च पण्डिता ।
महिला भिक्खुनीपाला[13] विनये च विसारदा ॥ ३५ ॥

---

1. पूजिता देवमानुसा- रो. ।
2. दासिया- रो. ।
3. ० च-रो. ।
4-4 एता विनयग्गीनं अग्गा- रो. ।
5-5 सीवला च महारुहा- रो. ।
6. जम्वुदीपा- रो. ।
7-7 ब़हू जना- रो. ।
8-8 वीसतिभिक्खुनिसहस्सेहि सह जम्बूदीपागता- रो. ।
9. रो. नत्थि ।
10-10 पिटकं अनुराधपुरव्हये- रो. ।
11-11 सत्त चेव पकरणे- रो. ।
12-12 ससमुद्दा नवा देवी सीवला- रो. ।
13 ० च- रो. ।

देवताओं तथा मनुष्यों द्वारा पूजित रूपशोभिनी, अप्रमत्ता, नागा, नागमित्रा, धर्मगुप्ता, दासिका ॥ २८ ॥

ज्ञानसम्पन्न समुद्रा, जो कि सद्धर्म-परम्परा की जानकार थी, सपत्ता, छन्ना, उपाली तथा साधुसम्मत रेवता ॥ २९ ॥

जो कि विनयवादियों में श्रेष्ठ थी और सोमदेव की पुत्री थी ।
इसी तरह माला, क्षेमा, तिष्या भिक्षुणियाँ धर्मप्रवाचकों में श्रेष्ठ थी ॥ ३० ॥

इन्होनें लङ्का द्वीप में, प्रथम अभय स्थविर के निर्वाण के बाद, जिज्ञासुओं को 'विनय' का वाचन कराया ।

इसी तरह महारुहा एवं सीवली भिक्षुणी सद्धर्मवंश की ज्ञात्री थीं ॥ ३१ ॥

ये दोनों भिक्षुणियाँ लङ्काद्वीपवासियों की सद्धर्म में श्रद्धा उत्पाद के लिये बीस हजार (२०,०००) भिक्षुणियों के साथ जम्बुद्वीप से यहाँ (लङ्का द्वीप में) आयी थीं ॥ ३२ ॥

यशस्वी राजा अभयदेव के कहने पर इन्होंने यहाँ विनय पढ़ाया । पाँचों निकाय पढ़ाये । साथ ही (अभिधर्म के) सात प्रकरण-ग्रन्थ भी पढ़ाये ॥ ३३ ॥

समुद्रा, नावादेवी एवं सीवली–ये तीनों भिक्षुणियाँ राजपुत्रियाँ थीं ॥ ३४ ॥

बुद्धिमती नागपाली एवं पण्डिता नागमित्रा एवं महिला भिक्षुणीपाला– ये तीनों भिक्षुणियाँ विनयविशारद थीं ॥ ३५ ॥

नागा च नागमित्ता च सद्धम्मवंसकोविदा ।
एता तदुपसम्पन्न[1] अहेसुं[1] दीपलञ्जके ॥ ३६ ॥

सब्बा व जातिसम्पन्ना सासने विस्सुता तदा ।
सोळसन्नं[2] सहस्सानं उत्तमा धुरसम्मता ॥ ३७ ॥

पूजिता कुटिकण्णेन अभयेन यसस्सिना ।
विनयं ता[3] वाचयिंसु पुरम्हि[4] अनुराधके[4] ॥ ३८ ॥

चूलनागा च दत्ता[5] च सोणा च साधुसम्मता ।
अभिञ्ञाता च सण्हा च सद्धम्मवंसकोविदा ॥ ३९ ॥

[R.99] गमिकधीता महापञ्ञा महातिस्सा विसारदा ।
महासुमना[6] सुमना[6] महाकाली च पण्डिता ॥ ४० ॥

[S.95] सम्भाविते[7] कुले जाता, लक्खधम्मा महायसा ।
दीपनया महापञ्ञा, रोहने साधुसम्मता ॥ ४१ ॥

अभिञ्ञाता समुद्दा च सद्धम्मवंसकोविदा ।
विभज्जवादी विनयधरा[8] ता सङ्घसोभना ॥ ४२ ॥

एता तदुपसम्पन्ना[9] अहेसुं[9] दीपलञ्जके ।
ओदातमनसङ्कप्पा सद्धम्मविनये रता ॥ ४३ ॥

बहुस्सुता सुतधरा पापबाहिरका च ता ।
जलित्वाग्गिक्खन्धो[10] व निब्बुता च महायसा ॥ ४४ ॥

1-10 तदा भिक्खूनियो उपसम्पन्ना- रो. ।
2. भिक्खुनि- रो. ।
3. रो. नत्थि ।
4-4 पिटकं अनुराधपुरव्हये- रो. ।
5. छन्ना- रो. ।
6-6 चूलसुमना महासुमना- रो. ।
7. सम्भाविता- रो. ।
8. ° उभो- रो. ।
9-9 च अञ्ञा च भिक्खूनियो- रो. ।
10. 'जलिता अग्गिखवन्धा' व - रो. ।

नागा एवं नागमित्रा– नागा एवं नागमित्रा भिक्षुणियाँ सद्धर्मवंश की पण्डित थीं । ये सभी भिक्षुणियाँ अपने समय में (तदा) उपसम्पन्न होकर लङ्का द्वीप के भिक्षुणी-जगत् में प्रसिद्ध हो गयीं ॥ ३६ ॥

ये सभी उच्चकुलोत्पन्न थी, सङ्घ में इनकी प्रसिद्धि थी । सोलह हजार (१६,०००) भिक्षुणियों में ये श्रेष्ठ थी और उनकी धुरी के समान थीं ॥ ३७ ॥

ये यशस्वी कुटिकण्ण अभय द्वारा प्रशंसा (पूजा) प्राप्त थीं । इन्होंने (अपने समय में) अनुराधपुर में रहकर भिक्षुणियों को विनय पढ़ाया था ॥ ३८ ॥

चूळनागा, दत्ता एवं सोणा– ये तीन भिक्षुणियाँ सज्जनों द्वारा प्रशंसाप्राप्त थी, उच्चकुलोत्पन्न थीं, श्लक्ष्णा (मृदु= कोमल) स्वभाव वाली थीं । तथा सद्धर्मपरम्परा की पण्डित थीं ॥ ३९ ॥

महाप्राज्ञ गमिकपुत्री एवं विदुषी महातिष्या, महामनस्विनी सुमना एवं पण्डिता महाकाली ॥ ४० ॥

ये सभी भिक्षुणियाँ पूज्य (सम्भावित) कुल में उत्पन्न हुई थीं । लक्ष्य (अर्हत्त्व) तक पहुँची हुई थीं, अतएव अत्यधिक यशस्विनी थीं । शास्त्रवाचन में तीक्ष्ण बुद्धि थीं । सद्धर्म की उन्नति (रोहन) के कार्यों में सज्जनों द्वारा प्रशंसा प्राप्त थीं ॥ ४१ ॥

समुद्रा भिक्षुणी आभिजात्य (प्रशस्त) कुल में उत्पन्न हुई थी । सद्धर्मपरम्परा की बहुत अच्छी पण्डित थी । विभज्यवाद (स्थविरवाद) में पारङ्गत थी । 'विनय' की भी पण्डित थी । ये सभी भिक्षुणियाँ 'सङ्घ की शोभा' थी ॥ ४२ ॥

ये (अपने समय में) इसी द्वीप में सङ्घ में उपसम्पन्न हुई थीं । ये पवित्र मनःसङ्कल्प वाली थी तथा सद्धर्म एवं विनय में रत रहती थीं ॥ ४३ ॥

ये सभी भिक्षुणियाँ बहुश्रुत थीं, श्रुतधर थी, पापकर्मों से दूर हो चुकी थीं । समाज में बहुत यशःसम्पन्न थी । अग्निस्कन्ध की तरह द्वीप में प्रकाशित होती हुई अन्त में परिनिर्वृत हो गयीं ॥ ४४ ॥

इदानि अत्थि अञ्ञायो थेरियो[1] मज्झिमा नवा ।
विभज्जवादी विनयधरा सासनपालका[2] ॥ ४५ ॥

बहुस्सुता सीलवन्ती[3] ओभासेसुं महिं इमं[3] ॥ ति ।
सीवो च दसवस्सानि रज्जं कारेसि खत्तियो ॥ ४६ ॥

पतिट्ठपेसि आरामं मनुञ्ञं[4] नगरङ्गणं ।
दसवस्सं[5] सूरतिस्सो[5] रज्जं कारेसि खत्तियो ॥ ४७ ॥

सो[6] पञ्चसतारामं च[7] पुञ्ञं कारेसि[8] नप्पकं ।
सूरतिस्सं गहेत्वान दमिळा सेनगुत्तिका ॥ ४८ ॥

दुवे द्वादस वस्सानि रज्जं धम्मेन कारयुं ।
अत्रजो मुटसीवस्स असेलो सेनगुत्तिके ॥ ४९ ॥

गन्त्वान[9] दसवस्सानि रज्जं कारेसि खत्तियो ।
एलारो नाम नामेनासेलं[10] हन्त्वान खत्तियं[10] ॥ ५० ॥

चतुतालीस वस्सानि रज्जं धम्मेन कारयि ।
छन्दागतिं अगन्त्वान न दोसभयमोहगों[11] ॥ ५१ ॥

तुलाभूतो व हुत्वान धम्मेन अनुसासि सो ।
दिवा[11] हेमन्तं गिम्हं च[11] वस्सानं पि न वस्सति* ॥ ५२ ॥

---

1. थेरिका- रो. ।
2. सासने पवेणिपालका- रो. ।
3-3 सीलसम्पन्ना ओभासेन्ती- रो. ।
4. विहारं- रो. ।
5-5 सूरतिस्सो दसवस्सानि- रो. ।
6. कारेसि- रो.
7. उळारं -रो. ।
8. रो. न दिस्सति ।
9. खत्तियो- रो. ।
10-10 ० गतिं - रो. ।
11-11 हेमन्तम्पि च गिम्हानं
* सततं मेघो वस्सति सत्तसत्ताहम्पि वस्सति ।
तीणि अधिकरणानि आसि... विनिच्छि भूपति ।
रत्तिं व वस्सति मेघो दिवा पन न वस्सति ॥ -रो. अधिकपाठो ।

आज भी ऐसी दूसरी स्थविर, मध्यम एवं नव भिक्षुणियाँ हैं जो पूर्णतः स्थविरवादी हैं, विनय की पक्षपाती हैं, धर्मनुशासन का पालन करती हैं ॥ ४५ ॥

बहुश्रुत हैं, श्रुतधर हैं, और इस पृथ्वी की शोभा बढ़ा रही हैं ॥

भिक्षुणी-वर्णन समाप्त ॥

राजा शिव– राजा शिव ने दश वर्ष राज्य किया । उसने नगराङ्गण नामक एक मनोज्ञ (सुन्दर) आराम बनवाया ॥ ४६ ॥

राजा शूरतिष्य– राजा शूरतिष्य ने भी दश वर्ष ही राज्य किया ॥ ४७ ॥

उसने भिक्षुओं के लिये पाँच सौ (५००) आराम बनवा कर बहुत अधिक पुण्य कमाया ॥ ४८ ॥

दो द्रविड़ राजा– अन्त में इस शूरतिष्य को बन्दी बनाकर दो सेनगुप्तिक (अश्वसारथिपुत्र) द्रविड़ों ने यहाँ धर्मपूर्वक राज्य किया ॥ ४९ ॥

राजा अशैल– परन्तु राजा मुटशिव के ही (नौवे) पुत्र अशैल ने उन दोनों द्रविड़ सेनगुप्तिकों को बन्दी बनाकर पुनः अपना राज्य स्थापित किया । इस राजा ने भी दश ही वर्ष राज्य किया ।

राजा एळार– चोल देश से आये द्रविड़ राजा एळार ने इस राजा अशैल की हत्या कर अपना राज्य स्थापित किया ॥ ५० ॥

इस एळार राजा ने चौवालीस (४४) वर्ष तक धर्मपूर्वक राज्य किया । वह भय या मोह के वश में होकर अपने शासन के निर्णयों में कोई स्वेच्छाचारिता नहीं करता था ॥ ५१ ॥

उसने तुला (तराजू) के समान बनकर धर्मपूर्वक राज्य किया । उस का राज्य शासन इतना कठोर था कि देवता भी उससे भय खाते थे । भले ही कोई भी ऋतु क्यों न हो, उसके राज्य क्षेत्र में दिन में वर्षा न हो पाती थी, जिससे कि दिन में कार्य करते हुए मनुष्यों को कोई कष्ट न उठाना पड़े ॥ ५२ ॥

काकवण्णस्स यो पुत्तो अभयो नाम खत्तियो ।
दसयोधपरिवारो सहबारणकुण्डुलो[1] ॥ ५३ ॥

हन्त्वा[2] एळारराजानं[2] वंसं कत्वान एकतो ।
चतुवीसति वस्सानि रज्जं कारेसि खत्तियो ॥ ५४ ॥

भाणवारो अट्ठारसमो ॥

महावारो निट्ठितो ॥

अट्ठारसमो परिच्छेदो ॥

●

1. हनित्वा बत्तिंस- रो. ।

राजा अभय– काकवर्ण के पुत्र अभय (दुष्टग्रामणी नाम से विख्यात) ने अपने दश विशिष्ट योद्धाओं एवं कुण्डल हाथी के साथ ॥ ५३ ॥

वहाँ आकर एळार राजा को मारकर अपने वंश का राज्य पुनः स्थापित किया। चौबीस वर्ष तक इस राजा ने राज्य किया ॥

अठारहवाँ परिच्छेद समाप्त ॥

अठारहवाँ भाणवार समाप्त ॥

महावार भी समाप्त ॥

(इस परिच्छेद में आयी पाँच राजाओं की कथा का विस्तार महावंश के इक्कीसवें परिच्छेद में भी देखें-अनु०)

●

१९.

एकूनवीसतिमो परिच्छेदो

(दुट्ठगामणि अभयो)

[R.100, S.96] पासादं मापयी राजा उब्भेदं नवभूमिकं ।
अनग्घिकं चतुमुखं चागतो[1] तिंस कोटियो ॥ १ ॥

सुधाभूमि थूलसेलं मत्तिकं इट्ठकाय च ।
विसुद्धभूमिका चेव अयोजालं[2] मरुम्बकं[3] ॥ २ ॥

ईससक्खरपासाणा अट्ठ अट्ठलिका सिला[4] ।
एतानि भूमिकम्मानि कारापेत्वान खत्तियो ॥ ३ ॥

भिक्खुसङ्घं समोधाय[5] चेतिया बट्टगामिणी[6] ।
इन्दगुत्तो धम्मसेनो पियदस्सी महाकथी ॥ ४ ॥

*बुद्धरक्खितथेरो च धम्मरक्खितको पि च ।
सङ्घरक्खितथेरो च मत्तिण्णो च विसारदो ॥ ५ ॥

उत्तिण्णो तु महादेवो थेरो च धम्मरखितो* ।
उत्तरो चित्तगुत्तो च चन्दगुत्तो च पण्डितो ॥ ६ ॥

सुरियगुत्तत्थेरो[7] च पटिभानविसारदो ।
एते खो चुद्दसत्थेरा[8] जम्बुदीपा इधागता ॥ ७ ॥

---

1. परिच्चागा- रो. ।
2. ० ततो- रो. ।
3. मरुम्पं-रो. ।
4. फलिकरजतनेन द्वादस-रो. ।
5. समोधानेत्वा- रो. ।
6. वट्टसम्मिति- रो. ।
* बुद्धो धम्मो च सङ्घो च मित्तन्नो च विसारदो ।
* अनत्तनो महादेवो धम्मरक्खितो बहुस्सुतो । -रो.
7. सुरियगुत्तो महानागो- रो. ।
8. ०सब्बे-रो. ।

उन्नीसवाँ परिच्छेद

(राजा अभय दुष्टग्रामणी)

महाप्रासादनिर्माण– इस राजा अभय ने ऐसा प्रासाद बनवाया जो बहुत ऊँचा नौ (९) मंजिल का था । जिसका निर्माण अत्यधिक महँगा पड़ा । इसके चारों तरफ चार विशाल द्वार थे । इस पर तीस करोड़ (३०,००,००,०००) मुद्रा व्यय हुईं ॥ १ ॥

इसमें अच्छे चूने का, मोटे पत्थरों का, अच्छी मिट्टी एवं ईटों का, समतल भूमि एवं लौह जाल का ॥ २ ॥

विल्लौरी पत्थरों का, वजरी मिट्टी का, आठ बड़ी-बड़ी शिलाओं का उपयोग हुआ था । राजा ने ये भूमिकर्म कराये ॥ ३ ॥

जम्बुद्वीप से आगत भिक्षु– राजा वट्टगामणी ने चैत्य से भिक्षुसङ्घ को आमन्त्रित किया । इस सङ्घ में–१. इन्द्रगुप्त, २. धर्मसेन, ३. महान् धर्मकथिक प्रियदर्शी, ४. बुद्धरक्षित स्थविर और ५. धर्मरक्षित (१) ६. सङ्घरक्षित, ७. पण्डित मत्तिण्ण, ८. उत्तिण्ण, ९. महादेव स्थविर, १०. धम्मरक्षित(२) ११. चित्तगुप्त, १२. उत्तर, १३. चन्द्रगुप्त स्थविर एवं १४. सूर्यगुप्त स्थविर, जो कि अत्यधिक प्रत्युत्पन्नमति थे ।

ये उपर्युक्त सभी महास्थविर जम्बुद्वीप (भारतवर्ष) से यहाँ (लङ्काद्वीप में) आये थे ॥ ४-७ ॥

सिद्धत्थो मङ्गलो सुमनो पदुमो चापि सीवली ।
चन्दगुत्तो सुरियगुत्तो इन्दगुत्तो च सागरो ॥ ८ ॥

मित्तसेनो जयसेनो अचलेन च द्वादस ।
सुपतिट्ठितो ब्रह्मा च सुमना[1] नन्दिसेनको[1] ॥ ९ ॥

पुत्तो माता पिता चेव गिहिभूता तयो जना ।
कारापेसि महाथूपं महाविहारं उत्तमे ॥ १० ॥

अनग्धं वीसति दत्वा परिच्चागो...........॥ ११ ॥

[R.10] गमिकवत्तं सुणित्वा भिक्खुसङ्घस्स भासतो ।
[S.97] अदासि गमिकभेसज्जं फासुविहारं साधुकं[2] ॥ १२ ॥

भिक्खुनीनं वचो सुत्वा यथा[3] काले सुभासितं ।
अदासि[4] भिक्खुनीनं[5] च[5] यदिच्छं राजइस्सरो ॥ १३ ॥

सिलाथूपं च[6] कारेसि[6] रम्मे[7] चेतियपब्बते ।
कारेसि आसनसालं जलकं नाम उत्तमं ॥ १४ ॥

गिरिनामनिगण्ठस्स फुट्ठोकासे तहिं कतो ।
अभयगिरी ति पञ्ञत्ति विहारो समजायथ ॥ १५ ॥

पुलहत्थो[8] बाहियो[9] च पन यो पिल्य[10] दाठिका ।
चुद्दसवस्सं[11] पन ते सत्तमासं रज्जमकारयुं[11]॥ १६ ॥

1-1 नन्दिसेन सुमनदेवी च- रो. ।
2. रो. पोत्थके न दिस्सति ।
3. हरि- रो. ।
4. ⁰ चेव- रो. ।
5-5. भिक्खुनीनं- रो. ।
6-6 अकारेसि- रो. ।
7. विहारं- रो. ।
8. आलवत्तो- रो. ।
9. साभियो- रो. ।
10. पलय- रो. ।
11-11 सत्तमासा पञ्चराजानो कारयुं- रो. ।

सिद्धार्थ, मङ्गल, सुमन, पद्म, सीवली, चन्द्रगुप्त, सूर्यगुप्त, इन्द्रगुप्त, सागर ॥ ८ ॥

मित्रसेन, जयसेन एवं अचल– ये बारह (१२) एवं सुप्रतिष्ठित ब्रह्मा एवं शुद्धचित्त नन्दिसेन ॥ ९ ॥

पुत्र, माता तथा पिता– इन तीन गृहस्थ जनों ने .. उत्तम महाविहार में महा स्तूप बनवाया ॥ १० ॥

महँगे बीस (२०) देकर दान (ज्ञात होता है कि यहाँ कुछ मूल पाठ विलुप्त हो गया, अतः प्रासङ्गिक अर्थ ठीक नहीं बैठ रहा है –अनु० ।) ॥ ११ ॥

भिक्षुसङ्घ की जाने की तय्यारी (गमिकवत्त) सुनकर मार्ग में उपयोग में आने वाली औषध-सामग्री दी तथा सुविधापूर्वक यात्रा के सभी साधन दिये ॥ १२ ॥

उधर, भिक्षुणियों द्वारा यथासमय कहे गये (सुभाषित) वचनों को सुनकर राजा ने उनको भी यथेच्छ दान किया ॥ १३ ॥

स्तूपनिर्माण– राजा के चैत्य पर्वत पर महान् पाषाणमय स्तूप निर्माण कराया । इसी तरह उत्तम 'जलक' नामक आसनशाला बनवायी ॥ १४ ॥

साथ ही गिरिनामक निगण्ठ का भी खुले स्थान में 'अभयगिरि' नाम का विहार बनवाया[1] ॥ १५ ॥

तीन द्रविड़ राजा– पुलहत्थ (पुलस्त्य), बाहिय (बाह्य) एवं अल्प दाठिक–इन तीन द्रविड़ों ने चौदह (१४) वर्ष सात (७) मास राज्य किया ॥ १६ ॥

---

1. द्र. महावंस, दशम परिच्छेद ९७ गा० ।

सद्धातिस्सस्स पुत्तो तु अभयो नाम खत्तियो ।
दाठिकं दमिलं हन्त्वा रज्जं कारेसि साधुकं[1] ॥ १७ ॥

अभयगिरिं पतिट्ठपेसि महाचेतियमन्तरे ।
द्वादसवस्सं पञ्च मासानि रज्जं कारेसि खत्तियो ॥ १८ ॥

सत्त योधा अभयस्स आरामे पञ्च कारयुं ।
उत्तियो च सालियो च मूलो तिस्सो च पब्बतो ।
देवो च उत्तरो चेव एते खो सत्त योधिनो ॥ १९ ॥

विहारं दक्खिणं नाम उत्तियो नाम कारयि ।
सालियो सालियारामं मूलो च मूलआसयं ॥ २० ॥

पब्बतो पब्बतारामं तिस्सो तिस्सारामकं[2] ।
देवो च उत्तरो चेव देवागारं अकंसु ते ॥ २१ ॥

काकवण्णस्स अत्रजो महातिस्सो महीपति ।
कतिकं[3] कत्वा[4] मच्चेहि सालिक्खेत्तं मनोरमं[4] ।
अदासि सुम्मत्थेरस्स सन्तचित्तस्स झायिनो ॥ २२ ॥
यन्तं कथिकं कत्वान तिवस्सं[5] च[5] अनूनकं ।
महादानं पवत्तेसि भिक्खू नेकसहस्सिये[6] ॥ २३ ॥

कतपुञ्ञो महापञ्ञो अभयो दुट्ठगामिणी ।
कायस्स भेदा तुसितं[7] कायं सो समुपागमि[7] ॥ २४ ॥

दुट्ठगामणि अभयवण्णनं निट्ठितं ॥

भाणवारो एकूनविसतिमो ॥

एकूनवीसतिमो परिच्छेदो ॥

●

---

1. खत्तियो- रो. ।
2. तिस्सारामं करे- रो. ।
3. दिन्ने॰- रो. ।
4-4 कत्वान सालिक्खेत्ते महीपति- रो. ।
5-5 तीणि वस्सं- रो. ।
6. कोटि सहस्सियो- रो. ।
7-7 सपञ्ञो तुसितं कायं उपागमि- रो. ।

राजा अभय– श्रद्धातिष्य के पुत्र अभय ने इस दाठिक द्रविड़ को मारकर अपना राज्य स्थापित किया ॥ १७ ॥

इसने महाचैत्य के बीच में अभयगिरिविहार बनवाया । इस राजा ने बारह (१२) वर्ष, पाँच (५) मास राज्य किया ॥ १८ ॥

सात योद्धा– इस अभय राजा के सात योद्धाओं ने पाँच (५) आराम बनवाये । उन योद्धाओं के नाम ये हैं – १. उत्तिय, २. सालिय, ३. मूल, ४. तिष्य, ५. पर्वत, ६. देव एवं ७. उत्तर । ये राजा अभय के सात योद्धा थे[1] । ॥ १९ ॥

इनमें से उत्तिय योद्धा ने दक्षिण विहार बनवाया । सालिय योद्धा ने सालियाराम एवं मूल योद्धा ने मूलाशय ॥ २० ॥

पर्वत योद्धा ने पर्वताराम, तिष्य योद्धा ने तिष्याराम; देव और उत्तर योद्धाओं ने देवागार बनवाये ॥ २१ ॥

राजा महातिष्य– काकवर्ण राजा के पुत्र महातिष्य राजा ने अमात्यों से मन्त्रणा (कतिक) करके एक सुन्दर धान का खेत बनवाया । उसे शान्तचित्त, ध्यानी सुम्मस्थविर को (भिक्षुओं के उपयोग के लिये) दान कर दिया ॥ २२ ॥

दृढ़ निश्चय करके इस राजा ने तीन वर्ष से अधिक समय तक अनेक सहस्र भिक्षुओं को निरन्तर महादान (भोजनदान) किया ॥ २३ ॥

यों इस पुण्यवान् महाप्रज्ञ अभय दुष्टग्रामणी राजा ने देहपात के बाद तुषितलोक को प्रस्थान किया ॥ २४ ॥

राजा दुष्टग्रामणी का वर्णन समाप्त ॥

उन्नीसवाँ परिच्छेद समाप्त ॥

उन्नीसवाँ भाणवार भी समाप्त ॥

●

1 (महावंशकार ने यहाँ दश योद्धाओं के नाम गिनाये हैं । द्र. महावंस–२३. परि.- अनु.)

२०.

बीसतिमो परिच्छेदो
(राजूनं वण्णनं)

[S. 98] काकवण्णस्स यो पुत्तो तिस्सो नामा ति विस्सुतो ।
कारापेसि महाथूपे[1] छत्तकम्मादिसेसकं[2] ॥ १ ॥

[R.102] दक्खिणगिरिविहारं[3] च कल्लकल्लेन कारितं[3] ।
अञ्ञे[4] बहू विहारा[5] च[5] सद्धातिस्सेन कारिता[6] ॥ २ ॥

चतुरासीति सहस्सानि धम्मक्खन्धा[7] त्यनुस्सरं[7] ।
एकेकधम्मक्खन्धस्स पूजं चेकेक[8] कारयि ॥ ३ ॥

पासादं च सकारेसि[9] मनुञ्ञं सत्तभूमिकं ।
लोहिट्ठकेन छादेसि सद्धातिस्सो महायसो ।
लोहपासादकं नाम समञ्ञा पठमं अहू ॥ ४ ॥

कारापेसि कञ्चुकं[10] च[10] महाथूपे पनुत्तमे[11] ।
कारेसि[12] हत्थिपाकारं परिवारिय चेतिय[12] ॥ ५ ॥

चतुरस्सं च कारेसि तळाकं तावकालिकं ।
अट्ठारसानि वस्सानि रज्जं कारेसि खत्तियो ॥ ६ ॥

---

1. महाथूपं- रो. ।
2. तिस्सो विहारं उत्तमो- रो. ।
3-3 विहारं कारापयति कल्लकालेन उत्तमं- रो.
4. अञ्ञं च-रो. ।
5-5 वि[illegible]रं- रो. ।
6. कारितं- रो. ।
7-7 धम्मक्खन्धं महारहं- रो. ।
8. एकेकं- रो. ।
9. अकारयि- रो. ।
10-10 खरापिण्डं-रो. ।
11. वरुत्तमे- रो. ।
12-12. हत्थिपाकारं कारेसि परिवारं मनोरमं-रो. ।

बीसवाँ परिच्छेद

(राजाओं का वर्णन)

राजा तिष्य–राजा काकवर्ण का जो पुत्र हुआ वह 'तिष्य' नाम से विख्यात हुआ । उसने महास्तूप पर छत्रकर्म आदि शेष बचे हुए कार्य कराये ॥ १ ॥

उसने कुशल (कल्लकल्ल= अच्छे अच्छे) कारीगरों से दक्षिणागिरि विहार का निर्माण कराया । इसी तरह अन्य बहुत से विहारों का भी निर्माण इस राजा श्रद्धातिष्य ने कराया ॥ २ ॥

बुद्धवचन के चौरासी हजार (८४,०००) धर्मस्कन्धों का अनुसरण करते हुए इस राजा ने प्रत्येक धर्मस्कन्ध की पृथक् पृथक् पूजा करायी ॥ ३ ॥

लौहप्रासाद– इस महान् यशस्वी राजा श्रद्धातिष्य ने एक सुन्दर सात मंजिल वाला (सप्त- भूमिक) प्रासाद बनवाया । इसकी विशेषता यह थी कि लोहे की ईंटों से इसका निर्माण हुआ । अतः इसका नाम 'लौहप्रासाद' ही प्रसिद्ध हो गया ॥ ४ ॥

उसने उस महास्तूप पर कञ्चुक (ऊपरी आवरण) का निर्माण कराया । तथा चैत्य को घेर कर हस्तिप्राकार (विशाल परकोटा) बनवाया ॥ ५ ॥

उसके चारों तरफ तालाब खुदवाये । इस राजा ने अठारह (१८) वर्ष राज्य किया ॥ ६ ॥

कत्वा अञ्ञं बहुं पुञ्ञं दत्वा दानं अनप्पकं ।
कायस्स भेदा सप्पञ्ञो तुसितं सो[1]· समुपागमि[1] ॥ ७ ॥

सद्धातिस्सस्स अत्रजो थुल्लत्थेनो[2] ति विस्सुतो ।
कारापेसि मनोरम्मं[3] विहारं अलकन्दरं ॥ ८ ॥

दसाहं एकमासं च रज्जं कारेसि खत्तियो ।
सद्धातिस्सस्स अत्रजो लञ्जतिस्सो ति विस्सुतो ॥ ९ ॥

नव वस्सं छमासं च इस्सरियं अनुसासि सो ।
कारापेसि तिलञ्जनं[4] महाथूपे अनुत्तमे[5] ॥ १० ॥

पतिट्ठपेसि आरामं गिरिकुम्भिलनामकं[6] ।
कारापेसि दीघथूपं थूपारामपुरत्थितो ॥ ११ ॥

सिलाकञ्चुके कारेसि थूपारामे[7] मनोरमे[7] ।
मते[8] लञ्जकतिस्सम्हि[8] कणिट्ठो तस्स कारयि ।
रज्जं छळेव वस्सानि खल्लाटनागनामको ॥ १२ ॥

*तं महारट्ठको नाम चमूपति च भूपतिं ।
हन्त्वा रज्जमकारेसि दिनेकं अकतञ्ञुको* ॥ १३ ॥

[S.99] तस्स रञ्ञो कनिट्ठो तु वट्टगामणिनामको ।
दुट्ठं सेनापतिं हन्त्वा रज्जं[9] का पञ्चमासकं[9] ॥ १४ ॥

1-4 कायं उपागमि- रो. ।
2. थुल्लथनो- रो. ।
3. महारामं- रो. ।
4. तिलञ्चनं- रो. ।
5. वरुत्तमे- रो. ॥
6. कुम्भिलाधिमनोरमं- रो. ।
7-7. थूपं आरामुत्तमे रो. ।
8. लज्जितिस्सम्हि उपरते-रो. ।
* तं महारत्तको नाम हन्त्वा खल्लाटकं चमूपति ।
* रज्जं कारेसि दिनेकं पदुट्ठो अकतञ्ञुको ॥– रो. ।
9-9 पञ्चमासं रज्जं करि- रो. ।

इसने दूसरे भी बहुत से पुण्य कार्य किये । बहुत अधिक दान किया । अतः यह सत्प्रज्ञ देहपात के बाद तुषितलोक में गया ॥ ७ ॥

राजा थूलथेन– श्रद्धातिष्य का पुत्र राजा थूलथेन हुआ, जिसने अलकन्दर नामक विहार बनवाया ॥ ८ ॥

इसने केवल एक मास दस दिन राज्य किया ॥ ९ ॥

राजा लञ्जतिष्य– श्रद्धातिष्य का ही पुत्र लञ्जतिष्य इस (थूलथेन) के बाद राजा हुआ । इसने नौ (९) वर्ष छह मास तक राज्य किया । इसने सुन्दर महास्तूप पर तीन लाख (३,००,०००) मुद्रा खर्च करें ॥ १० ॥

इसने 'गिरिकुम्भिल' नामक विहार बनवाया । तथा स्तूपाराम के सामने दीर्घस्तूप बनाया ॥ ११ ॥

राजा खल्वाटनाग– तथा स्तूपाराम पर शिलाकञ्चुक बनाया । इस लञ्जकतिष्य राजा के मरने के बाद उसका छोटा भाई राजा बना । इस नाम था खल्वाटनाग । इसने छह वर्ष ही राज्य किया ॥ १२ ॥

उसके सेनापति ने उसकी भी हत्या कर दी । परन्तु वह मन्दभाग्य सेनापति भी एक ही दिन राज्य कर पाया ॥ १३ ॥

राजा वट्टगामणी– तब उस खल्वाटनाग के छोटे भाई वट्टगामणी ने उस द्रविड़ सेनापति को मारकर पाँच मास तक राज्य किया ॥ १४ ॥

पुलहत्थो तु दमिळो तीणि वस्सानि कारयि ।
[R.103] दुवे वस्सानि बाहियो अका[1] रज्जं चमूपति[1] ॥ १५ ॥

तं[2] हन्त्वा[2] पनयमारो सत्त वस्सानि कारयि ।
तं हन्त्वा पलयमारो सत्त वस्सानि कारयि ॥ १६ ॥

तं हन्त्वा दाठियो नाम दुवे वस्सानि कारयि ।
एते च[3] पञ्च दमिलजातान्तरीका[4] भूपति ।

सत्त मासानि चुद्दस्स वस्सानि रज्जं[5] कारयुं[5] ॥ १७ ॥
वट्टगामणि सो[6] राजा आगन्त्वान महायसो ।
दाठिकं दमिलं हन्त्वा सयं रज्जमकारयि ॥ १८ ॥

वट्टगामणी अभयो[7] एवं द्वादसवस्सकं[8] ।
पञ्चमासेसु आदितो राजा रज्जमकारयि ॥ १९ ॥

पिटकत्तयपालिं च तस्सा अट्ठकथं पि च ।
मुखपाठेन आनेसुं पुब्बे भिक्खू महामती ॥ २० ॥

हानिं दिस्वान सत्तानं तदा भिक्खू समागता ।
चिरट्ठितित्थं धम्मस्स पोत्थकेसु लिखापयुं ॥ २१ ॥

तस्सच्चये महाचूळि महातिस्सो अकारयि ।
रज्जं चुद्दस वस्सानि धम्मेन च समेन च ॥ २२ ॥

सद्धासम्पन्नो सो राजा कत्वा पुञ्ञानि नेकधा ।
चतुद्दसन्नं वस्सानं अच्चयेन दिवं अगा ॥ २३ ॥

1-1 चमूपति रज्जं कारयि- रो. ।
2-2 हन्त्वा तं-रो. ।
3. रो. नत्थि ।
4. ० च-रो. ।
5-5 कारयुं रज्जं- रो. ।
6. महा- रो. ।
7. ० सो- रो. ।
8. ० वस्सानि- रो. ।

पाँच द्रविड़ राजा– पुलहत्थ द्रविड़ ने तीन वर्ष राज्य किया । तथा बाहिय द्रविड़ ने दो वर्ष राज्य किया । उसके सेनापति पनयमार ने उसको मार कर सात (७) वर्ष राज्य किया । उसको मारकर पलयमार द्रविड़ ने सात वर्ष राज्य किया। उसको मार कर दाठिय ने भी दो वर्ष ही राज्य किया । यों, ये पाँच द्रविड़ राजा हुए । इन्होंने सब मिलाकर सात (७) मास चौदह (१४) वर्ष तक यहाँ राज्य किया ॥ १५-१७ ॥

वट्टगामणी पुनः राजा बना– वह महायशस्वी वट्टगामणी चौदह वर्ष सात मास बाद पुनः लौटकर उस दाठिय द्रविड़ को मार कर स्वयं राज्य करने लगा ॥ १८ ॥

यों इस वट्टगामणी अभय ने बारह (१२) वर्ष और प्रारम्भ में पाँच (५) मास–इस तरह बारह वर्ष पाँच मास तक राज्य किया ॥ १९ ॥

त्रिपिटक को लिपिबद्ध कराना– तीनों पिटकों में आये बुद्धवचनों को तथा उनकी अट्ठकथाओं को प्राचीन महामति (बुद्धिमान्) भिक्षु मुखपाठ से ही पारम्पर्येण अब तक ला रहे थे ॥ २० ॥

अब कालक्रम से मनुष्यों में बुद्धि का ह्रास देखकर विवेकशील भिक्षु (राजा के परामर्श से) एकत्र हुए और उन्होंने निश्चय किया कि समग्र त्रिपिटक एवं अट्ठकथाओं को लिपिबद्ध कर लिया जाय । यों धर्म की स्थिरता के लिये उन सभी धर्मग्रन्थों को लिपिबद्ध कर लिया गया ॥ २१ ॥

वट्टगामणी राजा के देहपात के बाद, महाचूळि महातिष्य राजा बना । उसने धर्म एवं समता पूर्वक चौदह (१४) वर्ष राज्य किया ॥ २२ ॥

धर्म के प्रति श्रद्धालु उस राजाने अनेक पुण्यकार्य करते हुए अन्त में देवलोक को प्रस्थान किया ॥ २३ ॥

वट्टगामिनिनो पुत्तो चोरनागो ति विस्सुतो ।
रज्जं द्वादस वस्सानि चोरो हुत्वा अकारयि ॥ २४ ॥

महाचूळिस्स यो पुत्तो तिस्सो नामा ति विस्सुतो ।
रज्जं कारेसि दीपम्हि तीनि वस्सानि खत्तियो ॥ २५ ॥

सीवो नाम यो राजा अनुलादेविया संवसि[1] ।
एकवस्सं च द्वेमासं इस्सरियं अनुसासि सो ॥ २६ ॥

वटुको नाम सो[2] राजा दमिलो अञ्ञदेसिको ।
एकवस्सं च द्वेमासं इस्सरियं अनुसासि सो ॥ २७ ॥

[S.100] तिस्सो नामासि यो राजा दारुभत्तिक[3]विस्सुतो ।
एकवस्सेकमासं च पुरे[4] रज्जमकारयि[4] ॥ २८ ॥

नीलियो नाम नामेन दमिळो ब्राह्मणो ति[5] सो[5] ।
कारेसि रज्जं छम्मासं[6] तम्बपण्णिम्हि इस्सरो[6] ॥ २९ ॥

अनुला नाम सा देवी[7] हन्त्वान[8] नीलियं तदा[8] ।
चतुमासं च[9] दीपस्मिं[9] इस्सरियमनुसासि सा ॥ ३० ॥

पलायित्वा* पब्बजित्वा काले पत्तो बलो इध ।
आगतो अनुलं हन्त्वा देविं तं पापमानसिं* ॥ ३१ ॥

---

1. वसि- सी. ।
2. यो- रो. ।
3. कट्ठभती ति- रो. ।
4-4 रज्जं कारेसि तावदे- रो. ।
5-5 राजा ति विस्सुतो- रो. ।
6-6 तेमासं इस्सरियं अनुसासि सो-रो. ।
7. इत्थी- रो. ।
8-8 हनित्वान नरुत्तमे-रो. ।
9-9 तम्बपण्णिम्हि-रो. ।
- एसा गाथा रो. पोत्थके न दिस्सति ।

राजा चौरनाग– वट्टगामणी का पुत्र था चौरनाग । इसने बारह (१२) वर्ष तक विद्रोही बन कर राज्य किया ॥ २४ ॥

राजा तिष्य– महाचूळि का 'तिष्य' नामक द्वितीय पुत्र था । उसने द्वीप पर तीन (३) वर्ष तक राज्य किया ॥ २५ ॥

राजा शिव– शिव नामक राजा ने अनुला देवी के साथ संवास कर राज्य प्राप्त किया । इसने एक वर्ष दो मास राज्य के ऐश्वर्य का उपभोग किया ॥ २६ ॥

राजा वटुक– (इसी अनुलादेवी के कारण) दूसरे देश के वासी वटुक नामक द्रविड़ ने एक वर्ष दो मास तक यहाँ का राज्यसुख भोगा ॥ २७ ॥

राजा तिष्य-- तिष्य नामक बढ़ई (दारुभत्तिक) ने भी (अनुला देवी के कारण ही) राजा बनकर एक वर्ष और एक मास तक यहाँ का राज्य भोगा ॥ २८ ॥

राजा निलिय– उसके बाद निलिय नामक द्रविड़ ब्राह्मण को अनुला देवी ने यहाँ का राजा बनाया । उसने इस ताम्रपर्णी पर छह मास तक राज्य किया ॥ २९ ॥

रानी अनुला– अन्त में अनुला देवी ने इस द्रविड़ को भी मार दिया और वह स्वयं इस द्वीप की रानी बन बैठी । परन्तु यह भी चार (४) मास तक ही राज्य-सुख भोग सकी ॥ ३० ॥

क्योंकि इधर वह राजा तिष्य, जो अनुला देवी के षड्यन्त्र के कारण राज्य छोड़ कर भागकर कहीं प्रव्रजित हो गया था, वही पुनः आया और उसने उस पापी मन वाली अनुला देवी को मारकर उसने अपना राज्य हस्तगत कर लिया[1] ॥ ३१ ॥

---

1. इस कथा के विस्तार के लिये द्र.--महावंश ३३-३४ परि०-अनु. ।

कुटिकण्णतिस्सो नाम महाचूळिस्स अत्रजो ।
[R.104] कारेसि[1] पोसथागारं[1] विहारे चेतिये[2] नगे[2] ।
रज्जें[3] गहेत्वा दीपस्मिं धम्मेन अनुसासि सो[3] ॥ ३२ ॥

पुरतो[4] तस्स[4] कारेसि सिलाथूपं मनोरमं ।
रोपेसि बोधिं तत्थेव महावत्थुं अकारयि ॥ ३३ ॥

भिक्खुनीनं चे[5] अत्थाय[5] जन्ताघरमकारयि ।
पदुमस्सरे वनुय्याने[6] पाकारं च अकारयि ॥ ३४ ॥

नगरस्स गोपनत्थाय परिखं[7] चे[7] खणापयि[8] ।
पाकारं च अकारेसि सत्तहत्थमनूकं ॥ ३५ ॥

खेमदुग्गं[9] च कारेसि महावापिं मनोरमें ।
सेतुप्पलादि वापि च वण्णकं नाम मातिकं[9]।
द्वेवीसति च वस्सानि रज्जं कारेसि खत्तियो ॥ ३६ ॥

वीसतिमो परिच्छेदो निट्ठितो ॥

राजूनं वण्णनं निट्ठितं ॥

भाणवारो पि निट्ठितो ॥

●

1-1उपोसथागारं कारेसि- रो.
2–2 चेतिय पब्बते-रो. ।
3-3 -रो. नत्थि ।
4-4- घरस्स पुरतो-रो. ।
5. ० ददत्थाय–रो० ।
6. च उय्याने- रो. ।
7-7 परिखं-रो. ।
8-8 खणापेसि सो -रो. ।
9–9 खेमं व दुग्गं गण्हापेसि तलाकं वतिकालिकं ।
सेतुप्प[illegible] गण्हापेसि वण्णकालं मनोरमं ॥ - रो० ।

उस महाचूळि के पुत्र कुटिकर्ण तिष्य ने चैत्यपर्वतविहार में उपोसथागार बनवाया । एवं राज्य प्राप्त कर यहाँ धर्मपूर्वक राज्य किया ॥ ३२ ॥

उस चैत्यविहार के सामने एक सुन्दर पाषाणस्तूप बनवाया । और वहाँ बोधिवृक्ष की भी प्रतिष्ठा की ॥ ३३ ॥

तथा उसने भिक्षुणियों के लिये एक जन्ताघर (वाष्प-स्नानगृह) बनवाया। इसी तरह उसने पद्मसरोवरवनोद्यान के चारों तरफ प्राकार (दीवार) बनवाया ॥ ३४ ॥

नगर की सुरक्षा के लिये उसके चारों तरफ परिखा (खाई) खुदवायी । तथा सात हाथ से अधिक ऊँचा उस का परकोटा भी बनवाया ॥ ३५ ॥

महावापी के चारों तरफ भी अच्छा किला बनवा दिया । तथा रेवतोत्पल वापी एवं वर्णक नामक नहर भी बनवायी । इस राजा ने बाईस (२२) वर्ष तक राज्य किया ॥ ३६ ॥

राजाओं का वर्णन समाप्त ॥
बीसवाँ परिच्छेद समाप्त ॥
बीसवाँ भाणवार समाप्त ॥

●

२१.

एकवीसतिमो परिच्छेदो

(राजवण्णनं)

कुटिकण्णस्स अत्रजो अभयो नाम खत्तियो।
महाथूपवरं[1] रम्मं[2] सयं वन्दितुमागमि[3] ॥ १ ॥
खीणासवा वसिप्पत्ता विमला सुद्धमानसा।
सज्झायन्ति धातुगब्भे[4] पूजनत्थं[5] मुनिं तदा[5] ॥ २ ॥
राजा सुत्वान सज्झायं धातुगब्भे मनोरमे।
थूपं पदक्खिणं कत्वा चतुद्वारेसु नाद्दस ॥ ३ ॥

[S.101] समन्ततो नमस्सित्वा सुत्वा[6] सज्झायमुत्तमं।
इति राजा विचिन्तेसि "सज्झायं कत्थ[7] गण्हति ॥ ४ ॥
चतुद्वारे न गण्हाति, बहिद्धा पि न गण्हरे।
अन्तो व[8] धातुगब्भस्मिं सज्झायन्तीध[9] पेसला ॥ ५ ॥

अहं पि दट्ठुकामो म्हि धातुगब्भं अनुत्तमं[10]।
[R.105] सज्झायं पि सुणिस्सामि भिक्खुसङ्घं च दस्सनं" ॥ ६ ॥

रञ्ञो सङ्कप्पमञ्ञाय सक्को देवानमिस्सरो।
धातुगब्भे[11] पातुरहु थेरानं अज्झभासयि[6] ॥ ७ ॥

"राजा, भन्ते, दुट्ठकामो धातुगब्भस्स अन्तरं[12]"।
सद्धानुरक्खनत्थाय धातुगब्भं नयिंसु ते ॥ ८ ॥

---

1. वरे-रो.
2. रम्मे- रो.।
3-3. दस्सनं आगमि- रो.।
4. धातुगब्भम्हि- रो.।
5-5. पूजनत्थाय गण्हाति-रो.।
6. नरिन्दो-रो.।
7. तत्थ-रो.।
8. पि-रो.।
9. सज्झायं गण्हति- रो.।
10. वरुत्तमं- रो.।
11-11 पातरहु धातुगब्भस्मिं थेरेहि अज्झभासथ-रो.।
12. दस्सनं- रो.।

इक्कीसवाँ परिच्छेद
(कुछ अन्य राजाओं का वर्णन)

राजा द्वारा स्तूपपूजा– कुटिकर्ण का पुत्र राजा अभय उस रम्य महास्तूप की अर्चना-वन्दना करने स्वयं वहाँ आया ॥ १ ॥

उस स्तूप के धातुगर्भ में कुछ क्षीणास्रव, इन्द्रियनिग्रही, विमलहृदय, शुद्धचित्त भिक्षु पूजा के निमित्त बुद्धवचनों का स्वाध्याय कर रहे थे ॥ २ ॥

राजा को, उस मनोरम धातुगर्भ में स्वाध्याय पाठ होता हुआ सुन कर, प्रदक्षिणा करते हुए भी चारों तरफ कोई भिक्षु नहीं दिखायी दिया, फिर भी उसे स्वाध्याय की ध्वनि सुनायी पड़ रही थी ॥ ३ ॥

तब राजा ने सोचा–"यह स्वाध्याय की ध्वनि तो सुनायी पड़ रही है, परन्तु कोई स्वाध्यायकर्ता नहीं दिखायी दे रहा है" ॥ ४ ॥

उसने फिर सोचा–"चारों द्वारों पर भी या बाहर भी कोई नहीं दिखायी देता, अतः सम्भव है धातुगर्भ में ही यह स्वाध्याय हो रहा है! ॥ ५ ॥

"मैं भी इस धातुगर्भ को देखना चाहता हूँ । इससे स्वाध्याय भी सुन लूँगा, साथ ही भिक्षुसङ्घ के दर्शन भी कर लूँगा" ॥ ६ ॥

राजा का यह सङ्कल्प जान कर देवराज इन्द्र ने धातुगर्भ में प्रकट होकर भिक्षुओं से निवेदन किया ॥ ७ ॥

"भन्ते! राजा धातुगर्भ के दर्शन की इच्छा से यहाँ बाहर खड़े हैं" ।

तब वे भिक्षुजन राजा की श्रद्धारक्षणहेतु राजा को धातुगर्भ में ले गये ॥ ८ ॥

दिस्वा धातुघरं राजा वेदजातो कतञ्जलि ।
अकासि धातुसक्कारं पूजं[1] सत्ताहकं पि च ॥ ९ ॥

मधुभण्डपूजं कासि[2] सत्तक्खत्तुं मनोरमं[3] ।
अकासि सब्बपूजं च सत्तक्खत्तुं अनग्घिकं ॥ १० ॥

अञ्ञं पूजं च कारेसि सत्तक्खत्तुं यथारहं ।
सत्तक्खत्तुं च कारेसि दीपपूजं पुनप्पुनं ॥ ११ ॥

पुप्फपूजं अकारेसि सत्तक्खत्तुं मनोरमं ।
पूरितजलपूजं च[4] सत्ताहं तत्थ[5] कारयि[5] ॥ १२ ॥

पवाळमयजालं च कारापेसि अनग्घिकं ।
महाथूपे पटिमुक्कचीवरमिव पारुतं ॥ १३ ॥

दळ्हं कत्वा दीपदण्डं थूपपादसमन्ततो ।
सप्पिनालिं च पूरेत्वा दीपं जालेसि[6] सत्तधा ॥ १४ ॥

तेलनालिं च पूरेत्वा थूपपादा समन्ततो ।
तेलदीपानि[7] जालेसि[7] चुद्दसक्खत्तुमेव[8] च[8] ॥ १५ ॥

गन्धोदकेन पूरेत्वा कटं[9] कत्वान मत्थके ।
पत्थरित्वोप्पलहत्थे सत्तक्खत्तुमकारयि ॥ १६ ॥

---

1 महापूजा च सत्ताहं- रो. ।
2. कारेसि-रो. ।
3. वरुत्तमं- रो. ।
4. रो. नत्थि ।
5-5 पूजं च सत्ताहं- रो. ।.
6. जलापेसि- रो. ।
7-7 तेलदीपं जलापेसि- रो. ।
8-8 पुनप्पुनं- रो. ।
9. कलञ्जं- रो. ।

राजा ने धातुगर्भ के दर्शन कर प्रसन्न होते हुए हाथ जोड़ कर उन पवित्र धातुओं का सत्कार किया, तथा सप्ताहपर्यन्त निरन्तर उनकी पूजा की ॥ ९ ॥

उस राजा ने सात बार उस धातुगर्भ को मधुपूर्ण भाण्ड समर्पित कर पूजा की । तथा इसी तरह महर्घ सर्वपूजा भी वहाँ सम्पन्न करायीं ॥ १० ॥

इसी तरह अन्य प्रकार से भी पूजाएँ कीं; जैसे--बार बार दीपों से पूजा, बार बार पुष्पों से पूजा या जलपूर्ण घटों से पूजा । ऐसी पूजाओं का क्रम सप्ताहपर्यन्त निरन्तर चलता ही रहा ॥ ११-१२ ॥

फिर राजा ने उस स्तूप पर, अनमोल प्रवाल का जाल चढ़ाया । उस पर नये वस्त्रों का वितान तनवाया ॥ १३ ॥

स्तूप के नीचे विशाल दीपदण्ड बनवाया, जिस पर निरन्तर दीपक जलने की व्यवस्था की जा सके । उसके लिये सप्ताहपर्यन्त जलने योग्य धृत का प्रबन्ध कर दिया ॥ १४ ॥

इसी तरह, तेल की कुप्पियाँ भरवाकर सप्ताहपर्यन्त तैलदीप-पूजा का प्रबन्ध किया ॥ १५ ॥

चटाई को गन्धोदक से आर्द्र कर उसे मस्तक पर लगाकर उस पर कमल के फूल बिछा कर यों सात बार पूजा की ॥ १६ ॥

थूपस्स पच्छिमोकासे तळाके तिस्सनामके[1] ।
योजेत्वा यन्तकं तत्थोदकपूजमकारयि ॥ १७ ॥

[S.102] समन्ता योजनं सब्बं कुसुमानं च रोपयि ।
अकासि पुप्फगुम्बं च महाथूपे पनुत्तमे[2] ॥ १८ ॥

मकुळपुप्फितं पुप्फं समानेत्वान खत्तियो ।
अकारेसि पुप्फगुम्बं चुद्दसक्खत्तुमेव[3] च[3] ॥ १९ ॥

नानापुप्फं समोचित्वा लिन्दपाकारकं[4] तहिं[4]।
पुप्फत्थम्भं च[5] कारेत्वा सत्तक्खत्तुं पुनप्पुनं* ।
नानारूपानि कारेसि पूजनत्थाय खत्तियो* ॥ २० ॥

सुधाकम्मं च[6] कारेसि[7] महाथूपवरे तहिं[8] ।
अभिसेकं करित्वान अकासि थूपमङ्गलं[9] ॥ २१ ॥

सक्यपुत्तो महावीरो अस्सत्थदुमसन्तिके ।
सब्बधम्मपटिवेधं अकारयि अनुत्तरो ॥ २२ ॥

ठितो मेघवने रम्मे यो रुक्खो दीपजोतनो ।
तं बोधिं पि अभिसेकं खत्तियो कासि भूपति[10] ॥ २३ ॥

वस्सं वुत्था पवारेसुं भिक्खुसङ्घसुखावहा ।
पवारणानुग्गहाय सो दा[11] दानपवारनं[11] ॥ २४ ॥

---

1 खेमनामके -रो. ।
2. वरुत्तमे-रो. ।
3-3 पुनप्पुनं-रो. ।
4-4 सालिन्दं सह पाकारं-रो ।
5. रो. नत्थि ।
- . अद्दसा नानारूप विचित्रकं । ...अकासि समानरूपानि खत्तियो ॥-रो. ।
6. सुधाकम्मं-रो. ।
7. अकारे-रो. ।
8. वरुत्तमे-रो. ।
9. सुधामङ्गलं-रो. ।
10. सीननं-रो ।
11-11. पवारणदानं अकासि सो-रो. ।

इतना ही नहीं, राजा ने स्तूप के पश्चिम तरफ के तिष्य सरोवर से यन्त्र द्वारा जल लाकर उससे भी उस स्तूप की जल-पूजा की ॥ १७ ॥

राजा ने स्तूप के चारों तरफ योजन-योजन भर भूमि में फूलों के पौधे लगा दिये । उनसे उतरने वाले पुष्प-गुच्छों से भी उस महास्तूप की पूजा की ॥ १८ ॥

मुकुल (फूलों की कली=अर्ध विकसित पुष्प) एकत्र कर उसके गुच्छों से उस स्तूप की चौदह बार पूजा की ॥ १९ ॥

नाना पुष्पों को एकत्र कर उनका बड़ा गुच्छा (गुलदस्ता) बनाकर उससे स्तूप-पूजा की । नाना पुष्प एकत्र कर उनसे चटाई एवं स्तम्भ बना कर वह स्तूप को अर्पित करते हुए, उससे पूजा की ॥ २० ॥

उस श्रेष्ठ स्तूप पर चूना करवा कर उसे शुभ्र बनाकर उसका मङ्गलाभिषेक भी किया ॥ २१ ॥

बोधिपूजा– जिस बोधिवृक्ष के नीचे बैठकर महाबलशाली शाक्यपुत्र गौतम ने अद्वितीय धर्म का साक्षात्कार किया था ॥ २२ ॥

उसी बोधि वृक्ष की शाखा, जो लङ्काद्वीप के मेघवन में आकर प्रतिष्ठित हुई है, राजा ने उसकी भी पूजा की ॥ २३ ॥

प्रवारणादान– वर्षावास किये हुए भिक्षुसङ्घ को राजा की तरफ से सुखदायक प्रवारणादान भी किया गया ॥ २४ ॥

अदासि चन्दनं दानं भिक्खुसङ्घे पनुत्तमे[1] ।
बलभेरिं चादासि महाथूपवरे[2] तहिं[2]॥ २५ ॥
लङ्कातलमदा[3] चेव सेट्ठकनटनाटिका[4] ।
सब्बं[5] सङ्करित्वान महाथूपे अदासि सो ॥ २६ ॥
वेसाखे[6] पुण्णमायं सो[7] सम्बुद्धो उपपज्जथ ।
तं मासं पूजनत्थाय अट्ठवीसति कारयि[8] ॥ २७ ॥
महामेघवने रम्मे थूपारामे महीपति[9] ।
कारेसि पोसथागारं उभो विहारमन्तरे ॥ २८ ॥
अका अञ्ञं बहुं पुञ्ञं अदा दानमनप्पकं[10] ।
अट्ठवीसति वस्सानि रज्जं कारेसि खत्तियो ॥ २९ ॥
कुटिकण्णस्स यो पुत्तो नागनामो[11] सि खत्तियो ।
कारेसि रतनमयं इट्ठकादिं अनुत्तमं[12] ॥ ३० ॥
[S.103] धम्मासनं च सब्बत्थ अम्बत्थलवर[13] तहिं[13]।
गिरिभण्डग्गहणं नाम महापूजमकारयि ॥ ३१ ॥
यावता लङ्कादीपम्हि भिक्खू सन्ति[14] सुपेसला ।
सब्बेसं चीवरं[15] दासि भिक्खुसङ्घे सगारवो[16] ।
द्वादसानि च वस्सानि रज्जं कारेसि खत्तियो ॥ ३२ ॥

---

1. गणुत्तमे-रो. ।
2-2 महाथूपे वरुत्तमे-रो. ।
3. लङ्कामदमदा-रो. ।
4. ० नाटका-रो. ।
5. सब्बेसं-रो. ।
6. विसाखमासे-रो. ।
7. रो. नत्थि ।
8. अकारयि-रो. ।
9. वरुत्तमे-रो. ।
10. दानं चापि अनप्पकं-रो. ।
11. नामो' ति-रो. ।
12-12 वरुत्तमे-रो. ।
13-13. अत्थि-रो. ।
14. थूपुत्तमे- रो. ।
15. दत्वा-रो. ।
16. गणुत्तमे-रो. ।

भिक्षुसङ्घ को राजा ने चन्दन का दान किया। महास्तूप पर बजाने के लिये एक विशाल भेरी (दुन्दुभि) का भी दान किया ॥ २५ ॥

लङ्का द्वीप में जितने भी नट और नर्तकियाँ थी उन सब को भी पूजा के समय नृत्य के लिये एकत्र किया ॥ २६ ॥

वैशाखी पूजा– वैशाख पूर्णिमा के दिन, भगवान् बुद्ध इस लोक में अवतरित हुए थे। इस वैशाख मास-पूजा के लिये राजा ने अट्ठाईस (२८) दिन तक निरन्तर पूजा की ॥ २७ ॥

राजा ने महामेघवन एवं स्तूपाराम–दोनों विहारों के बीच एक नया उपोसथागार बनवाया ॥ २८ ॥

इस तरह अत्यधिक दान-पुण्य कर वह राजा अट्ठाईस (२८) वर्ष तक निरन्तर राज्य करता रहा[1] ॥ २९ ॥

राजा नाग– नाग नामक राजा कुटिकर्ण का पुत्र था। इसने श्रेष्ठ अम्बस्थलाराम में रत्नमिश्रित ईंट आदि से धर्मासन का निर्माण कराया। तथा वहाँ 'गिरिभाण्डग्रहण' नामक पूजा की ॥ ३०-३१ ॥

लङ्का द्वीप में जितने भी सदाचरणसम्पन्न भिक्षु थे, उसने इन सबको ससम्मान चीवरदान किया। इस राजा ने बारह (१२) वर्ष लङ्काद्वीप पर राज्य किया ॥ ३२ ॥

---

1. विस्तार के लिये द्र. महावंश-३४ वाँ अध्याय -अनु.।

महादाठिकपुत्तो यो[1] मण्डगामणिनामको ।
अभयो विस्सुतो राजा आसि दीपम्हि इस्सरो[1] ॥ ३३ ॥

[S. 107] खणापेसि उदपानं गामेण्डितळाकं पि च ।
रजतलेनं कारेसि थूपस्स रजतामयं ॥ ३४ ॥

छत्तातिछत्तं कारेसि थूपारामे अनुत्तमे[2] ।
महाविहारे च थूपारामे उभो हम्मियं[3] वरं[3] ॥ ३५ ॥

भण्डागारं अकारेसि भण्डलेनं च सब्बसो ।
आणापेसि[4] अघातं च दीपम्हि तम्बपण्णियो[4] ।
नव वस्सट्ठ मासानि रज्जं कारेसि खत्तियो ॥ ३६ ॥

तस्स[5] कनिट्ठो[6] कणीरजानुतिस्सो ति विस्सुतो ।
संपुण्ण तीणि[7] वस्सानि रज्जं कारेसि खत्तियो ॥ ३७ ॥

आमण्डगामणीपुत्तो चूळाभयो ति विस्सुतो ।
पतिट्ठापेसि सो राजा गग्गरारामसुत्तमं ।
रज्जं कारेसि वस्सेकं चूळाभयमहीपति ॥ ३८ ॥

सीवली नाम सा देवी[8] रेवती इति विस्सुता ।
चतुमासमका[9] रज्जं धीता आमण्डराजिनो[9] ॥ ३९ ॥

आमण्डभागिनेय्यो तु सीवलिं अपनीय नं[10] ।
इलनागो ति नामेन रज्जं अकारयि पुरे ॥ ४० ॥

---

1 . आमण्डगामणि नाम अभयो इति विस्सुतो-रो. ।
2 . वरुत्तमे-रो. ।
3-3 पासादुत्तमे-रो. ।
4-4 . माघातं च अकारेसि तम्बपण्णितले पि च-रो. ।
5-5 . तस्सेव-रो. ।
6 . कनिट्ठको राजा-रो. ।
7 . परिपुण्ण. -रो. !
8 . इत्थी-रो. ।
9-9 . चतुमासं रज्जं कारेसि रञ्ञो आमण्डधीतरो-रो. ।
10 . तं-रो. ।

राज आमण्डग्रामणी अभय– राजा महादाठिक का पुत्र आमण्डग्रामणी, जो द्वीप का राजा बना, वह 'अभय' नाम से जनता में प्रसिद्ध हुआ ॥ ३३ ॥

उसने स्थान-स्थान पर कुए खुदवाये । तालाब, पोक्खरिणियाँ खुदवायीं । महास्तूप पर चान्दी का कार्य करवाया ॥ ३४ ॥

सुन्दर स्तूपाराम पर छत्र पर छत्र (आवरण पर आवरण) चढ़वाया । महाविहार एवं स्तूपाराम पर हर्म्य (अट्टालिका) बनवायी ॥ ३५ ॥

स्थान-स्थान पर भाण्डागार एवं गोदाम बनवाये । सब जगह पशुहत्या का निषेध प्रसारित किया । इस राजा ने नौ (९) एवं छह (६) मास तक राज्य किया ॥ ३६ ॥

राजा कणीरजानु तिष्य– उस (आमण्डग्रामणी) के छोटे भाई कणीरजानु तिष्य ने केवल तीन (३) वर्ष तक ही राज्य किया ॥ ३७ ॥

राजा चूड़ामय– आमण्डग्रामणी का पुत्र चूड़ाभय नामं से विख्यात हुआ । इस राजा ने प्रसिद्ध गग्गराराम विहार बनवाया ॥ ३८ ॥

रानी रेवती– इस चूड़ाभय ने केवल एक वर्ष राज्य किया । सीवली नाम की महिला, जिसे लोग रेवती भी कहते थे, इसने केवल चार (४) मास राज्य किया ॥ ३९ ॥

राजा इलनाग– आमण्डग्रामणी के भानजे ने इस रानी को हटा कर 'इळनाग' नाम से इस नगर पर शासन किया ॥ ४० ॥

इलनागो नाम राजा सुणित्वा कपिजातकं ।
तिस्सदूरतळाके च खणापेसि अरिन्दमो ॥ ४१ ॥

छवस्सानि[1] च[1] सो रज्जं कारेसि दीपलङ्के ।
सीवो ति नाम नामेन चन्दमुखो ति विस्सुतो ।
अकासि मणिकारामं विहारे इस्सरव्हये ॥ ४२ ॥

तस्स रञ्ञो महेसी च दमिलादेवी ति विस्सुता ।
तञ्ञेव गामे[2] वट्टं च[3] अदा'[4] रामस्स सा तदा[4] ।
सत्तमासट्ठवस्सानि रज्जं[5] कारेसि खत्तियो[5] ॥ ४३ ॥

तिस्सो च नाम सो राजा यसलालो ति विस्सुतो ।
मासट्ठसत्तवस्सानि दीपे रज्जमकारयि ॥ ४४ ॥

द्वारपालस्स अत्रजो सुभराजा ति विस्सुतो ।
कारापेसि सुभारामं विल्लविहारकं[6] पि च[6] ॥ ४५ ॥

परिवेण[1]मकारेसि । अत्तनामेन सो[8] तदा[8] ।
[9]छवस्सानि च दीपम्हि राजा रज्जमकारयि[9] ॥ ४६ ॥

एकवीसतिमो परिच्छेदो निट्ठितो ॥
राजूनं वण्णनं निट्ठितं ॥
भाणवारो एकवीसतिमो निट्ठितो ॥

●

1-1 छहि वस्सेहि-रो. ।
2 . ०अत्तनो-रो. ।
3 . रो. नत्थि ।
4-4 अदासि आरामे-रो. ।
5-5 राजा रज्जं अकारयि-रो. ।
6-6 विल्लविहारं मनोरमं-रो. ।
7 . परिवेणानि-रो. ।
8-8 सम्मकं-रो.,
9-9 छम्हि वस्सम्हि सो राजा इस्सरियं अनुसासि सो-रो. ।

राजा इळनाग ने **कपिजातक** (२५०,४०४) का धर्मप्रवचन सुनकर तिष्याराम के समीप तड़ाग खुदवाया । इसने इस द्वीप पर छह (६) वर्ष तक राज्य किया ॥ ४१ ॥

राजा सीव– सीव नामक राजा ने, जिसे 'चन्द्रमुख' भी कहा जाता था, ईश्वर विहार में 'मणिकराम' विहार बनवाया ॥ ४२ ॥

उस राजा की रानी का नाम था दमिल देवी । उसने अपना ग्राम-कर (शुल्क) छोड़कर आराम को दान कर दिया । इस राजा ने आठ वर्ष, सात मास राज्य किया ॥ ४३ ॥

राजा यसलाल– इसके बाद तिष्य नाम का राजा हुआ, जिसका 'यसलाल' नाम प्रसिद्ध था । इसने सात वर्ष आठ मास तक राज्य किया ॥ ४४ ॥

राजा शुभ– द्वारपाल का पुत्र शुभ नामक राजा हुआ । इसने 'शुभाराम' तथा 'विल्व- विहार' बनवाये ॥ ४५ ॥

तथा एक परिवेण अपने नाम से भी बनवाया । इस राजा ने इस द्वीप पर छह (६) वर्ष तक राज्य किया ॥ ४६ ॥

इक्कीसवाँ परिच्छेद समाप्त ॥

शासक राजाओं का वर्णन समाप्त ॥

इक्कीसवाँ भाणवार समाप्त ॥

२२.

द्वेवीसतिमो परिच्छेदो

(सेसराजूनं वण्णनं)

[S.102, R. 102] वसभो नाम सो राजा रामे[1] चित्तलपब्बते[1] ।
दस थूपानि कारेसि [2]पूजं चानेकमुत्तमं[2] ॥ १ ॥

इस्सरियनामारामे विहारं च मनोरमं ।
कारेसि पोसथागारं[3] दस्सनेय्यं मनोरमं ॥ २ ॥

बलभेरिं च कारेसि पूजेतुं[4] राममुत्तमं[4] ।
[5]अदासि भिक्खुसङ्घस्स चीवरं च अनप्पकं[5] ॥ ३ ॥

सब्बत्थ लङ्कादीपस्मिं आरामा[6] सन्ति जिण्णका[7] ।
कारेसि सब्बत्थावासं धम्मपूजं महारहं ॥ ४ ॥

चेतियघरं कारेसि थूपारामे पनुत्तमे[8] ।
तत्थेव[9] पूजयी राजा चतुत्ताळीस नूनकं ॥ ५ ॥

महाविहारे च[10] थूपारामे[11] चेतियपब्बते ।
पच्चेकानि सहस्सानि तेलदीपानि[12] जालयि[13] ॥ ६ ॥

मयन्तिं राजुप्पलिकं वापिं[14] कोलम्बनामकं ।
महानिक्खवट्टिवापिं महागामव्हयं[15] द्वयं[15] ॥ ७ ॥

---

1 -1 विहारे चेतियपब्बते-रो. ।
2 -2 कित्तिफलवरुत्तमे-रो. ।
3 . पोसथघरं-रो. ।
4 -4 मुचेलं विहारमुत्तमं-रो. ।
5 -5 सम्पत्ते तीणि वस्सानि छळानि चीवरं अदा-रो. ।
6 . आरामे-रो. ।
7 . जिण्णके-रो. ।
8 . वरुत्तमे-रो. ।
9 . कारेसि-रो. ।
10 . रो. नत्थि ।
11 . विहारे-रो. ।
12 . तेलदीपं-रो. ।
13 . जलापयि-रो. ।
14 . वहं-रो. ।
15 -15 महारामेत्तिं एव च-रो. ।

बाईसवाँ परिच्छेद

(अवशिष्ट राजाओं का वर्णन)

राजा वृषभ– राजा वृषभ (वसभ) ने चित्तलपर्वताराम में दश स्तूपों का निर्माण कराया, तथा अनेक प्रकार से उत्तम पूजाएँ कीं ॥ १ ॥

इस्सरियाराम में मनोरम विहार बनवाया, तथा उसमें एक सुन्दर उपोसथागार भी बनवाया ॥ २ ॥

उसी आराम में पूजा में उपयोग के लिये एक विशाल भेरी भी प्रदान की । साथ ही भिक्षुसङ्घ को बहुत सा चीवर-दान किया ॥ ३ ॥

समग्र लङ्का द्वीप में जहाँ जहाँ जीर्ण विहार थे वहाँ सर्वत्र नये आवास बनवाये । तथा यथायोग्य धार्मिक विधि से पूजा की ॥ ४ ॥

उत्तम स्तूपारामों में चैत्यगृहों का निर्माण कराया । वहीं राजा ने कम से कम चालीस पूजाएँ कीं ॥ ५ ॥

चैत्य पर्वत, महाविहार एवं स्तूपाराम–इन तीनों पवित्र स्थानों पर पृथक् पृथक् रूप से हजारों दीप जलाये ॥ ६ ॥

राजा ने ये अधोलिखित ग्यारह (११) वापियाँ बनवायी–

१.मयन्ती, २.राजोत्पलिका, ३.कोलम्ब, ४.महानिक्खवट्टिवापी, ५-६.महाग्राम वापी ॥ ७ ॥

[S.105] केहालं कालवापिं च जम्बुट्ठिं चाथ मङ्गनं ।
अभिवड्ढमानकं च इच्चेकादस वापियो ॥ ८ ॥

द्वादसमातिकं चेव सुभिक्खत्थमकारयि ।
पुञ्ञं नानाविधं कत्वा पाकारं परिखं पुरे ॥ ९ ॥

द्वारट्टालमकारेसि महावत्थुं च कारयि ।
तहिं तहिं पोक्खरणी खणापेसि पुरुत्तमे[1] ॥ १० ॥

उम्मग्गेन पवेसयि उदकं राजकुञ्जरो ।
चतुत्तालीस वस्सानि रज्जं कारेसि इस्सरो[2] ति ॥ ११ ॥

वसभस्सच्चये[3] पुत्तो वङ्कनासिकतिस्सको[4] ।
आरामं मङ्गलं[5] नाम[5] कारापेसि महीपति ॥ १२ ॥

तिस्सस्सत्रजो पुत्तो गजबाहुकगामणी ।
कारापेसि महाथूपं भयारामे मनोरमे ॥ १३ ॥

[R.109] मातत्थं गामनीनामं तळाकं कारयी[6] तदा[6] ।
कारापेसि च आरामं रम्मकं नाम इस्सरो ॥ १४ ॥

महल्लनागो नामेन तम्बपण्णिम्हि इस्सरो ।
साजिल्लकन्दरारामं दक्खिणे गोदपब्बतं ॥ १५ ॥

दीपे वावीस वस्सानि राजा रज्जमकारयी ॥ ति ॥ १६ ॥

कारेसि रज्जं दीपस्मिं तीणि वस्सानि तावदे ।
दकपासानआरामं विहारं सालिपब्बतं ।
कारापेसि तेलवेलिं[7] रोहने नागपब्बतं ॥ १७ ॥

---

1. नगरे पुरे-रो. ।
2. ति-रो. ।
3. वसभस्स अत्रजो-रो. ।
4. तिस्सो ति विस्सुतो-रो. ।
5-5 मङ्गलनामकं-रो. ।
6-6 कारेसि नायको-रो. ।
7. तनवेलिं-रो. ।

७.केहाल वापी, ८.कालवापी, ९.जम्बुवट्टिवापी, १०.मङ्गन वापी एवं ११.अभिवर्धमानकवापी[1] ॥ ८ ॥

बारह (१२) बड़ी बड़ी नहरें खुदवायीं । जिससे द्वीप में निरन्तर कृषि-उत्पादन बना रहने से सुभिक्ष बना रहे । इसी तरह के अनेक पुण्य कार्य कर, तथा सुरक्षा हेतु नगर के चारों तरफ प्राकार एवं खाइयाँ खुदवायीं ॥ ९ ॥

द्वार पर अट्टालिकाएँ तथा विशाल प्रासाद का निर्माण कराया । और नगर में जहाँ-तहाँ पुष्करिणियाँ खुदवायी ॥ १० ॥

और उनमें उन्मार्ग (सुरंग बनाकर गुप्त मार्ग) से जल पहुँचाया । यों ऐसे कुशल कर्म करते हुए इस राजा ने चवालीस (४४) वर्ष तक राज्य किया ॥ ११ ॥

राजा वङ्कनासिक तिष्यक– राजा वृषभ के देहावसान के बाद, वङ्कनासिक तिष्य राजा बना । जिसने मङ्गलाराम का निर्माण कराया ॥ १२ ॥

राजा गजबाहुक ग्रामणी– राजा तिष्य का पुत्र गजबाहुक ग्रामणी राजा हुआ, जिसने अभयाराम में महास्तूप का निर्माण कराया ॥ १३ ॥

उस राजा ने नहर के लिये एक विशाल सरोवर बनाया । तथा साथ ही एक रम्यक नामक आराम भी बनवाया ॥ १४ ॥

राजा महल्लकनाग– इसके बाद ताम्रपर्णी में महल्लक नाग नामक राजा बना । इसने गोठ पर्वत के दक्षिण पार्श्व में साजिल्लकन्दकाराम बनवाया ॥ १५ ॥

इस राजा ने, तीन वर्ष राज्य करते हुए, दकपाषाण विहार एवं शालिपर्वत विहार तथा तेनवेल्लिविहार और रोहण जनपद में नागपर्वतविहार बनवाये ॥ १६-१७ ॥

---

1. द्र.–महावंस, ३५ प., ९४-९५ गा.

तथेव [1] गिरिसाळिं च अन्तोरट्ठे अकारयि[1] ।
छवस्सं रज्जं कारेत्वा गतो सो आयुसङ्खयं ॥ ति ॥ १८ ॥

पुत्तो[2] महल्लनागस्स भातियतिस्स[2] विस्सुतो ।
महामेघवनुय्यानं रक्खनत्थाय [3] भूपति[3] ॥ १९ ॥

कारापेसि[4] परिक्खेपं पाकारं द्वारबन्धनं ।
कारापेसि च सो राजा आरामं सकनामकं[5] ॥ २० ॥

महागामनिकं[6] वापिं[6] खणापेत्वा महीपति[7] ।
पादासि भिक्खुसङ्घस्स भातियतिस्स[8] विस्सुतो[8] ॥ २१ ॥

[S.106] खणापेसि तळाकं तं रन्धकण्डकनामकं ।
कारेसि पोसथागारं थूपारामे मनोरमे ॥ २२ ॥

महादानं पवत्तेसि भिक्खुसङ्घे महीपति[9] ।
चतुवीसति वस्सानि रज्जं दीपे अकारयी ॥ ति ॥ २३ ॥

तस्स कनिट्ठो नामेन तिस्सो इति सुविस्सुतो ।
कारेसि पोसथागारं भयारामे मनोरमे ॥ २४ ॥

महाविहारे[10] द्वादसपासादे च अकारवि ।
थूपस्स गेहं कारेसि दक्खिणारामअव्हये[10] ॥ २५ ॥

1-1 आरामं गिरिसालिकं कारापेसि विनायको–रो. ।
2-2 महल्लनागस्स यो पुत्तो भातुतिस्सो ति–रो. ।
3-3 कारापनत्थाय इस्सरो–रो. ।
4-4 परिक्खेपेसि परिक्खेपं पाकारं द्वारट्टालकं–रो.।
5. वरनामकं–रो. ।
6-6 गामनिं नाम तळाकं–रो. ।
7. वरनामकं–रो. ।
8-8 भातुतिस्सो विनायको–रो. ।
9. विनायको–रो. ।
10-10 कारेसि द्वादसट्ठानं महविहारमुत्तमे ।
विहारं कारेसि सो थूपं दक्खिणारामसव्हये ॥ रो. ।

उसी तरह उसने मध्य देश में गिरिसाळि विहार बनवाया । इस राजा का, छह वर्ष राज्य करने के बाद, देहपात हुआ ॥ १८ ॥

राजा भातियतिस्स– राजा महल्लनाग के मरने के बाद, उसका पुत्र भातियतिस्स इस द्वीप का राजा बना । इस राजा ने महामेघवनोद्यान की रक्षा के लिये ॥ १९ ॥

चारों तरफ प्राकार (दीवार) एवं द्वार निर्माण कराया । इसने अपने नाम से भातियतिस्सविहार भी बनवाया ॥ २० ॥

इस राजा भातियतिस्स ने एक महाग्रामणी नाम की वापी खुदवाकर भिक्षुसङ्घ को दान कर दी ॥ २१ ॥

इसने एक 'रन्ध्रकण्डक' नाम का तालाब भी खुदवाया । एवं मनोरम स्तूपाराम में एक उपोसथागार बनवाया ॥ २२ ॥

इसके अतिरिक्त यह भिक्षुसङ्घ को समय-समय पर महादान (भोजन) भी करता रहा । इस तरह इस राजा का, लङ्काद्वीप पर चौबीस वर्ष राज्य करने के बाद, देहावसान हुआ ॥ २३ ॥

राजा तिष्य– इस राजा के देहावसान के बाद, इसका छोटा भाई तिष्य राजा बना । इसने सुन्दर अभयाराम में एक उपोसथागार बनवाया ॥ २४ ॥

इसने महाविहार में बारह (१२) प्रासाद बनवाये । तथा दक्षिणारामविहार में स्थित स्तूप का आवरणगृह बनवाया ॥ २५ ॥

ततो अञ्ञं बहुं पुञ्ञं अकासि[1] बुद्धसासने ।
अट्ठवीसति[2] वस्सानि राजा[3] रज्जमकारयि[3] ॥ २६ ॥

तिस्सच्चये[4] तस्स पुत्तो रज्जयोग्गा द्विभातुका[4] ।
रज्जं कारेसुं दीपम्हि तीणि वस्सानि भूमिपा[5] ॥ २७ ॥

वङ्कनासिकतिस्सो तु अनुराधपुरुत्तमे[6] ।
तीणि वस्सानि का[7] रज्जं पुञ्ञकम्मानुरूपवा ॥ २८ ॥

वङ्कनासिक तिस्सस्स अच्चये कारयि सुतो ।
[R.110] रज्जं द्वावीस वस्सानि गजबाहुकगामणी ॥ २९ ॥

गजबाहुस्सच्चयेन पसुरो तस्स राजिनो ।
रज्जं महल्लको नागो छवस्सानि अकारयि ॥ ३० ॥

महल्लनागपुत्तो[8] तु राजा[8] भातिकतिस्सको ।
चतुवीसति वस्सानि लङ्कारज्जमकारयि ॥ ३१ ॥

तस्स भातिकतिस्सस्सच्चये [9] कणिट्ठतिस्सको ।
अट्ठवीसति[10] वस्सानि दीपे रज्जमकारयि[10] ॥ ३२ ॥

कणिट्ठतिस्सच्चयेन तस्स पुत्तो अकारयि ।
रज्जं द्वे येव वस्सानि खुज्जनागो ति विस्सुतो ॥ ३३ ॥

---

1. कल्याणे–रो. ।
2. अट्ठारसानि–रो. ।
3-3 इस्सरियं अकारयी ति–रो. ।
4-14 तिस्सस्स अत्रजो पुत्तो राजारहा द्वे भातुका–रो. ।
5. नायका–रो. ।
6. अनुराधपुरे–रो. ।
7. कारयि–रो. ।
8-8 महल्लकनागस्स अच्चयेन पुत्तो–रो. ।
9. ०न तस्स–रो. ।
10-10 अट्ठारस समा रज्जं लङ्कादीपे अकारयि–रो. ।

इस राजा ने बौद्ध धर्म की अभिवृद्धि हेतु इसी तरह के अन्य पुण्यकार्य भी किये । इसने अट्ठाईस (२८) वर्ष तक राज्य किया ॥ २६ ॥

दो भाई राजा– इस राजा तिष्य के मरण के बाद दो भाई राज्य-शासन के योग्य थे, अतः वे दोनों क्रमशः राजा बने । इन्होंने तीन (३) वर्ष तक इस द्वीप पर राज्य किया ॥ २७ ॥

राजा वङ्कनासिक तिष्य– राजा वङ्कनासिक तिष्य ने अनुराधपुर में अपने पुण्य कर्मों के अनुरूप तीन (३) वर्ष तक ही राज्य किया ॥ २८ ॥

राजा गजबाहुक गामणी– इस (राजा) वङ्कनासिक तिष्य के देहपात के बाद, उसके पुत्र गजबाहुक ग्रामणी ने बाईस (२२) वर्ष राज्य किया ॥ २९ ॥

राजा महल्लकनाग–इस राजा गजबाहुक के मरने के बाद राजा महल्लकनाग ने छह (६) वर्ष शासन किया ॥ ३० ॥

राजा भातिकतिष्य– महल्लकनाग के पुत्र राजा भातिकतिष्य ने इस लङ्का द्वीप पर चौबीस (२४) वर्ष राज्य किया ॥ ३१ ॥

राजा कनिष्ठ तिष्य– राजा भातिकतिष्य के देहावसान के बाद राजा कनिष्ठ तिष्य ने अट्ठाईस (२८) वर्ष राज्य किया ॥ ३२ ॥

कनिष्ठ तिष्य का बड़ा पुत्र– इस कनिष्ठ तिष्य के मरणोत्तर उसके बड़े पुत्र खुज्जनाग ने दो (२) ही वर्ष राज्य किया ॥ ३३ ॥

खुज्जनागकणिट्ठो तं[1] घातेत्वा सकभातुकं[1] ।
एकवस्सं कुज्जनागो[2] रज्जं लङ्काय कारयी ॥ ति ॥ ३४ ॥

[S.107] सिरिनागो लद्धजयो अनुराधपुरे वरे ।
लङ्कारज्जमकारेसि वस्सानेकूनवीसति ॥ ३५ ॥

सिरिनागो ति[3] नामेन महाथूपं पनुत्तमं[4]।
पूजेसि रतनमालाय[5] छत्तं थूपे अकारयि ।
कारेसि पोसथागारं लोहपासादमुत्तमे[6] ॥ ति* ॥ ३६ ॥

सिरिनागस्स अत्रजो अभयो नाम भूपति[7] ।
द्वीहि सह सहस्सेहि नेकवत्थानि गाहिय।
अदासि भिक्खुसङ्घस्स[8] वत्थदानं महग्धिकं[8] ॥ ३७ ॥

पासाणवेदिं चाकासि[9] महाबोधिसमन्ततो[10] ।
कारेसि[11] नगरे रम्मं अट्ठ वस्सानि सो तदा[11] ॥ ३८ ॥

तस्स कनिट्ठो राजा तु तिस्सको इति[12] विस्सुतो ।
महाथूपे[13] भयारामे[13] कारेसि छत्तमुत्तमं ॥ ३९ ॥

महामेघवने रम्मे भयारामे मनोरमे ।
अकासि राजा[14] थूपं च उभो विहारमुत्तमे ॥ ४० ॥

1-1 राजा घातिय भातियं–रो.।
2. कुञ्ञनागो–रो. ।
3. सिरिनागो नाम–रो.।
4. वरुत्तमं–रो. ।
5. रतनमालेन–रो.।
6. ० मुत्तमं–रो. ।
* उनवीसति वस्सानि रज्जं कारेसि खत्तियो ति–रो. ।
7. महीपति–रो. ।
- रो. न दिस्सति ।
8-8 द्वेसतसहस्स रूपिया–रो. ।
9. अकासि–रो.।
10. ० वरुत्तमे–रो.।
11. द्वावीस वस्सानि राजा इस्सरियं अनुसासि सो ति–रो. ।
12. इसि–रो. ।
13-13. अभयारामे महाथूपे–रो. ।
14. महापाणि–रो. ।

कनिष्ठ तिष्य का छोटा पुत्र– खुज्जनाग के छोटे भाई कुज्जनाग ने अपने बड़े भाई की हत्या कर एक वर्ष तक इस लङ्का द्वीप पर राज्य किया ॥ ३४ ॥

राजा श्रीनाग– इसके बाद राजा श्रीनाग ने युद्ध में विजय प्राप्त कर इस श्रेष्ठ अनुराधपुर पर नियन्त्रण कर सम्पूर्ण लङ्का द्वीप पर उन्नीस (१९) वर्ष तक राज्य किया ॥ ३५ ॥

इस राजा ने 'श्रीनागस्तूप' नाम से महास्तूप का निर्माण कराया, तथा इस स्तूप पर रत्नमालाओं का छत्र भी चढ़ाया। साथ ही इसने उत्तम लौहप्रासाद में भी उपोसथागार बनवाया ॥ ३६ ॥

राजा अभय– राजा श्रीनाग के पुत्र राजा अभय ने दो हजार (२,000) मुद्राओं से विविध वस्त्र खरीद कर, भिक्षुसङ्घ को दान किया; क्योंकि यह राजा वस्त्रदान को सर्वाधिक महत्वपूर्ण समझता था ॥ ३७ ॥

इसने महाबोधि के चारों तरफ पाषाणों (पत्थरों) की वेदी बनवायी। यों, उसने सत्कर्म करते हुए इस द्वीप पर आठ (८) वर्ष राज्य किया ॥ ३८ ॥

राजा तिष्यक– उस राजा (अभय) के छोटे भाई तिष्यक ने अभयाराम के महास्तूप पर छत्र चढ़ाया ॥ ३९॥

रम्य महामेघवन के अभयाराम में इस राजा ने अतिरिक्त (दूसरा) स्तूप एवं विहार–दोनों बनवाये ॥ ४० ॥

सुत्वा गिलानसुत्तन्तं देवत्थेरस्स भासतो ।
अदा[1] गिलानभेसज्जं[2] महाआवासपञ्चकं ।
*महाबोधिसमीपम्हि दीपरुक्खे अकारयि * ॥ ४१ ॥

तस्स रञ्ञो तु विजिते दीपेन्त्यकप्पियं बहुं ।
वितण्डवादे दीपेत्वा दूसेसुं जिनसासनं ॥ ४२ ॥

दिस्वा राजा पापभिक्खू दूसेन्ते जिनसासनं ।
[R.111] कपिलामच्चमादाय अकासि पापनिग्गहं ।
वितण्डवादं मद्दित्वा जोतयि जिनसासनं ॥ ४३ ॥

सत्तिपण्हिक[3] पासादं अका मेघवने तहिं[3] ।
द्वेवीसति तु वस्सानि रज्जं कारेसि इस्सरो ॥ ति ॥ ४४ ॥

तिस्सस्स अच्चये[4] पुत्तो सिरिनागो ति विस्सुतो ।
रज्जं कारेसि दीपम्हि द्वेवस्सानि अनूनकं ॥ ४५ ॥

[S.108] महाबोधिस्स सामन्ता पाकारं चाथ मण्डपं ।
पासादिकमकारेसि[5] सिरिनागव्हयो अयं ॥ ४६ ॥

सङ्घतिस्सो[6] ति नामेन महाथूपे अनुत्तमे[7] ।
सोवण्णमयछत्तानि कारेसि थूपमत्थके ॥ ४७ ॥
मणिमयं सिखाथूपं महाथूपे[8] अकारयि ।
तस्स कम्मस्स निस्सन्दे पूजं कारेसि तावदे ॥ ४८ ॥

---

1. अदासि–रो. ।
2. पञ्चावासं वरुत्तमं–रो. ।
* रत्तिं अच्छरियं दिस्वा आरामं दस्समालिनिं ।
महाबोधि मनोरमे दीपरूपे पतिट्ठसि ॥ –रो. ।
3-3 हत्थपण्णिहि पासानं अदा मेघवनोदनं–रो. ।
4. अत्रजो-रो. ।
5-5 अकारयि पासादिकं–रो.।
6. असङ्घतिस्सो–रो.।
7. वरुत्तमे–रो.।
8. वरुत्तमे–रो.।

इस राजा ने देवस्थविर से **गिलानसुत्त** का धर्मोपदेश सुनकर रोगियों के लिये राज्य में औषध-व्यवस्था तथा रोगियों के लिये पाँच (५) आवासगृह बनवाये । साथ ही बोधिवृक्ष के सम्मुख एक दीपस्तम्भ (वृक्षतुल्य ऊँचा) भी बनवाया ॥ ४१ ॥

अन्य मतवादियों का निग्रह– उस समय उस राजा के अधीन प्रदेश में बहुत से वितण्डावादी अन्य मतानुयायी तीर्थिक अपना अपना मतवाद प्रचारित कर सद्धर्म (जिनशासन) का विरोध कर रहे थे ॥ ४२ ॥

राजा ने अपने अमात्य कपिल को लेकर इन पापी भिक्षुओं को, जो कि जिन शासन का विरोध कर रहे थे, निकाल कर पाप (सद्धर्मविरोध) पर नियन्त्रण किया । यों, इसने वितण्डावाद का मर्दन कर जिनशासन के प्रचार-प्रसार में अभिवृद्धि की ॥ ४३ ॥

इस राजा ने मेघवनोद्यान में 'सत्तिपण्हिक' प्रासाद का भी निर्माण कराया । यों, इस राजा ने बाईस (२२) वर्ष तक इस लङ्का द्वीप पर शासन किया ॥ ४४ ॥

राजा श्रीनाग– इस राजा तिष्यक के देहावसान के बाद, इस द्वीप पर श्रीनाग नामक राजा ने दो वर्ष से अधिक राज्य किया ॥ ४५ ॥

इस श्रीनाग ने महाबोधि के चारों तरफ श्रद्धोत्पादक प्राकार एवं मण्डप बनवाये ॥ ४६ ॥

इस राजा ने अनुपम महास्तूप पर सङ्घतिष्य नाम से सुवर्णनिर्मित छत्र चढ़ाये ॥ ४७ ॥

तथा उस (महास्तूप) पर भी एक स्तूप 'शिखास्तूप' नाम से जड़ाऊ मणि-रत्नों का काम कराकर बनवाया ॥ ४८ ॥

अन्धकविन्दकं सुत्वा[1] देवत्थेरस्स भासतो ।
चतुद्वारे धुवयागुं पट्ठपेसि अरिन्दमो ॥ ४९ ॥

विजयकुमारको नाम सिरिनागस्स अत्रजो ।
पितुनो अच्चये रज्जं एकवस्सं अकारयि ॥ ५० ॥

रज्जं चत्तारि वस्सानि सङ्घतिस्सो अकारयि ॥
महाथूपम्हि छत्तं सो हेमकम्मं च कारयि ॥ ५१ ॥

सङ्घबोधी ति नामेन राजा आसि सुसीलवा ।
अनुराधपुरे[2] रज्जं द्वे वस्सानेव कारयि[2] ॥ ५२ ॥

रम्मे मेघवनुय्याने धुवयागुं अरिन्दमो ।
पट्ठपेसि सलाकग्गं महाविहारमुत्तमे ॥ ५३ ॥

अभयो नाम नामेन मेघवण्णो ति विस्सुतो ।
सिलामण्डपं[3] कारेसि[3] महाविहारमुत्तमे ॥ ५४ ॥

पधानभूमिं कारेसि मंहाविहारपच्छतो ॥
सिलावेदि[4]मकारेसि महाबोधि समन्ततो[4] ॥ ५५ ॥

सिलापरिखं च कारेसि तोरणं च महारहं ।
कारेसि सिलापल्लङ्कं महाबोधिवरुत्तमे ॥ ५६ ॥

कारेसि[5] पोसथागारं[5] दक्खिणाराममन्तरे ।
अदासि सो महादानं भिक्खुसङ्घमनुत्तमे[6] ॥ ५७ ॥

[R.112] कत्वा राजघरं राजा महावत्थुं मनोरमं ॥
भिक्खुसङ्घस्स दत्वान पच्छा राजा पटिग्गहि ॥ ५८ ॥

---

1. सुत्ततं–रो.।
2-2 द्वेवस्सानेव सो राजा रज्जं कारेसि खत्तियो--रो.।
3-3 कारेसि सिलामण्डपं--रो.।
4-4 कारेसि बोधिपरिवारं सिलावेदिं अनुत्तमं--रो.।
5-5 उपोसथघरं कारेसि--रो.।
6. गणुत्तमे--रो.।

शत्रुनिग्रही राजा ने देवस्थविर से **अन्धकविन्द सुत्त** (म० नि०) सुनकर उसके प्रभाव से नगर के चारों द्वारों पर नित्य (प्रतिदिन) यागुदान की व्यवस्था कर दी ॥ ४९ ॥

राजा विजयकुमार– इस श्रीनाग के पुत्र राजा विजयकुमार ने, पिता के देहावसान के बाद, एक वर्ष तक राज्य किया ॥ ५० ॥

राजा सङ्घतिष्य– राजा सङ्घतिष्य ने चार वर्ष इस द्वीप पर राज्य किया । उसने महास्तूप पर सुवर्ण-कर्म कराया ॥ ५१ ॥

राजा सङ्घबोधि– यह राजा सङ्घबोधि अत्यधिक शीलसम्पन्न था । इसने अनुराधपुर पर दो (२) वर्ष राज्य किया ॥ ५२ ॥

इसने मेघवनोद्यान में दैनिक यागुदान का 'सदाव्रत' लगाया । तथा महाविहार में 'शलाकाग्र' विधि से महादान (भोजनदान) की व्यवस्था की ॥ ५३ ॥

राजा मेघवर्णाभय– राजा मेघवर्णाभय ने महाविहार में शिलाओं का मण्डप बनवाया ॥ ५४ ॥

महाविहार के पश्चिम भाग में एक योगाभ्यास-गृह (प्रधानभूमि) बनवाया । साथ ही महाबोधि के चारों तरफ शिलाओं की वेदी भी बनायी ॥ ५५ ॥

साथ ही महाबोधि के चारों तरफ खाई बनाकर उसमें दृढ़ताहेतु पत्थरों की चिनाई करा दी । सामने तोरण बनवा दिया । तथा महाबोधि का पर्यङ्क (चबूतरा) भी पाषाणों से निर्मित करा दिया ॥ ५६ ॥

इसने दक्षिणाराम में उपोसथागार भी बनवाया । और यह श्रेष्ठ भिक्षुसङ्घ को समय समय पर महादान भी करता रहा ॥ ५७ ॥

फिर इसने राजघराने में एक सुन्दर महल बनवाया, जिसे भिक्षुसङ्घ को दान कर दिया । और बाद में उस महल को दुगुना-तिगुना मूल्य लगा कर खरीद लिया ॥ ५८ ॥

[S. 109] वेसाखपूजं कारेसि राजा मेघवने तदा ।
तेरसानि हि वस्सानि इस्सरिया[1] नुसासि[1] सो ॥ ति ॥ ५९ ॥

अत्रजो मेघवण्णस्स जेट्ठतिस्सो महीपति ।
रज्जं कारेसि दीपम्हि तम्बपण्णिम्हि इस्सरो ॥ ६० ॥

मणिं महग्घं पूजेसि महाथूपे पनुत्तमे[2] ।
कत्वान लोहपासादं[3] पूजेत्वा मणिमुत्तमं ।
मणिपासादो ति पण्णत्तिं कारापेसि नरासभो ॥ ६१ ॥

कारापेत्वान आरामं पाचीनतिस्सपब्बते ।
पादासि भिक्खुसङ्घस्स नरिन्दो तिस्ससयो ॥ ६२ ॥

आलम्बगामवापिं[4] सो खणापेसि महीपति[4] ।
अट्ठसंवच्छरं पूजं कारापेसि नरासभो ।
रज्जं कारेसि दीपम्हि[5] दसवस्सानि भूपति [6] ॥ ६३ ॥

जेट्ठतिस्सच्चये तस्स महासेनो कनिट्ठको ।
सत्तवीसति वस्सानि राजा रज्जं अकारयि ॥ ६४ ॥

तदा सो राजा चिन्तेसि "सासने नेक[7]भिक्खूसु ।
के धम्मवादिनो भिक्खू, के च अधम्मवादिनो?"[8] ॥ ६५ ॥

विचिनेत्वा इमं अत्थं गवेसं[9] लज्जि पुग्गले ।
अद्दस पापके भिक्खू जिनसासनदूसके[10] ॥ ६६ ॥

1-1 इस्सरियं अकासि--रो.।
2. वरुत्तमे–रो.।
3-6 इस्सरियं अकासि–रो.।
4.4 आलम्बगामतळाकं गण्हापेत्वा महीपति–रो.।
5. सो राजा–रो.।
6. तम्बपण्णिके–रो.।
7. द्वीसु–रो.।
8. के लज्जी के अलज्जिनो–रो. अधिकपाठो ।
9. गवेसन्तो–रो.।
10. अस्समणे पटिरूपके–रो.।

फिर, इस राजा ने, मेघवनोद्यान में वैशाख–पूजा का आयोजन किया । इस तरह इस राजा ने तेरह (१३) वर्ष तक इस द्वीप पर शासन किया ॥ ५९ ॥

राजा ज्येष्ठ तिष्य– इस मेघवर्णाभय के पुत्र ज्येष्ठ तिष्य ने राजा बन कर इस ताम्रपर्णी द्वीप पर तेरह (१३) वर्ष तक शासन किया ॥ ६० ॥

इसने उत्तम महास्तूप पर मणियाँ जड़वाकर उसकी पूजा की । इसी तरह लौह-प्रासाद को स्थान-स्थान पर मणिजटित कराकर उसकी पूजा कराकर उस लौह-प्रासाद को 'मणिप्रासाद' नाम से प्रसिद्ध कर दिया ॥ ६१ ॥

प्राचीन तिष्य पर्वत पर आराम बनवा कर उसे राजा तिष्य ने सङ्घ को दान कर दिया ॥ ६२ ॥

इस राजा ने आलम्ब ग्राम में एक वापी खुदवा कर उसकी आठ (८) वर्ष पूजा की । यों इस राजा ने दश (१०) वर्ष तक इस द्वीप पर राज्य किया ॥ ६३ ॥

राजा महासेन– राजा ज्येष्ठ तिष्य के बाद उससे कनिष्ठ राजा महासेन ने सत्ताईस (२७) वर्ष तक राज्य किया ॥ ६४ ॥

इस राजा ने सोचा–"शासन में आज बहुत भिक्षु हैं । इनमें से कितने धर्मपूर्वक आचरण करते हैं? कितने नहीं?" ॥ ६५ ॥

यह सोचकर, इस सद्धर्म में धर्म से लज्जा एवं भय खाने वाले भिक्षुओं की गवेषणा करते हुए राजा को बहुत से पापाचारी भिक्षु दिखायी दिये ॥ ६६ ॥

पूतिकुणपदिससे जेगुच्छे[1] पापचारिनो[1] ।
अस्समणे[2] असन्ते च[2] अद्दस पटिरूपके ॥ ६७ ॥

दुम्मित्तं पापसोणं च अञ्ञे वा[3] लज्जिपुग्गले ।
उपेन्तो पापके भिक्खू अत्थं धम्मं च पुच्छि सो ॥ ६८ ॥

दुम्मित्तो पापसोणो च अञ्ञे वा [4] लज्जिपुग्गला ।
रहोगता मन्तयन्ति दूसनत्थाय सुब्बते ॥ ६९ ॥

उभो समग्गा हुत्याना[5]नुञ्ञातं धम्मिकं तदा[5] ।
अकप्पियं ति दीपेसुं [6]महाविहारवासिनं ॥ ७० ॥

छब्बग्गियानं वत्थुस्मिं [7]दुन्निवत्थादि कारणं[7] ।
अनुञ्ञातं ति दीपेसुं अलज्जी पापधम्मिनो[8] ॥ ७१ ॥

[9]देसितानि च नेकानि धम्मवत्थूनि गाहिय[9] ।
अधम्मो" इति दीपेसुं अलज्जी लाभहेतुका ॥ ७२ ॥

असाधुसङ्गमेनेवं यावजीवं सुभासुभं ।
कत्वा गतो यथा कम्मं सो महासेन भूपति ॥ ७३ ॥

तस्मा असाधु संसग्गं आरका परिचज्जिय [10] ।°
अहीवा[11] सी विसं वासु[11] कारेय्यत्थहितं[12] बुधो ति[13] ॥ ७४ ॥

दीपवंसो निट्ठितो ॥
निब्बानपच्चयो होतु ॥

●

---

1. यत्तं व नीलमक्खिके–रो.।
2-2 असन्ते अस्समणके–रो.।
3. च –रो.।
4. च–रो.।
5. भाविस्सं अनुञ्ञातं कुमारकस्सपे–रो.।
6. दुसीला मोहपारुता–रा.।
7-7 अननुञ्ञातं दन्तवत्तकं–रो.।
8. दन्तगणिका–रो.।
9.9 इमं च अञ्ञं भिक्खू अत्थं अञ्ञे अकारणे–रो.।
10. परिवज्जिय–रो.।
11. अहिं वासिविसं वासि–रो. ।
12. करेय्य॰–रो.।
13. भवे ति–रो.।

राजा की दृष्टि में ये श्रमण एवं साधु-सन्तों के आचार-विचार से हीन पापाचार भिक्षु ऐसे ही दूर करने योग्य थे जैसे सड़े हुए दुर्गन्धमय शव को दूर फैंक दिया जाता है ॥ ६७ ॥

तब राजा ने, दुर्मित्र, पापशोण या ऐसे ही अन्य अलज्जी पापी भिक्षुओं के पास जाकर उनसे अर्थ एवं धर्म के विषय में प्रश्न किये ॥ ६८ ॥

ये दुर्मित्र, पापशोण या ऐसे ही अन्य निर्लज्ज, पापी भिक्षु एकान्त में बैठकर परस्पर मन्त्रणा किया करते थे कि कैसे सदाचारी भिक्षुओं को आरोपित किया जाय ॥ ६९ ॥

ये दोनों एकत्र होकर महाविहारवासी भिक्षुओं के बुद्धसम्मत धर्मवचनों को भी 'अकल्प्य' (न मानने योग्य) कहते रहते थे ॥ ७० ॥

इसके विपरीत ये पापी भिक्षु षड्वर्गीय भिक्षुओं की धर्मविरुद्ध मान्यताओं को धर्मसम्मत प्रतिपादित करते थे ॥ ७१ ॥

इसी तरह ये अपने लाभ के लोभ से अनेक धर्म्मसम्मत आचरणीय बातों को भी अधार्मिक एवं अनाचरणीय कहते थे ॥ ७२ ॥

(इन्हीं सब बातों से भ्रान्त होकर राजा भी कुछ समय इनसे मिल गया और महाविहारवासी भिक्षुओं को त्रस्त किया । परन्तु बाद में सत्य ज्ञात होने पर उन पापी भिक्षुओं को दण्डित भी किया ।) इस तरह यह राजा जीवनपर्यन्त शुभाशुभ कर्मों में लिप्त रहकर पाप-पुण्य करता हुआ इस लोक से चला गया[1] ॥ ७३ ॥

अतः अपना हित चाहने वाले बुद्धिमान् को दुष्टों का सङ्ग त्यागकर, इन्हें दूर से ऐसे त्यागकर जैसे महान् विषधर सांप को देखकर लोग तत्काल दूर हट जाते हैं, स्वहित में ही लगे रहना चाहिये ॥ ७४ ॥

दीपवंश समाप्त ॥

सभी को निर्वाण-लाभ मिले ॥

●

1. इस कथा का विस्तार जानने के लिये महावंश के ३६,३७ परिच्छेद पठनीय हैं । –अनु० ।

परिशिष्ट

दीपवंस में समागत

संज्ञाशब्दों की सूची

अ

●

दीपवंस में वर्णित

श्रीलंका के राजाओं की सूची

क्रम	राजा	राज्यकाल	बुद्धाब्द	दीपवंस में निर्देश
१.	विजय	३८ वर्ष	१-३८	९/२८,१४
	अराजक काल	१ वर्ष	–	११/९
२.	पाण्डु वास	३० वर्ष	३९-६९	१०/१-६
३.	अभय	२० वर्ष	६९-८९	१०/७
	अराजक काल	१७ वर्ष	–	११/१-२
४.	पकण्डुक	७० वर्ष	१०६-१७६	११/१-४
५.	मुटसिव	६० वर्ष	१७६-२३६	११/५-१३
६.	देवानम्पिय तिस्स	४० वर्ष	२३६-२७६	११/४-१७,९२
७.	उत्तिय	१० वर्ष	२७६-२८६	१७/९३-१०९
८.	सिव	१० वर्ष	२८६-२९६	१८/४५
९.	सूरतिस्स	१० वर्ष	२९६-३०६	१८/४६
१०.	सेन	१२ वर्ष[1]	३०६-३२८	१८/४७
११.	गुत्तिक			
१२.	असेल	१० वर्ष	३२८-३३८	१८/४८
१३.	एळार	४४ वर्ष	३३८-३८२	१८/४९-५२
१४.	दुट्ठगामणी अभय	२४ वर्ष	३८२-४०६	१८/५३; १९/१०, २३
१५.	सद्धातिस्स	१८ वर्ष	४०६-४२४	२०/१-७
१६.	थूलथन	१ मास १० दि	४२४	२०/८
१७.	लज्जितिस्स	९ वर्ष, ६ मा.[2]	४२४-४३३	१९/१३च २०/९-११
१८.	खल्लाटनाग	६ वर्ष	४३३-४३९	२०/१२
	महारत्तक	१ मास	४३९	२०/१३
१९.	वट्टगामणी (अभय)	५ मास	४३९	२०/१४
२०-२४	पाँच दमिळ	१४ वर्ष	४३९-४५४	१९/१५; २०/१५-१७
पुनः	वट्टगामणी (अभय)	१५ वर्ष	४५४-४६६	१९/१४,१६; २०/१८-२१
२५.	महाचूळि तिस्स	१४ वर्ष	४६६-४८०	२०/२४
२६.	चोरनाग	१२ वर्ष	४८०-४९२	२०/२५
२७.	तिस्स	३ वर्ष	४९२-४९५	२०/२६
२८.	सिव	१ वर्ष २ मास	४९६	२०/२७

---

1. महावंस के अनुसार २२ वर्ष ।
2. महावंस के अनुसार ९ वर्ष ८ मास ।

२९.	बटुक	१ वर्ष २ मास	४९७	२०/२८
३०.	तिस्स	१ वर्ष १ मास	४९८	२०/२९
३१.	निलिय	छह मास	४९९	२०/३०
३२.	अनुला देवी	चार मास	४९९	२०/३०
३३.	कुटिकण्णतिस्स	२२ वर्ष	४९९-५२१	२०/३१-३५
३४.	भातिक अभय	२८ वर्ष[1]	५२१-५४९	२१/१-३०
३५.	महादाठिक महानाग	१२ वर्ष	५४९-५६१	२१/३१-३५
३६.	आमण्डगामणी	९ वर्ष, ८ मा.	५६१-५७१	२१/३४-३७
३७.	कणीरजानुतिस्स	३ वर्ष	५७१-५७४	२१/३८
३८.	चूळाभय	१ वर्ष	५७४-५७५	२१/३९-४०
३९.	सीवली	४ मास	५७५	२१/४०-४१
४०.	इळनाग	६ वर्ष	५७८-५८४	२१/४१-४३
४१.	चन्दमुख सिव	८ वर्ष	५८४-५९२	२१/४४-४५
४२.	यसलालक तिस्स	८ वर्ष[2]	५९३-६००	२१/४६
४३.	सुभराज	६ वर्ष	६०१-६०७	२१/४७-४८
४४.	वसभ	४४ वर्ष	६०७-६५१	२२/१-११
४५.	वङ्कनासिक तिस्स	३ वर्ष	६५१-६५४	२२/१२, २७
४६.	गजबाहुकगामणी	२२ वर्ष	६५४-६७६	२२/१३, १४, २८
४७.	महल्लनाग	६ वर्ष	६७६-६८२	२२/१५, १७, २९
४८.	भातिक तिस्स	३१ वर्ष	६८२-७०६	२२/१८-२२, ३०
४९.	कनिट्ठ तिस्स	१८ वर्ष	७०६-७२४	२२/२३-२५, ३१
५०.	खुज्जनाग	२ वर्ष	७२४-७२६	२२/२६-३२, ३३
५१.	कुञ्चनाग	१ वर्ष	७२६-७२७	
५२.	सिरिनाग (१)	१९ वर्ष	७२७-७४६	२२/३४-३६
५३.	अभयनाग[3]	८ वर्ष	७६८-७७६	२२/३७, ३८
५४.	बोहारिक तिस्स	२२ वर्ष	७४६-७६८	२२/३९-४५
५५.	सिरिनाग (२)	२ वर्ष	७७९-७७८	२२/४६, ४७
५६.	विजयकुमार	१ वर्ष	७७८-७७९	२२/५१
५७.	सङ्घतिस्स (असङ्ग तिस्स)	४ वर्ष	७७९-७८३	२२/४८-५०, ५२
५८.	सङ्घबोधि	२ वर्ष	७८३-७८५	२२/५३, ५४
५९.	गोठकाभय (मेघवण्ण)	१३ वर्ष	७८५-७९८	२२/५५-६०
६०.	जेट्ठ तिस्स	१० वर्ष	७९८-८०८	२२/६१-६५
६१.	महासेन	२७ वर्ष	८०८-८३५	२२/६६-७६

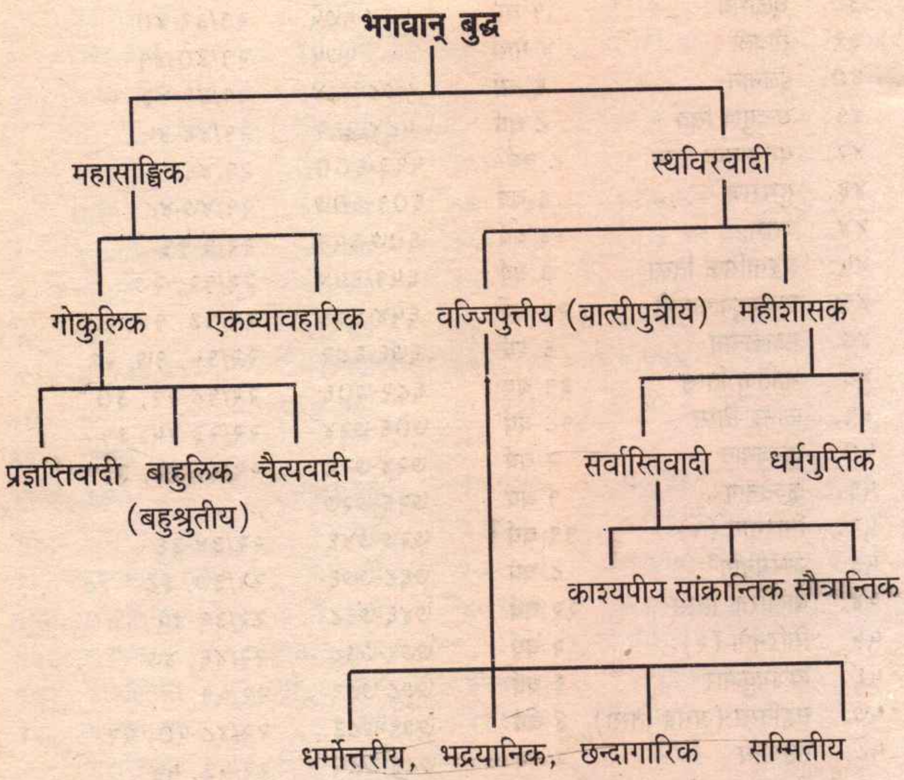
●

1. महावंस के अनुसार ७ वर्ष ८ मास ।
2. महावंस में इस राजा का राज्यकाल ७ वर्ष, ८ मास वर्णित है ।
3. महावंस में बोहारिक तिस्स एवं अभय के नाम क्रमपरिवर्तन से आये हैं ।

दीपवंस के पञ्चम परिच्छेद में वर्णित

बौद्धों के अष्टादश सङ्घनिकाय

(आचार्य-भेद) का विस्तार



(द्र. –दीपवंस, पञ्चम परिच्छेद २–११ गाथा)

महासम्मतवंश के
राजाओं की (राजा अच्चिमा से राजा कलारजनक तक)
वंशावलि का विस्तृत वर्णन

राजधानी	राजाओं की सङ्ख्या	अन्तिम राजा
१. कपिल (वस्तु)	१००	अरिन्दम
२. अयुज्झा (अयोध्या)	५६	दुप्पसह
३. वाराणसी	६०	अमितत्त
४. कपिलनगर (कपिलवस्तु)	८४,०००	ब्रह्मदत्त
५. हस्तिपुर (हस्तिनापुर)	३६	कम्बलवसन
६. एकचक्खु	३२	पुरिन्दद
७. वजिरा	२८	साधीन
८. मधुरा (मथुरा या दक्षिण में मधुरा)	२२	धम्मगुत्त
९. अरिट्ठपुर	१८	सिट्ठी
१०. इन्दपत्त (इन्द्रप्रस्थ=दिल्ली)	१७	ब्रह्मदेव
११. एकचक्खु	१५	बलदत्त
१२. कोसाम्बी	१४	भद्रदेव
१३. कर्णगोच्छ	९	नरदेव
१४. रोजनगर	७	महिन्द
१५. चम्पा	१२	नागदेव
१६. मिथिला	२५	बुद्धदत्त
१७. राजगृह	२५	दीपङ्कर
१८. तक्कसिला (तक्षशिला)	१२	तालिस्सर
१९. तामलित्थिय (ताम्रलिप्ती)	९	सागरदेव
२०. कुसीनारा	१२	सुदिन्न
२१. मिथिला	८४,०००	सागरदेव का पुत्र मखादेव
२२. वाराणसी	८४,०००	कलारजनक का पिता नेमिय तथा इसके वंशज।

इस वंश का अन्तिम राजा था विजय। जिसके बाद विजितसेन, धम्मसेन, नागसेन, समत्थ, दिसम्पति, रेणु, कुस, महाकुस, नवरथ, दसरथ, राम, विलारथ, चित्तदस्सी, अत्थदस्सी, सुजात एवं ओक्काक (इक्ष्वाकु) आदि अनेक राजा हुए।

(द्र.– दीपवंस तृतीय परिच्छेद)

शासनोपयोगी

तेरह ज्ञातव्य विषय

	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०-११	१२	१३
बुद्ध	द्वीप	नगर	राजा	उद्देश्यक (उपद्रव)	धातु नाम	आराम	स्तूप	पर्वत	उद्यान	बोधिशाखा एवं शयनासन	प्रधान भिक्षुणी	प्रधान भिक्षु
ककुसन्ध बुद्ध	ओजो-द्वीप	अभय नगर	राजा अभय	प्रज्वरक रोग	धम्मकरक	पटियाराम	अभयनगर में (कदम्बक के समीप)	देवकूट	महातीर्थ	शिरीष वृक्ष	रुचिनन्दा	षडभिज्ञ
कोणागमन बुद्ध	वरद्वीप	वर्धमान नगर	राजा समुद्ध	दुर्वृष्टि	कायबन्धन	उत्तराराम	वर्धमाननगर में (तिष्य-तडाग के समीप)	शीलकूट	महानाम	उदुम्बर वृक्ष	कन्दनन्दा	सुमन
काश्यप बुद्ध	मण्डद्वीप	विशाल-नगर	राजा जयन्त	विवाद	जलशाटिका	प्राचीनाराम	विशालनगर के (क्षेम-तडाग के) समीप	शुभ्रकूट	सागर	न्यग्रोध वृक्ष	सुधर्मा	सर्वनन्द
गौतम बुद्ध	लङ्काद्वीप	अनुराध-पुर	राजा देवानाम्प्रिय तिष्य	यक्षदमन	एक द्रोण शारीरिक अस्थियाँ	स्तूपाराम	अनुराध - पुर में	सुमनकूट	महामेघवन	अश्वत्थ वृक्ष	सङ्घमित्ता	महिन्द